निराला और नज़रुल के गीतिकाव्यों का

तुलनात्मक अध्ययन

अनुसंधित्सु

शिप्रा बसु

हिन्दी विभाग

Date............

द्वारा

पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय के हिन्दी विषय में डॉक्टर ऑफ फिलासफी

उपाधि के लिए अपेक्षित आवश्यकता की आंशिक पूर्ति हेतु प्रस्तुत

Thesis

NEHU LIBRARY
Acc 103670
Acc
Dat 27-8-07
Cla
Sub.He
Ente
Trar

पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय

जुलाई, 2006

घोषणा

मैं *शिप्रा बसु* एतद्द्वारा घोषित करती हूँ कि इस शोध-प्रबंध की विषय-सामग्री मेरे द्वारा किए गए कार्यों का परिणाम है । इस शोध-सामग्री के आधार पर न तो मुझे, और जहाँ तक मुझे ज्ञात है, किसी अन्य को पहले उपाधि प्रदान की गयी है और न ही यह शोध-प्रबंध मेरे द्वारा कोई अन्य शोध-उपाधि प्राप्त करने के लिए किसी अन्य विश्वविद्यालय/संस्थान में प्रस्तुत किया गया है ।

इसे पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय के सम्मुख हिन्दी विषय में डॉक्टर ऑफ फ़िलॉसफी की उपाधि के लिए प्रस्तुत किया जाता है ।

18.07.06

अध्यक्ष | निर्देशक | शोधार्थी

अध्यक्ष/Head
हिन्दी विभाग Hindi Deptt.
पू. प. वि. वि. शिलांग-22
N. E. H. U Shillong-22

शोध-संक्षिप्तिका

प्रस्तुत शोध-प्रबंध निराला और नज़रुल के गीतिकाव्यों का तुलनात्मक अध्ययन पाँच अध्यायों में विभक्त है, जिसके माध्यम से निराला और नज़रुल के गीतिकाव्यों के विविध पक्षों का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है । इस क्रम में दोनों के ही व्यक्तित्व एवं कृतित्वों का आरेखन करते हुए उनके गीतों के भावपक्ष एवं कलापक्ष के वैशिष्ट्य को स्पष्ट किया गया है । वस्तुतः निराला और नज़रुल के जीवन की परिस्थितिगत साम्यता ने उनके गीतों की तुलना के लिए सर्वाधिक प्रेरित किया । दोनों ने ही अपने समय के सच को अपने-अपने तरीके से साहित्य में प्रकट किया । दोनों ही रचनाकारों के गीतों की अनुभूतियों में जो विद्रोहात्मक तेवर है अथवा अपनी राह खुद गढ़ने की जो ललक है, उसने भी प्रस्तुत शोध को संभव किया । भाव के साथ-साथ विचार एवं शिल्प का भी अद्भुत सम्य दोनों में देखा जा सकता है जिसे विविध उपशीर्षकों के माध्यम से प्रस्तुत प्रबंध में स्थान दिया गया है ।

दोनों कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से अपने क्षेत्र के साहित्य को प्रभावित किया । लोक संपृक्ति के साथ दोनों के काव्य में रागात्मक, बौद्धिक तथा भाषा की सृजनात्मक उर्जा का रस विद्यमान है । निराला और नज़रुल दोनों ने ही कालजयी रचनाकार बनकर अपने देशकाल को गहराई से प्रभावित किया । देशप्रेम, जन-उद्बोधन, नवसंदेश अथवा ईश-वन्दना के सभी स्तरों पर नज़रुल और निराला के गीतों में अद्भुत साम्य प्राप्त होता है । अनुभूति और अभिव्यक्ति के जिन पक्षों को दोनों कवियों ने प्रतीकों, मिथकों एवं गीति-भंगिमाओं के माध्यम से व्यक्त किया है उसमें समानता के सूत्र अंतर्ग्रथित प्रतीत होते हैं । इस क्रम में वे नव-राहों का सृजन करने के साथ अनेक स्थलों पर पूर्वनिर्मित राहों का अतिक्रमण भी करते है । शोध-प्रबंध के प्रथम अध्याय का शीर्षक

गीतिकाव्य का परिचयात्मक विश्लेषण है, जिसमें गीत, गीति, गीतिकाव्य तीनों शब्दों के प्रयोग एवं अर्थ की विविध छॉटाओं को आरेखित करने का प्रयास किया गया है । इस क्रम में गीतिकाव्य का उद्‌भव एवं विकास, अर्थ एवं परिभाषएँ, विशेषताएँ, लक्षण एवं स्वरूप, गीतिकाव्य की विषयवस्तु तथा गीतिकाव्य के वर्गीकरण पर विचार किया गया है । गीत राग-रागिनियों में निबद्ध ऐसी पद-रचना होती है जो विशेषतः गेय होते हैं । गीति को आर्या छंद का एक भेद माना गया है जिसमें 12 और 18 मात्राएँ होती है । गीति का प्रयोग सामान्यतः गीत या गीतिकाव्य के लिए किया जाता है इनमें कुछ भिन्न तत्त्व होते हैं । वस्तुतः गीत समूह रूप में गाया जाता है और गीति में वैयक्तिक गान का भाव अधिक पाया जाता है । गीत संगीत के अधिक निकट है और गीति में काव्यगत भावों का उत्कर्ष पाया जाता है । इस प्रकार गीति में भाव स्वतः-स्फूर्त रूप से हृदय से निष्काषित होते हैं और गीत में रचना पद्धति पर विशेष ध्यान दिया जाता है । अतः गीत और गीति में बहुत सूक्ष्म अंतर विद्यमान है । गीतिकाव्य, गीति और काव्य का सम्मिश्रित रूप है । इसका मूलभूत आधार गीत ही है । इसमें आत्माभिव्यक्ति के दृष्टिकोण से विचारों की एकरूपता रहती है । बांग्ला में 'काव्यगीति' शब्द का प्रचलन है । हिन्दी में गीतिकाव्य की जो अवधारणा है, बांग्ला में 'काव्यगीति' भी उसी अर्थ में प्रयुक्त होता है । हॉलाकि बांग्ला 'काव्यगीति' का अर्थ संकुचित हो प्रेम-प्रकृति एवं निजी भावों की कविताओं तक रह जाता है, फिर भी 'गीतिकाव्य' और 'काव्यगीति' में कोई मूलभूत अंतर नहीं पाया जाता । इस प्रकार गीतिकाव्य में वैयक्तिक भावना, संगीतधर्मिता, तीव्र भाववेग, संक्षिप्तता, रागात्मकता, चित्रात्मकता आदि के गुण पाए जाते हैं । इस पाठ में विषयगत आधार पर गीतिकाव्य को कई भागों में बाँटा गया है और इसी आधार पर निराला और नज़रुल के गीतिकाव्यों की तुलना की गई है ।

द्वितीय अध्याय निराला और नज़रुल के व्यक्तित्व और कृतित्व का आरेखन प्रस्तुत करता है । अध्ययन से स्पष्ट पता चलता है कि दोनों की कालावधि में आश्चर्यजनक साम्य है । साथ ही जीवन की परिस्थियाँ, व्यक्तित्व एवं रचनाएँ भी अद्‌भुत साम्य दर्शाती हैं । निराला ने उत्तरप्रदेश के मध्यवर्ती क्षेत्र में जन्म लेकर बंगाल के महिषादल और महानगर कलकत्ता में जीवन यापन किया और नज़रुल ने बंगाल के वर्धमान जिले के चुरुलिया नामक स्थान पर जन्म लेकर पार्श्वर्ती बिहार के स्थानों में जीवन यापन किया । परिणामतः दोनों को हिन्दी और बांग्ला भाषी लोकसमुदायों के बीच रहकर अपनी प्रतिभा को सींचने और संवारने का अवसर मिला । फलस्वरूप इनके गीतिकाव्यों में संवेदना के साथ सम्प्रेषणीयता की अंतरंगता के अनेक स्तर समान रूप से दिखलाई पड़ते हैं ।

दोनों कवियो का जन्म उस युग में हुआ था जब देश गुलामी की जंजीरों में जकड़ा हुआ था । संघर्षमय जीवन की त्रासदियों को झेलते हुए दोनों को अनेक अनुभव प्राप्त हुए । जीवन के विषाक्त अनुभवों ने दोनों कवियों में विद्रोह का स्वर प्रस्फुटित किया । किसी भी कवि की रचना तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक एवं अन्य परिस्थितियों से प्रभावित होती है । संवेदनशील कवि समाज में व्याप्त अंधकार को दूर करने के लिए तलवार रूपी कलम का सहारा लेता है और लोगों को जागृति प्रदान करता है । ऐसे ही कवियों की पंक्ति में निराला और नज़रुल आते हैं जो युगद्रष्टा होने के साथ-साथ युगस्रष्टा भी थे । दोनों ने अनेक गीतिकाव्यों की रचना कर अपने भावों को अभिव्यक्ति प्रदान की । यद्यपि संख्या की दृष्टि से निराला और नज़रुल के गीतों में अत्यधिक पार्थक्य है परन्तु दोनों के गीतों में प्रवृत्तिगत साम्यता के साथ विषयगत समानता के भी दर्शन होते हैं ।

तृतीय अध्याय में निराला और नज़रुल के गीतिकाव्य के भावपक्ष का विवेचन किया गया है । इस अध्याय में भाव का अर्थ स्पष्ट करते हुए भाव के विभिन्न पक्षों को प्रकृत्तिपरक

भाव, भक्ति भाव, व्यक्तिपरक भाव और लोक भाव के अंतर्गत रखकर विभिन्न उपशीर्षकों में विभाजित कर उनका विवेचन और विश्लेषण किया गया है ।

भाव वस्तुतः रचनाकार की संवेदनात्मक अनुभूति होती है । इसका सम्बन्ध मानव के मानसिक तत्व से जुड़ा हुआ होता है । निराला और नज़रुल ने कभी अपने भावों को प्रकृति के सुषमा के रूप में उभारा है तो कभी भक्ति में लीन भक्त की तरह, कभी प्रणयानुभूति और वेदनानुभूति के क्षणों को जिया है तो कभी लोक के मदमस्त वातावरण को चित्रित कर भावों को अभिव्यक्ति प्रदान की है ।

प्रकृति के विभिन्न पक्षों को दर्शाते हुए निराला कभी प्रकृति का आलम्बनगत चित्रण करते हैं तो कभी रसाश्रित उद्दीपनात्मक रूप का, कभी वे प्रकृति का मानवीकृत रूप दर्शाते हैं तो कभी प्रकृति को पृष्ठभूमि के रूप में प्रस्तुत करते हैं । कभी-कभी उनके प्रकृति में रहस्य के दर्शन भी होते हैं । नज़रुल की लेखनी का केन्द्रीय विषय समाज की समस्या को उकेरना था । इसी कारण उन्होंने प्रकृति को भी मानव मन से जोड़कर देखा है । हाँलाकि उन्होंने अपनी लेखनी से प्राकृतिक सुषमा के विभिन्न पक्षों को उकेरा है तथापि वे गम्भीर रूप से प्रकृति का आह्वान नहीं कर पाए ।

निराला और नज़रुल दोनों के गीतों में प्रकृति की संस्कृतिगत विशेषताएँ देखी जा सकती है । जहाँ नज़रुल ने प्रकृति को विषाद रूप में प्रकट किया है वहीं निराला कभी प्रकृति को एक कोमल श्रृंगार करती हुई युवती और कभी विद्रोहात्मक रूप में प्रस्तुत करते हैं । दोनों की कविताओं में प्रकृति का कोमल एवं भीषण रूप है । निराला और नज़रुल के भक्तिगीतों में पर्याप्त साम्य है । कुछेक स्थानों को छोड़कर दोनों के भक्तिगीत एक ही भाव के उद्गार को दर्शाते हैं । हाँलाकि नज़रुल ने इस्लाम और हिन्दु धर्म दोनों के भक्ति गीत लिखे हैं और निराला ने मात्र हिन्दु धर्म संबंधी गीत परन्तु फिर भी दोनों कवि

हमें भक्ति-भावना में ओत-प्रोत दिखाई देते हैं । चाहे सरस्वती वन्दना हो या फिर कृष्ण प्रशस्ति गीत सभी क्षेत्रों में भक्ति-भाव का सम्पुन्ज उमड़ कर आता हुआ प्रतीत होता है । दोनों के भक्ति भावना का मूल स्वर विश्वमंगल की भावना है ।

निराला और नज़रुल दोनों ने जीवन के वेदनातप्त धरातलों एवं प्रेमविह्वल क्षणों का अनुभव किया था । इसी कारण दोनों की व्यक्तिगत अनुभूतियाँ बहुत कुछ समान प्रतीत होती है । दोनों ही अपने गीतों के माध्यम से यह कहते सुनाई पड़ते हैं कि जो वेदना वे लोगों के समक्ष व्यक्त न कर पाए उसकी गूँज उनके गीतों में विद्यमान है । दोनों ने प्रेम के सहज, सरल रूप को अभिव्यक्ति प्रदान करते हुए प्रेम के भोग पक्ष की अपेक्षा त्याग पक्ष पर अधिक बल दिया है ।

निराला और नज़रुल दोनों ही लोक कवि थे । लोक की भावनाओं, रीति-रिवाजों और लोक संस्कृति को जितना इन दोनों कवियों ने परखा था उतना ही लोक जीवन को स्वयं भी जिया था । जहाँ नज़रुल बंगाल के संथाल और बाउल जैसे लोकजीवन की झाँकी प्रस्तुत करते हैं वही निराला उत्तर प्रदेश के अवधी और भोजपुरी लोकगीतों का मनोरम दृश्य प्रस्तुत करते हैं । चाहे लोक के देशी, ठेठ शब्द हो या मन को रमाती लोकधुन या फिर लोकगीतों का अनोखा ढाँचा, सभी पक्षों का समायोजन करते हुए दोनों कवियों ने अनेक गीतों की रचना की और जनमन के कवि बन गए ।

चतुर्थ अध्याय निराला और नज़रुल के गीतिकाव्यों का वैचारिक पक्ष है । जहाँ भाव का संबंध हृदय से अधिक होता है वहीं विचार का संबंध बुद्धि से होता है । इस अध्याय को आध्यात्मिक विचार, दार्शनिक विचार, धार्मिक विचार, सामाजिक विचार, राष्ट्रीय विचार और प्रशस्ति गायन में विभाजित किया गया है ।

निराला के अद्वैत दर्शन एवं नज़रुल के दार्शनिक विचारों में समानता तो है

किन्तु नज़रुल किसी एक दर्शन में विश्वास नहीं रखते थे । वे समाज की विविधता के अनुकूल दर्शन में भी व्यवहारिकता की दृष्टि से सबके समन्वय के पक्षधर थे । उनके दर्शन में दैन्य भाव के अतिरिक्त विद्रोह भी है और यही तथ्य उन्हें निराला के दार्शनिक विचारों से भिन्नत्व प्रदान करता है । दोनों की समाजवादी विचारधारा के सिद्धांत की पृष्ठभूमि एक ही है । समाज के विविध पक्षों का सूक्ष्म निरीक्षण कर दोनो ने सामाजिक रूढ़ियों का विरोध किया । समाज के शोषित वर्ग को दोनों कवि जागृत करते हुए विप्लवी मार्ग की ओर प्रशस्त करते हैं । नारी का बहुविध चित्रण करते हुए दोनों कवि नारी को उच्च आसन में आसीन करते हैं । समाज में व्याप्त वैमनस्य को दूर करते हुए निराला और नज़रुल समानता, स्वतंत्रता और मानवतावाद के आदर्शों की स्थापना करते हैं । निराला और नज़रुल दोनों ने भावविह्वलित राष्ट्रीय गीतों की रचना की । दोनों ही राष्ट्र को पराधीनता की बेड़ियों से मुक्त कराना चाहते थे । इसी कारण वे विद्रोह का आह्वान करते हैं । साथ ही अपनी मातृभूमि की सुषमा का वर्णन कर जन-मानस के मन में राष्ट्रीय भाव को जागृत करते हैं । देश को उन्नति के पथ पर आसीन करने के लिए दोनों कवि खुलकर कुसंस्कारों का विरोध करते हैं । दोनों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से युगनायकों का जो प्रशस्ति गायन गाया है उससे मानवता को एक नवीन दिशा प्राप्त हुई है ।

शोध-प्रबंध का पंचम और अंतिम अध्याय 'निराला और नज़रुल के गीतिकाव्यों का शिल्प-विधान' है । इस अध्याय में शिल्प के विविध उपकरणों को स्पष्ट करते हुए निराला और नज़रुल के शैलीगत विशेषताओं को उभार कर तुलनात्मक स्तर पर उनकी जाँच की गई है । प्रत्येक कवि की अपनी विशिष्ट शैली होती है । निराला और नज़रुल ने भी शिल्प के विभिन्न पक्षों को अपने काव्य में उकेरा है और काव्यजगत में अपना एक विशिष्ट स्थान निर्धारित किया है । दोनों ने ही शास्त्रीय मतों का निर्वाह तो किया है पर उन

मतों की रूढ़ियों में न बँधकर अपनी एक स्वच्छंद प्रवृत्ति को जन्म दिया है जिससे साहित्य जगत के नए-नए प्रतिमान उभरकर सामने आए और काव्यजगत को एक नूतन दिशा का अभिज्ञान प्राप्त हुआ ।

भाषा को दोनों कवियों ने अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप ढाला है । निराला ने छायावादी कोमलता को और नज़रुल ने बांग्ला भाषा की कोमलता को पौरुष प्रदान किया है । दोनों की भाषा सरल, सहज होने के कारण सम्प्रेषणीयता में बाधक नहीं बनी । दोनों ही छंदों के गूढ़ ज्ञाता थे । दोनों ने पारम्परिक छंद के बंधन को तोड़ा और मुक्त छन्द के हिमायती बने । भारतीय और वैदेशिक शब्दों के प्रयोग से दोनों ने अपने गीतों को सजाया और अपने भावी कवियों का मार्ग प्रशस्त किया । अपनी रचनाओं में दोनों ने अलंकारों का प्रयोग तो किया पर भावाभिव्यक्ति में उन्हें बाधक नहीं बनने दिया । ज़रूरत पड़ने पर उन्होंने अलंकारों के शास्त्रीय स्वरूप को तोड़ा और अपनी आवाभिव्यक्ति को सशक्त बनाया ।

बिम्बों की सृष्टि में दोनों ही कवि अद्वितीय प्रतीत होते हैं । लोकजीवन एवं प्रकृति से बिम्बों को ग्रहण कर दोनों अपने काव्य को उत्कर्ष पर पहुँचाते हैं । नज़रुल अपने बिम्बों के निदर्शन द्वारा देश की अचेतन जनता को जगाने में अधिक सचेष्ट प्रतीत होते है । जबकि निराला अपने बिम्बों द्वारा मातृभूमि को शोभामंडित करते हुए दिखाई पड़ते हैं । पौराणिक बिम्बों की सृष्टि में दोनों निष्णांत हैं ।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भावाभिव्यक्ति एवं शिल्पाभिव्यक्ति के विविध स्तरों पर निराला एवं नज़रुल एक दूसरे के निकट जान पड़ते हैं । यद्यपि शिल्प के राग तत्व एवं छंद तत्त्वों की ओर दृष्टिपात करने पर निराला नज़रुल की अपेक्षा कमजोर

प्रतीत होते हैं किन्तु दोनों सम्प्रेषण की विविध शैलियों द्वारा विविध प्रसंगों को उदात्त रूप में प्रकट करते हैं ।

इस शोध के माध्यम से निराला और नज़रुल के गीतिकाव्यों के प्रवृत्तिगत साम्य और वैषम्य का मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है । कुछेक स्थलों को छोड़कर दोनों गीतकार साम्यगत भावों का प्रदर्शन करते हैं । तुलनात्मक स्तर पर दोनों के गीत भक्ति, प्रणय, राष्ट्रीय चेतना, सामाजिक चेतना, लोक भाव के तमाम स्तरों को उजागर करते हुए एक वैशिष्ट्य निर्धारण करता है । साहित्यजगत के सभी शिक्षार्थी दोनों के विविध प्रयोगों से उपकृत तो हुए ही हैं साथ ही दोनों ने अपनी रचनाओं और व्यक्तित्व के प्रभाव के द्वारा जनमन पर भी अमिट छाप छोड़ा है ।

शोधार्थी का विवरण

नाम	:	शिप्रा बसु
शिक्षा	:	एम. ए. (हिन्दी)
विभाग	:	हिन्दी विभाग
शोध प्रबंध का नाम	:	निराला और नज़रुल के गीतिकाव्यों का तुलनात्मक अध्ययन
प्रवेश के भुगतान की तिथि	:	03.12.2001
शोध-प्रस्ताव की संस्तुति	:	
(i) बी.पी.जी.एस.		19.10.2001
(ii) स्कूल बोर्ड		30.10.2001
पंजीकरण संख्या एवं तिथि	:	604 of 30.10.2001

NEHU LIBRARY
Acc No. 103670
Acc By... lnv
Date 27-8-07
Class by
Sub.Heading by
Enter by
Transcribed by

अध्यक्ष

हिन्दी विभाग

निराला और नज़रुल के गीतिकाव्यों का तुलनात्मक अध्ययन

अनुसंधित्सु

शिप्रा बसु

हिन्दी विभाग

NORTH-EASTERN HILL UNIVERSITY LIBRARY
Date...............

द्वारा

पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय के हिन्दी विषय में डॉक्टर ऑफ फिलासफी उपाधि के लिए अपेक्षित आवश्यकता की आंशिक पूर्ति हेतु प्रस्तुत

Thesis

Acc 103670
Acc am
Date 27-8-07
Cla.
Sub.
Ente.
Trans

पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय

जुलाई, 2006

घोषणा

मैं *शिप्रा बसु* एतदद्वारा घोषित करती हूँ कि इस शोध-प्रबंध की विषय-सामग्री मेरे द्वारा किए गए कार्यों का परिणाम है । इस शोध-सामग्री के आधार पर न तो मुझे, और जहाँ तक मुझे ज्ञात है, किसी अन्य को पहले उपाधि प्रदान की गयी है और न ही यह शोध-प्रबंध मेरे द्वारा कोई अन्य शोध-उपाधि प्राप्त करने के लिए किसी अन्य विश्वविद्यालय/संस्थान में प्रस्तुत किया गया है ।

इसे पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय के सम्मुख हिन्दी विषय में डॉक्टर ऑफ फ़िलॉसफी की उपाधि के लिए प्रस्तुत किया जाता है ।

18.07.06

अध्यक्ष | निर्देशक | शोधार्थी

अध्यक्ष/Head
हिन्दी विभाग Hindi Deptt.
पू. प. वि. वि. शिलांग 22
N. E. H. U. Shillong-22

प्राक्कथन

प्राचीन काल से मनुष्य अपने भावों की अभिव्यक्ति का साधन खोजता रहा है । कभी ध्वनि-समूहों की सांगीतिक अन्विति के माध्यम से तो कभी शब्द-संयोजन के साहित्यिक वितान की सहायता से मानव-जाति ने अपनी भावाभिव्यक्ति को संगुंफित कर मानव-मन को आह्लादित करने का प्रयत्न किया है । मनुष्य की इसी खोज ने 'कला' को जन्म दिया जिसे कालान्तर में ज्ञान की विविध कोटियों में रखकर व्याख्यायित करने की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई । रचना कोई भी हो 'कला' वह सबसे पहले होती है । स्वयं को उत्कृष्टतम सिद्ध करने के लिए मनुष्य ने भिन्न-भिन्न रूपों में अपनी प्रतिभा का संचयन किया है । संस्कृति, शिल्प, साहित्य आदि का उदय इसी प्रक्रिया के तहत हुआ । पृथ्वी के भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न-भिन्न संस्कृतियाँ बनी । तमाम तरह के साहित्य लिखे गए और अनन्त कला रूपों ने जन्म लिया । यह प्रक्रिया निरंतर चलती रही, मानव अपने भावों को आलोड़ित करता गया और नव-नवीन निर्माण से विश्व नूतन पथ की ओर अग्रसर होता रहा ।

भारत-भूमि में समय-समय पर विभिन्न भी नवीन संस्कृतियों का उत्थान-पतन हुआ और हर समय में रचनात्मक प्रतिभाओं ने अपनी उत्कृष्टता से भारतीय संस्कृति को उत्कर्ष पर पहुँचाया । इसी सफर के दौरान विभिन्न मत-मतान्तरों का निर्माण हुआ, उनमे परिवर्तन, संशोधन होते रहे ।

'कविता' कला की उत्कृष्टतम अभिव्यक्ति मानी जाती है । इसके माध्यम से स्थूल से लेकर सूक्ष्म तक, अंतर से लेकर वाह्य तक, सभी को अभिव्यक्ति मिल सकती है । इतना ही नहीं, जो है नहीं, जो हो नहीं सकता, जो आकाश के पार है, जो पृथ्वी के गर्भ में है, यानी कुछ भी ऐसा नहीं है, जो कविता की सीमा के बाहर हो । कविता के माध्यम से मानव, प्रकृति सृष्टि आदि के प्रत्येक रूप की अभिव्यक्ति संभव हो पाती है । उन्नीसवीं सदी

के दो महान कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला एवं काज़ी नजरुल इस्लाम की कविताओं में भी मानव, प्रकृति एवं सृष्टि के अनुपम रूपों के दर्शन होते हैं । दोनों रचनाकारों ने स्वतंत्रता से पूर्व देश की स्थिति को भली-भाँति पहचाना, परखा है । अपनी रचनाओं के माध्यम से दोनों ने ही भारत के जन-जन तक राष्ट्रीय, सामाजिक और सांस्कृतिक संदेश को पहुँचाया ।

निराला के विषय में श्री दूधनाथ सिंह ने कहा है कि 'निराला आधुनिक हिन्दी के पहले और अब तक के संभवतः अंतिम सम्पूर्ण कवि हैं । तुलसीदास के बाद निराला ही ऐसे कवि हैं, जिसके कण्ठ से समय का सत्य अपनी सम्पूर्णता में बोलता सुनाई देता है । मध्यकाल की जीवन-विडम्बना और स्वप्न को जिस तरह तुलसीदास ने अपनी संवेदना की महाकाव्यात्मक समग्रता के भीतर पुनर्संघटित किया, निराला ने भी बीसवीं शताब्दी की भारतीय मनुष्यता के द्वन्द्व को उसकी आधुनिकता के विक्षेप के बीच, बेशक महाकाव्यात्मक नहीं तो खण्ड-खण्ड की समग्रता में आयत्त किया । शायद ही किसी और कवि के भीतर बदलते हुए आधुनिक समय की छवियाँ इतने विविध तथा अनेकाग्र रूपों में ढलती दिखाई देती है । जिस प्रकार निराला बेबाक होकर अपनी बात कहते थे, उसी प्रकार वे स्वच्छंद होकर अपनी कविताओं में भी नए प्रयोग करते थे । हिन्दी जगत में मुक्त छंद की कविताओं के प्रारम्भ करने का श्रेय भी उन्हीं को जाता है ।

हिन्दी जगत में जहाँ एक ओर निराला ने जनमन पर अपना अमिट छाप छोड़ा है, वहीं बांग्ला जगत के काज़ी नज़रुल इस्लाम भी अपने काव्य में जनसम्पृक्ति से अछूते नहीं रहे । बाल्यकाल से ही उनकी रग-रग में सृजनधर्मिता विद्यमान थी । वे साहित्यकार मात्र न होकर एक सच्चे इंसान भी थे । मानवता से प्रेम ही उनका ध्येय था । निराला की तरह ही बहुमुखी प्रतिभा के धनी इस कवि को अपने जीवन के अधिकतर साल कष्ट में

काटने पड़े परन्तु उन्होंने कभी भी अपने आदर्शों के विपरीत कोई समझौता नहीं किया । इसी कारण वे जनकवि बन पाए । इस सम्बन्ध में अब्दुल अज़ीज़ का मानना है -- 'हास्यप्रिय एवं विशाल ह्रदय नज़रुल में मनुष्यों को आकर्षित करने की एक अद्‌भुत शक्ति थी । इस कारण वे जहाँ कहीं भी जाते वहीं जनसमूह उन्हें घेर लेता, उस जनसमूह के प्राणकेन्द्र नज़रुल होते ।

Mathew Arnald ने जर्मन कवि हेनरिथ हाइने के विषय में लिखा था -- 'He is only a brilliant soldier in the war of liberation of mankind'. यह कथन निराला और नज़रुल के दोनों क्षेत्र में चरितार्थ होता है । वास्तव में दोनों मानव जाति के मुक्तिसंग्राम के गीत गाने वाले वीर सैनिक थे ।

जहाँ एक ओर निराला ने अपनी काव्य-प्रतिभा से हिन्दी साहित्य को एक नई दिशा और दृष्टि प्रदान की वहीं नज़रुल इस्लाम ने भी अपनी गीतियों के माध्यम से बंगला साहित्य को बहुत गहराई से प्रभावित किया । लोक संपृक्ति दोनों कवियों की रचनाओं में काव्य-ऊर्जा के तरह विद्यमान है । दोनों कवि आधुनिक भारतीय साहित्य की रागात्मक और बौद्धिक चेतना के साथ सम्बद्ध भाषाओं की सृजनात्मक ऊर्जा का प्रतिनिधित्व करते हैं । यह एक आश्चर्यजनक संयोग और संगति है कि इन दोनों प्रतिभाओं ने लगभग समान कालावधि और सामाजिक, आर्थिक, साहित्यिक परिस्थितियों के बीच अपने पूरे जीवन को सम्पन्न किया । इस प्रसंग में दोनों की गीतियों की तुलना परोक्ष रूप से देश के दो वृहत् क्षेत्रों में विकसित सामासिक संस्कृति के विश्वसनीय विवेचन के लिए उपयुक्त है । विद्वानों के मतानुसार किसी पदार्थ या व्यक्ति के तुलनात्मक स्तर की जाँच उनकी समता और विषमता दोनों ही रूपों के दृष्टि में की जा सकती है । प्रस्तुत शोध-प्रबंध -- 'निराला और नज़रुल के गीतिकाव्यों का तुलनात्मक अध्ययन' - का आधार उनका असाधारण प्रवृत्तिगत

साम्य है । कुछ क्षेत्रों में हमें विषमता के कुछ आधार भी प्राप्त होते हैं किन्तु कमोवेश यह शोध उनकी साम्यता को ध्यान में रखते हुए ही किया गया है । निराला और नज़रुल की जीवन-यात्रा भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के ठीक पूर्व से लेकर स्वातंत्र्योत्तरकाल के कई दशकों को समाहित करती है । इसी कारणवश दोनों की संवेदनाओं एवं विचारधाराओं को बहुत कुछ समान धरातल से उद्भूत होने का अवसर मिला है । यह भी ज्ञातव्य है कि जहाँ निराला हिन्दी-भाषी उत्तरप्रदेश के मध्यवर्ती क्षेत्र में जन्म लेकर बंगाल के महिषादल और, महानगर कलकत्ता में वर्षों तक रहे वहीं नज़रुल ने बंगाल के वर्धमान जिले के चुरुलिया नामक स्थान पर जन्म लेकर परिस्थितिवश पार्शवर्ती बिहार के स्थानों में जीवन यापन किया । परिणामतः दोनों को हिन्दी और बंगला भाषी लोकसमुदायों के बीच रहकर अपनी प्रतिभा को सींचने और संवारने का अवसर मिला । फलस्वरूप इनके गीतिकाव्यों में संवेदना के साथ सम्प्रेषणीयता की अंतरंगता के अनेक स्तर समान रूप से दिखलाई पड़ते हैं । दोनों की भावसंपदा में उद्दाम भावावेग और संकल्प संवलित जागरण के स्वर निनादित हैं । सनातन-तत्त्वों को आधारभूत मानक मानते हुए दोनों ने भारत की महान परम्परा को अपने गीतों की गूँज से जागृत और उद्बुद्ध किया । अपनी भाषा-भंगिमाओ मे भी दोनों कवि एक दूसरे निकट जान पड़ते हैं ।

निराला और नज़रुल दोनों कवियों के गीतों में 'लोक' परम्परा एवं वैयक्तिक जीवन दृष्टि का व्यापक समन्वय पाया जाता है । 'लोक' और 'निज' का यह समन्वय रचनात्मकता के विराट आयामों की सर्जना करता है । दोनों ही कवि अपने निजत्व से मुक्त होकर इस विराट साधन पथ पर अग्रसर होते दिखाई देते हैं । इस क्रम में वे नव-राहों की सर्जना करते हैं, पूर्वनिर्मित राहों का विन्यास करते हैं और कहीं-कहीं उसका अतिक्रमण भी । दोनों ने बंगाल के मधूसूदन दत्त के मुक्त छंद की प्रेरणा ग्रहण कर अपने गीतों में

कलात्मक स्तर पर उसे उतारने का सचेष्ट प्रयास किया । यही नहीं, दोनों ने अपनी-अपनी भाषाओं में निहित राग-तत्त्वों की गंभीर पहचान करते हुए गेय शब्दों के साथ लय, तुक, यति, ताल आदि संगीतात्मक उपादानों के सहारे अपनी अनुभूतियों को विशिष्ट भाव-भंगिमा में स्पंदित किया । इस विशिष्ट गुण के कारण इनका काव्य अपने पूर्ववर्ती एवं समकालीन कवि प्रतिभओं की कृतियों से अलग हटकर सृजनशीलता के नवीन स्तरों को उद्घाटित करता है ।

निराला और नज़रुल के गीतों मे एक अद्भुत साम्य उनके जीवन की विविध घटनाओं और सम्प्रेषण की विविध शैलियों के पीछे दोनों के जीवन के विविध प्रसंग उदात्त रूप में प्रकट हुए हैं । जीवन के घोर संघर्षों के साथ पीड़ा की गहरी अनुभूति दोनों को अभिव्यक्ति की नई राहों के अन्वेषण के लिए प्रेरणा प्रदान करती है । अनुभूति और अभिव्यक्ति के इन पक्षों को दोनों ही कवियों ने जिन प्रतीकों, मिथकों एवं गीति भंगिमाओं के माध्यम से व्यक्त किया है उसमें समानता के सूत्र अंतर्ग्रथित प्रतीत होते हैं । उदाहरण के लिए दोनों ही कवि पारंपरिक काव्य रूढ़ियों में परिवर्तन करते हैं ।

देशप्रेम, जन-उद्बोधन, नवसंदेश अथवा ईश-वन्दना के सभी स्तरों पर नज़रुल और निराला के गीतों में अद्भुत साम्य दिखाई देता है । ऐसा प्रतीत होता है, ये दोनों महाकवि जीवन की समान भावभूमि से संकेत ग्रहण कर अपनी रचनाओं में उसे व्यक्त कर रहे थे ।

कालजयी रचनाकार में देशकाल को प्रभावित करने की अद्वितीय शक्ति होती है । निराला ने हिन्दी साहित्य को तथा नज़रुल ने बांग्ला जगत को गहराई से प्रभावित किया है । दोनों ही अपने गीतों के माध्यम से जन-मन के कवि बन गए ।

प्रस्तुत शोध प्रबंध कुल पाँच अध्यायों में विभक्त है जिसमें क्रमशः गीतिकाव्य, निराला और नज़रुल के व्यक्तित्व एवं कृतित्व, उनके गीतों के भाव-पक्ष, विचार-पक्ष एवं

शिल्प-पक्ष पर अध्ययन किया गया है ।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध अनेक विद्वजनों के अमूल्य मतों की सहायता से अपनी पूर्णता को प्राप्त हुआ है । इनमें सर्वप्रथम मेरे गुरु डॉ. माधवेन्द्र प्रसाद पाण्डेय (वरिष्ठ प्रवक्ता, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलाँग) का नाम आता है जिन्होंने प्रत्येक पल अपने बहुमूल्य विचारों एवं उत्साहवर्धक उक्तियों से मेरा मनोबल बढ़ाया और सतत् रूप से इस शोध-कार्य को करने के लिए प्रेरित किया । उनके द्वारा प्रद्त्त प्रेरणाशक्ति से ही प्रस्तुत शोध-कार्य पूरा हो पाया है । साथ ही मैं हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डॉ. दिनेश कुमार चौबे की भी आभारी हूँ जिन्होंने इस शोध-प्रबन्ध का सिर्फ अनुमोदन ही नहीं किया बल्कि अपने सार्थक सुझावों से सदैव उत्साहित करते रहे । नज़रुल साहित्य के सबसे बड़े विद्वान प्रो. रफिकुल इस्लाम (ढाका विश्वविद्यालय बांग्ला देश) तथा भारत स्थित पं. बांग्ला अकादमी के अरुण कुमार बसु की मैं ह्रदय से अभारी हूँ जिन्होंने मुझे नज़रुल के गीतिकाव्यों को समझने की सही दृष्टि प्रदान की । शान्तिनिकेतन विश्वविद्यालय में कार्यरत प्रो. रामबहाल तिवारी जी के बहुमूल्य मतों द्वारा मुझे निराला और नज़रुल को समझने की नई प्रेरणा दृष्टि प्राप्त हुई । इन सभी आचार्यों एवं विद्वानों की दृष्टि ने मुझे सृजनता के पथ पर अग्रसर किया और एक नवीन मार्ग की ओर उन्मुख किया । श्री अजय राय ने मुझे निराला के गीतों की संगीतात्मकता को समझने में दृष्टि प्रदान की जिसके लिए मैं उनकी आभारी हूँ । मैं श्री सुरेन्द्र पाठक का ह्रदय से आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने टंकन कार्य द्वारा मेरे शोध-प्रबंध को पूरा करने में सहायता प्रदान की । इनके अतिकरिक्त मैं उन सभी मित्रों और परिवार के सदस्यों का अभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से मुझे इस शोधकार्य को पूरा करने में मदद की ।

दिनांक : जुलाई, 2006

शिप्रा बसु
शोध-छात्रा
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलाँग

अनुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

प्राक्कथन I - VI

अध्याय

1. **प्रथम अध्याय : गीतिकाव्य : परिचयात्मक विश्लेषण** 1- 54
   - 1.1 सामान्य परिचय
   - 1.2 साहित्य और काव्य
   - 1.3 गीत का उद्भव और विकास
   - 1.4 अर्थ एवं परिभाषाएँ : तुलनात्मक निष्कर्ष
   - 1.5 गीतिकाव्य के तत्त्व
   - 1.6 गीतिकाव्य की विषय वस्तु
   - 1.7 गीतिकाव्य का वर्गीकरण
2. **द्वितीय अध्याय : निराला एवं नज़रुल का व्यक्तित्व एवं कृतित्त्व** 55- 85
   - 2.1 निराला के जीवन का परिचयात्मक इतिवृत
   - 2.2 निराला के कृत्तियों का क्रमिक रचनात्मक विकास
   - 2.3 नज़रुल के जीवन का परिचयात्मक इतिवृत्त
   - 2.4 नज़रुल की रचनाओं का विकास
3. **तृतीय अध्याय : निराला और नज़रुल के गीतिकाव्यों का भावपक्ष** 86-152
   - 3.1 भाव-अर्थ एवं परिभाषा, प्रकार
   - 3.2 प्राकृतिक भाव
   - 3.3 भक्ति भाव
   - 3.4 वैयक्तिक भाव
   - 3.5 लोक भाव
4. **चतुर्थ अध्याय :निराला और नज़रुल के गीतिकाव्यों का वैचारिक पक्ष** 153-214
   - 4.1 विचार-अर्थ एवं परिभाषा
   - 4.2 दार्शनिक, आध्यात्मिक, रहस्यवादी विचार
   - 4.3 सामाजिक विचार

4.4 धार्मिक विचार
4.5 राष्ट्रीय विचार
4.6 प्रशस्ति गायन

5. **पंचम अध्याय : निराला और नज़रुल के गीतिकाव्यों का शिल्प-विधान** 215-271
5.1 शिल्प-अर्थ एवं परिभाषा
5.2 भाषा एवं शब्द विधान
5.3 छंद विधान
5.4 अलंकार
5.5 बिम्ब और प्रतीक योजना

उपसंहार 272-276

परिशिष्ट 277-287

प्रथम अध्याय

गीतिकाव्य : परिचयात्मक विश्लेषण

प्रथम अध्याय

गीतिकाव्य : परिचयात्मक विश्लेषण

मनुष्य अपनी परिस्थितियों के वशीभूत हो अपने विचारों की अभिव्यक्ति करता आया है । कभी निजी तो कभी सामाजिक या फिर कभी प्राकृतिक सौंदर्य के वशीभूत हो ऐसी अभिव्यक्ति को जन्म देता है जो उसकी श्रेष्ठतम अभिव्यक्ति होती है। और यही अभिव्यक्ति साहित्य कहलाती है। मनुष्य जाति के उद्‌भव के साथ ही साहित्य की उत्पत्ति लक्षित होती है। भर्तृहरि ने तो यहाँ तक मान लिया है कि साहित्य, संगीत और कला विहीन मनुष्य साक्षात पुच्छविषाणहीन प्राणी होता है। यथा-

'साहित्य संगीत कला विहिनः साक्षात पशुपुच्छविषाणहीनः ।'

साहित्य एक विशाल समुद्र की भाँति अपने अंचल में अनगिनत शब्दों के मणिकांचनों का समावेश किये हुये है। वैदिक युग से ही साहित्य संबंधी जिज्ञासा को शांत करने के लिये मानव ने भाँति-भाँति से 'साहित्य' शब्द को परिभाषित किया है। कभी कुछ तथ्यों को बढ़ाकर, कभी घटाकर, कुछ जोड़कर और कुछ छोड़कर, अनेक प्रकार से इन परिभाषाओं को परिपूर्ण करने का प्रयास किया जाता रहा है।

कोशीय परिभाषाओं के अनुसार साहित्य का अर्थ 'साथ', 'संयोग' तथा 'हितयुक्त होने का भाव' है। बृहत हिंदी कोश में साहित्य को इस प्रकार से परिभाषित किया गया है- 'साथ, संयोग, मेल, लिपिवद्ध विचार, ज्ञान आदि, हितयुक्त होने का भाव'[1] हिंदी साहित्य कोश में साहित्य शब्द पर विचार करते हुए यह माना गया है कि 'सहित' शब्द के साथ 'शत्' प्रत्यय जोड़ने से साहित्य शब्द की व्युत्पत्ति हुई है। 'साहित्य' शब्द की विस्तृत व्याख्या करते हुए आगे लिखा गया है-

'साहित्य का अर्थ है शब्द और अर्थ का यथावत सहभाव, अर्थात साथ होना।[2]

इस प्रकार सार्थक शब्द मात्र का नाम साहित्य है। साहित्य मनुष्य के भावों और विचारों की समष्टि है।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ज्ञान राशि के संचित कोश को ही साहित्य मानते हैं। हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग के तेरहवें अधिवेशन में स्वागताध्यक्ष के पद से काव्य के विषय में अपना विचार व्यक्त करते हुए वे कहते हैं- 'ज्ञान-राशि के संचित कोष ही का नाम साहित्य है।'[3] हिंदी साहित्य के मूर्धन्य कथाकार प्रेमचन्द ने साहित्य की सीधी सादी परिभाषा देते हुए कहा है कि साहित्य जीवन की आलोचना है।[4] तात्पर्य यह कि साहित्य वही है जो जीवन की बहुविध व्याख्या प्रस्तुत करता है। जीवन का सम्यक चित्रण करने के कारण ही साहित्य संस्कार के भाव से युक्त होकर मनुष्य के दोषों का परिहार करता है और पूर्ण मानवता की अनुभूतियों के माध्यम से विराट मानवता की सिद्धि के लिए आवश्यक माध्यम है। स्पष्ट है कि साहित्य में संस्कार का होना ज़रूरी है।

प्राचीन काल में साहित्य शब्द शास्त्र के अर्थ में प्रयुक्त होता था, परंतु बाद में साहित्य शब्द काव्य के रूप में ही मान्यता प्राप्त करने लगा। पूर्वोक्त कथन में भर्तृहरि ने साहित्य, संगीत और कला की त्रयी में साहित्य को काव्य का ही समानार्थक माना है। वस्तुतः प्राचीन काल में रचित काव्य ही साहित्य की एकमात्र विधा थी। सबसे पहले साहित्यशास्त्र नहीं अपितु काव्यशास्त्र लिखा गया था। अतः ईशा की सातवीं शताब्दी में साहित्य शब्द काव्य के लिए प्रयुक्त होने लगा था।[5] यहाँ तक कि भरतमुनि द्वारा रचित नाट्यशास्त्र भी काव्य विधा में लिखा गया था। उन्होंने अपने नाट्यशास्त्र में काव्य के लक्षण लिखते हुए कहा- शुभ काव्य में सात बातें होती हैं- मृदु ललित पदावली, गूढ़शब्दार्थहीनता, सर्व सुगमता, युक्तिमता, नृत्य में उपयोग किए जाने की योग्यता, रस के अनेक स्रोतों के बहाने का गुण और संधियुक्तता।[6]

अपने विस्तृत स्वरूप के बावजूद काव्य अनेक विद्वानों द्वारा समय-समय पर विचारित विश्लेषित होता रहा है। संस्कृत के विद्वानों की परिभाषाओं को लक्षणबद्ध करने के अतिरिक्त कई विद्वानों ने काव्यविषयक मौलिक विचार भी व्यक्त किए हैं। अग्निपुराण में काव्य की परिभाषा देते हुए कहा गया है- इष्टार्थ, संक्षिप्त वाक्य, अलंकार, गुण और दोष ये पाँच बातें दृष्टित हैं जिससे बाह्य रूपरेखा की स्पष्टता होती है।[7] प्रस्तुत परिभाषा में काव्य का मुख्य रूप स्पष्ट नहीं हो पाया है। काव्य की अधिक प्रामाणिक और स्पष्ट परिभाषा देते हुए भामह ने शब्द और अर्थ के संयोग को काव्य माना है। यथा-शब्दार्थो सहितौ काव्यम् [8] संस्कृत काव्यशास्त्रियों में भामह से अधिक व्यापक काव्य की परिभाषा दण्डी ने दी है और माना है कि काव्य को शोभा प्रदान करने वाला धर्म अलंकार है-

काव्य शोभाकरान् धर्मान् अलंकरान् प्रचक्षते।

तैः शरीरं च काव्यानालंकाराश्च दर्शिता।[9]

वामन ने शब्दार्थ शरीर वाले काव्य की आत्मा रीति को माना है- रीतिरात्मा काव्यस्य [10] रुद्रट ने शब्द और अर्थ दोनों को काव्य माना है- ननु शब्दार्थौ काव्यम् । इसी प्रकार विभिन्न संस्कृताचार्यों ने काव्य की विभिन्न परिभाषाएँ देते हुए कभी ध्वनि को, कभी रीति को तो कभी अलंकार को काव्य की आत्मा माना है। आचार्य मम्मट ने काव्य की व्याख्या करते हुए काव्य को दोषरहित, गुण सहित एवं यत्र तत्र अलंकार विहिन शब्दार्थ माना है। यथा-

तद् दोषौ शब्दार्थौ सगुणानवलकृति पुनः क्वापि। [11]

जयदेव ने भी कुछ इसी प्रकार की परिभाषा देते हुए काव्य को दोषहीन तथा गुण, अलंकार, लक्षण, रीति, रस और वृत्ति से समुपेत वाक्य मानते हुए लिखा-

निर्दोषगुणालङ्कारलक्षणरीतिवृत्तम वाक्यं काव्यं। पं. विश्वनाथ ने काव्य की अधिक व्यापक परिभाषा देते हुए काव्य के शरीर और उसकी आत्मा रस को महत्त्व देते हुए कहा- वाक्यम् रसात्मकं काव्यम् । अर्थात काव्य रसात्मक वाक्य को कहते हैं। संस्कृत काव्यशास्त्र के अंतिम प्रखर के आलोक पं. राज जगन्नाथ ने काव्य को रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करने वाला शब्द माना है- रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम् । [12]

इसप्रकार संस्कृत के आचार्यों ने अपनी-अपनी समझ के अनुसार काव्य की कई परिभाषाएँ दी।

पाश्चात्य विद्वानों ने भी समय-समय पर काव्यविषयक गूढ़ विचार अभिव्यक्त किये हैं । इन विद्वानों में प्लेटो और अरस्तू का नाम सर्वप्रथम आता है । अरस्तू ने माना 'काव्य भाषा के माध्यम से अनुभूति और कल्पना के द्वारा जीवन का पुनः सृजन है।'[13] एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका जैसे कोशीय परिभाषा में Poetry (काव्य) को 'art work of the poet' [14] माना गया है। पाश्चात्य कवि कॉलरिज ने कविता को परिभाषा देते हुए माना- 'Poetry is the best word in their best order' [15] अर्थात सर्वोत्तम शब्द अपने सर्वोत्तम क्रम में कविता होती है । प्रसिद्ध पाश्चात्य कवि वर्डसवर्थ का मानना है- 'काव्य मनुष्य और प्रकृति की छवि है । वह मनुष्य और प्रकृति को मूलतः परस्पर सामंजस्य करते हुए मानता है और सुन्दरतम तथा रोचक तत्वों का दर्पण।'[16] काव्य विषयक मत देते हुए उन्होंने आगे लिखा है- 'Poetry is the spontaneous overflow of powerful feelings; it takes its origin from emotions recollected in tranquility.'[17] अर्थात कविता शान्ति के क्षणों में संचित सशक्त अनुभूतियों का अकृत्रिम स्वछन्द प्रवाह है। परन्तु यह परिभाषा गीतिकाव्य तक ही सीमित है। W. H. Hudson ने भाव और कल्पना

के द्वारा जीवन की व्याख्या को ही काव्य माना है। Poetry is the interpretation of life through imagination and emotion.[18]

इस प्रकार अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने काव्य विषयक मत प्रकट किया है। काव्य विषयक यह विचार प्रशंसनीय है किन्तु परिपूर्ण नहीं है। एक और पाश्चात्य विद्वान जॉन डेनिस का मानना है कि कविता द्वारा मस्तिष्क को शांति प्राप्त होता है- कविता एक ऐसी कला है जिससे एक कवि अभिरुचि में उत्प्रेरण उत्पन्न करता है और इस प्रकार आनन्द की प्राप्ति, मस्तिष्क की अभिवृद्धि तथा एक विशेष संतोष की संप्राप्ति होती है।[19] कवि शेली कविता को सर्वसुखी और सर्वोत्तम मनों के सर्वोत्तम और सर्वसुखपूर्ण क्षणों के लेखा मानते हैं- 'Poetry is the record of the best and happiest moments of the happiest and best minds.'[20] कविता को अपने मूल रुप में जीवन को आलोचना मानते हुए मैथ्यू आरनाल्ड मानते हैं- "Poetry is at bottom, a criticism of life."[21] डॉ. जानसन के अनुसार "Poetry is the art of writing pleasure with truth by calling imagination to the help of reason."[22] अर्थात कविता एक ऐसी कला है जो कल्पना की सहायता से युक्ति के द्वारा सत्य को आनन्द में समन्वित करती है ।

रस्किन काव्य के विषय में कहते हैं कि कविता कल्पना के द्वारा रुचिर मनोंवेगों के लिए रमणीय क्षेत्र प्रस्तुत करती है- "It is the suggestion by the imagination of the noble grounds for the noble emotions"[23] लॉर्ड मैकाले के अनुसार- "By poetry we mean the art illusion of the imagination"[24] अर्थात शब्दों का ऐसा प्रयोग जिससे विचारों की अभिव्यक्ति हो सके। कौडवेल के अनुसार- "Poetry is the noiscent self-consciousness of man, not as an individual, but as a

sharer with others of a whole world of common emotion."[25] अर्थात कविता को सामूहिक मन की उदीयमान आत्म चेतना भी माना गया है।

काव्य संबंधी पाश्चात्य दृष्टिकोण भारतीय आचार्यों के विचारों से भिन्न हैं। काव्य विषयक जो परिभाषाएँ इन विद्वानों ने समय-समय पर दी हैं वे प्रशंसनीय हैं। हिन्दी के कई विद्वानों ने आगे चलकर इन्ही परिभाषाओं को आत्मसात किया और इन्ही के आधार पर नई परिभाषाएँ गढ़ी। संस्कृत और पाश्चात्य विचारकों की तरह हिन्दी साहित्याचार्यों ने भी काव्यविषयक महत्वपूर्ण मतों का प्रतिपादन किया है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के अनुसार- "कविता प्रभावशाली रचना है, जो पाठक या श्रोता के मन पर आनन्दमयी प्रभाव डालती है...... अंतःकरण की वृत्तियों के चित्र का नाम कविता है।"[26] साहित्य के विषय में वे मानते हैं- "ज्ञान राशि के संचित कोष ही का नाम साहित्य है।"[27]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल काव्य की परिभाषा देते हुए काव्य को "जिसप्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की यह मुक्तावस्था रसदसा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है, उसे कविता कहते हैं।"[28] डॉ0 श्यामसुन्दर दास ने साहित्य और काव्य को समानार्थी माना है। उनके अनुसार- "काव्य वह है जो हृदय में अलौकिक आनन्द या चमत्कार की सृष्टि करे। इस प्रकार हम देखते हैं कि काव्य कला है और काव्य शब्द साहित्य का समानार्थक है।"[29] कविवर सुमित्रानन्दन पंत साहित्य के विषय में अपना विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं- 'साहित्य अपने व्यापक अर्थ में मानव-जीवन की गम्भीर व्याख्या है।'[30] जगन्नाथ दास रत्नाकर द्वारा दी गई परिभाषा पं. जगन्नाथ के रमणीयार्थ प्रतिपादक

शब्द को दृष्टि में रखकर किया गया है। इन्होंने काव्य-निरूपण नामक लेख के अन्तर्गत लिखा है-

"होय काव्य रमणीय जो, काव्य कहावे सोय ।

रतनाकर लक्षण करत यह बहु ग्रंथनि जोय ।।"[31]

डॉ. कृष्णबिहारी मिश्र काव्य की परिभाषा न देकर कविता की उत्तमता पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं- 'गुणाधिक्य, अलंकार-बाहुल्य, रस-परिपाक एवं भाव-चमत्कार कविता की उत्तमता की कसौटी रहनी चाहिए।'[32] कुछ विद्वान काव्य को जीवन-प्रकृति का अंतर्दर्शन मानते हैं। लक्ष्मी नारायण सिंह के अनुसार काव्य जीवन-प्रकृति का अंतर्दर्शन है, उसकी अनुभूति है। यह अनुभूति कोई भावुकताजन्य स्फूर्ति नहीं, न कोई आध्यात्मिक कल्पना है बल्कि अखंड मानव-जीवन के व्यक्तित्व की अनुभूति है।[33] समर्थ समालोचक के रूप में परिगणित बाबू गुलाब राय काव्य की तथ्यपूर्ण व्याख्या प्रस्तुत करते हुए प्राचीन और वर्तमान आदर्शों पर तुलनात्मक प्रकाश डालते हैं। मुक्तक काव्य के पाठ्य और गेय दो रूपों में दृष्टिकोण भेद की चर्चा करते हुए उन्होंने पाठ्य और गेय विषय का प्रधान और विषयी प्रधान दृष्टिकोण का अन्तर स्वीकार किया और प्रगीत और गीत को अभिन्न माना।[34]

पं. रामनरेश त्रिपाठी लिखते हैं- 'स्वाभाविकता कविता का प्राण है। कविता प्रकृति का गान है, वह मस्तिष्क से नहीं हृदय से निकलती है।'[35] इस प्रकार त्रिपाठी जी ने सहजता, सौम्यता एवं भाव-प्रवणता को काव्य का प्राण मानते हुए उसे प्रकृति का गान एवं हृदय से उद्‌भूत माना है। डॉ. भगीरथ मिश्र ने भी साहित्य विषयक विचार व्यक्त किया है। उनके अनुसार - वाङ्‌गमय वाणी के द्वारा प्रकाशित समस्त अनुभव और ज्ञान है तथा साहित्य मनुष्य के अनुभव और ज्ञान का वह रूप है जो लिपिबद्ध होकर हमारे सामने आता

है या सुरक्षित रहता है।[36]

इस प्रकार समय-समय पर काव्य की विभिन्न परिभाषाएँ दी जाती रही है। जैसे-जैसे मानव मस्तिष्क का विकास होता गया वैसे-वैसे काव्य के नए प्रकार उभरने लगे और विज्ञजनों ने काव्य के कई भेदोपभेद किए। काव्य मुख्यतः दो भागों में विभक्त है-

(1) दृश्य काव्य

(2) श्रव्य काव्य

दृश्य काव्य को रूपक कहा गया और उसके दस भेद हुए । ये दस भेद नाटक, प्रकार, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहमृग, अंक, वीथी, प्रहसन आदि हैं। कालान्तर में उपरूपकों की भी सृष्टि हुई। दृश्य काव्य के सम्बन्ध नेत्रेन्द्रिय और श्रोत्रेन्द्रिय दोनों से है। परन्तु श्रव्यकाव्य का संबंध मात्र श्रोत्रेन्द्रिय से है। श्रव्य काव्य को तीन भागों में विभक्त किया जाता है- पद्य, गद्य और मिश्र अर्थात चम्पू काव्य। पद्यकाव्य के अन्तर्गत प्रबन्ध तथा मुक्तक काव्य आते हैं। प्रबन्धकाव्य को महाकाव्य तथा खण्डकाव्य और मुक्तक काव्य को प्रगीत, मुक्तक, गीतिकाव्य (विनयगीति, ग्रामगीति, कलागीति, भावगीति) आदि में बॉटा जाता है।

संस्कृताचार्यो ने काव्य के दो भेद मानते हुए मुक्तक को अपने आप में पूर्ण अर्थ व्यक्त करने वाला चमत्कारक माना है- मुक्तको श्लोक एवैश्चमत्काक्षमः सताम् ।[37]प्राचीन काल में मुक्तक की अपेक्षा महाकाव्य का अधिक महत्व माना जाता था। आनन्दवर्द्धन ने सर्वप्रथम मुक्तक काव्य की महत्ता को प्रतिष्ठापित किया। भामह ने भी मुक्तक काव्य पर अधिक विचार न कर काव्य के दो भेद प्रबन्ध और मुक्तक माना। दण्डी ने तो मुक्तक को प्रबन्ध पर ही निर्भर बताया किन्तु आनन्दवर्द्धन ने मुक्तक को रस-सिद्ध घोषित करते हुए ध्वन्यालोक में लिखा :-

" तत्र मुक्तकेषु रसबन्धाभिनिवेशिनः कवेस्तदा श्ररामैचित्यम्

तत्र मुक्तकेषु प्रबन्धेक्ति रस बन्धाभिनिवेशिनः कवयो दुश्यन्ते।"[38]

पं विश्वनाथ ने भी मुक्तक काव्य पर विचार विश्लेषण किया हैः-

"धन्दोबध्द्वपदं पद्य तेन मुक्तेन मुक्तम।

द्वभ्यां तु युग्मकं संदानितकं मिमिरिष्यते।।

कलापकं चतुर्भिश्च पंचभिः कुलकं मतम् ।"[39]

इन्होंने निरपेक्ष पद को मुक्तक माना है और पद्यों की संख्या के अनुसार इसका वर्गीकरण किया हैः- युग्मक, संदानितक अथवा विशेषक, कलापक और कुलक। प्रबंधकाव्य के अंतर्गत महाकाव्य और खण्डकाव्य का विभाजन किया गया है। मुक्तक की ही भाँति खण्डकाव्य को भी विद्वानों द्वारा परिभाषित किया जाता रहा है। साहित्यदर्पण 6/236 में खण्डकाव्य की परिभाषा देते हुए यह माना गया है कि जिन काव्यों में महाकाव्य के सभी गुण या लक्षण नहीं पाए जाते उन्हें खण्डकाव्य कहते हैं।

"खण्डकाव्यं भावेत्काव्यस्यैकदेशानुसार च।"[40]

इस प्रकार कालांतर में काव्य के विभिन्न अंगों का विकास होता गया और मानव अपने शत् शत् भावों की अभिव्यक्ति द्वारा पारलौकिक सुख का अनुभव करता गया।

गीत का उद्भव और विकास

गीत की सृष्टि प्राचीन काल से होती हुई प्रतीत होती है। वृक्षों को छूते हुए मंद पवन की ध्वनि, कल-कल निनादिनी झरने, पक्षियों का कलरव, नदियों के लहरों का शांत स्वर, सागर की भीषण गर्जना आदि अनेक रूपों में अनंत काल से प्रकृति में गीत विद्यमान रहा होगा। आज भी जब हम देखते हैं तो प्रकृति की प्रत्येक अभिव्यक्ति में गीत स्पंदित होते

रहते हैं। चाहे निर्झर की कल-कल ध्वनि हो या मेघों की गर्जना, प्रत्येक अवस्था में प्रकृति अपने संगीत की अभिव्यक्ति से मानव मन को आह्लादित करता रहा है। मानव मन इन्हीं तत्त्वों से तरंगायित हो गुनगुनाने लगा होगा जिससे गीत की धारा फूट पड़ी होगी। कभी कठिन परिश्रम करने पर मानव मन प्रकृति की मधुर ध्वनियों से प्रेरित हुआ होगा और अनजाने में अपने हृदय को सुखानुभूति प्रदान करने के लिए कुछ गुनगुना उठा होगा। यहीं से गीत की सर्वप्रथम धारा फूट पड़ी होगी। कालांतर में अपनी वाणी को विकसित कर मानव ने इन स्वरों में शब्दों का तालमेल बैठाया और यहीं से गीत की प्राचीन परम्परा का जन्म हुआ होगा। इस प्रकार मनुष्य के आंतरिक भावों की अभिव्यक्ति का सरलतम साधन प्राचीन काल से गीत ही रहा होगा।

गीत के उद्भव और विकास संबन्धी विचारधारा के विषय में भिन्न-भिन्न विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं। प्राचीन काव्य वस्तुतः गीतिपरक ही था। वैदिक आख्यानों, प्रार्थनाओं, स्तुतियों आदि में भी गेय तत्व की प्रधानता रही है। विद्वानों ने वेदों का अध्ययन कर इस तथ्य को उजागर किया है कि भारतीय गीतिकाव्य का अत्यंत समृद्ध और प्राचीनतम रूप इन ऋचाओं में हैं, साथ ही इनमें अनेक भारतीय उपाख्यानों प्रबन्ध-वृत्तों का महाकोष भी है। वेदों को आज भी अपौरुषीय माना जाता है अर्थात ऐसा माना जाता है कि वेद प्राचीन काल में ईश्वर द्वारा निर्मित हैं। इसकी प्राचीनता के विवाद में न पड़ते हुए भी इतना तो माना जा सकता है कि वेद ज्ञान-विज्ञान का वह प्राचीनतम कोश है जिसके माध्यम से हमें प्राचीन चिंतन एवं सभ्यता का ज्ञान मिलता है। वेदों के अध्ययन के दौरान कुछ विद्वानों ने लक्ष्य किया कि ये वेद निश्चिंत स्वर व्यवस्था से निबद्ध होते थे और सांगीतिक लय की सूक्ष्मतम तथ्यों से इनका निर्देश होता था। वैदिक ऋचाओं के पाठ अथवा सामगीत के वैदिक गानों में सांगीतिक गेयता की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। इससे संकेत मिलता है कि

मनुष्य के प्राचीनतम रचित साहित्य का मूल रूप गीतात्मक ही रहा होगा। इस प्रकार गीतिकाव्य की परम्परा वैदिक युग से ही प्रारम्भ हो चुकी थी।

संस्कृत साहित्य शास्त्र की ओर दृष्टिपात करने पर हम पाते हैं कि वहां काव्य को दृश्य और *श्रव्य काव्य में विभाजित किया गया है। श्रव्यकाव्य के अंतर्गत* खण्डकाव्य और *महाकाव्य आते हैं परन्तु गीतिकाव्य नामक भेद कहीं नहीं पाया जाता।* "संस्कृत में महाकाव्य के लक्षण इस प्रकार बने कि उसमें गीतिकाव्य का प्रवेश संभव नहीं हो सका। महाकाव्य में गीतिकाव्य के समावेश का प्रयास अत्यंत आधुनिक है। नीति या स्रोत पद्य-बद्ध होकर भी गीतिकाव्य नहीं, कारण आत्मनिष्ठा का अभाव है। खण्डकाव्यों में से अनेक में गीति तत्व प्रचुर मात्रा में विद्यमान है किन्तु वे शुद्ध गीतिकाव्य नहीं।"[41] मेघदूत में कालिदास ने वैयक्तिक अभिव्यंजना की है परन्तु इसमें गीतिकाव्य और आख्यान काव्य के तत्त्वों का समिश्रण है। जयदेव के गीत गोविन्द को गीतिकाव्य माना जाता है परन्तु यह गीतिकाव्य और गीतिनाट्य के बीच की रचना है।'[42]

गीत के उद्‌भव के विषय में पाश्चात्य विद्वानों का मत भी महत्वपूर्ण है। मार्क्सवादी चिंतक कॉडवेल के अनुसार आदि कविता का रूप वर्ग-विभेद रहित आदिम समाज के समूह गीतों में ही विद्यमान था। उनका कहना है:-"Early poetry is essentially collective emotion and is born in a group festival. It is not collective emotion of an unconditioned, instinctive kind; such as might be rowel in a herd by a foe. It is a collective emotion of a response conditioned by the needs of economic association."[43]

कॉडवेल निश्चित रूप से यह मानते थे कि प्राचीन काल में मानव समूहों में, झुण्डों में रहता था। जीने के लिए श्रम की आवश्यकता को कोई भी झुटला नहीं सकता

था। इसी श्रम के निवारण के लिए मानव सामूहिक उत्सव मनाता था और इन्हीं उत्सवों में गीत का सृजन हुआ था। इन अनुभूतियों की उत्पत्ति का मूल कारण भय नहीं था बल्कि उसकी आर्थिक आवश्यकताएँ थीं। इस प्रकार हम देखते हैं कि गीत के उद्‌भव संबंधी विचार-धारा के विषय में पाश्चात्य विद्वानों ने भी समय-समय पर अपना मत प्रदत्त किया है। एक और महत्वपूर्ण पाश्चात्य विचारक Dr.Meyer गीतिकाव्य के आदिस्वरूप पर विचार करते हुए कहते हैं:- "This was simply inarticulate cry of the primitive man, the sudden sense of fear delight wonder, grief or love expressed in a melodious sound or series of songs, the earliest form of poetry, this sound or series of sounds preserved by the peety of a later age in its original and now meaningless form in beded among the articulate words of a developed song."[44]

Dr.Meyer गीत का उद्‌भव मानव के अकस्मात चिल्लाहट से मानते हैं। उनके अनुसार मानव ने भय या हर्षवश कभी कोई ध्वनि का उच्चारण किया होगा जो धीरे-धीरे कई चरणों से गुजरते हुए अपने मौलिक स्वरूप में आया होगा। कुछ पाश्चात्य विद्वान गीत के विषय में यह भी मानते हैं कि प्राचीन काल में नृत्य-गीत एक दूसरे के बिना पूरक नहीं थे और गीति परम्परा का मूल-रूप नृत्य में प्रयुक्त गीत था। "No dance without singing and no song without a dance, songs for the dance were the earliest of all songs and melodies for the dance, the oldest music of every race."[45]

प्रारम्भिक काव्य सामान्य लोक द्वारा ही रचा जाता था और उनमें न तो विषयगत मौलिकता ही रहती थी और न ही प्रारम्भ या समापन का कोई विधान । तब के

युग में काव्य सामूहिक नृत्य-गान के रूप में था। इस युग में टेक अथवा समवेत गायन का प्रचलन था और एक पंक्ति गाने के पश्चात सम्पूर्ण समूह उसे दोहराता था। यह प्रचलन आज भी कजली ख्याल और लावनी जैसे लोक गीतों में पाया जाता है। लोक कवि आशु रचना करके मंच पर गाते थे। इसका एक उदाहरण "लेटो" (पं.बंगाल) दल में प्राप्त होता था। नजरुल भी आशु कवि के रूप में गाया करते थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि गीत का उद्भव प्राचीन काल से हो चुका था।

कुछ पाश्चात्य विद्वान जहाँ गीत की उद्भूति प्रकृतिजन्य मानते हैं, वहीं कुछ विचारक विशेषतः मार्क्सवादी विचारक इसे श्रमानभूतिजन्य मानते हैं। इस तथ्य की पुष्टि डॉ0 शिवकुमार मिश्र भी करते हैं और गीत को श्रमानुभूँतिजन्य ही मानते हैं। उनके अनुसारः- "इन गीतों में सामूहिक संवेगों की अभिव्यक्ति हुई है। चूँकि तब तक श्रम का विभाजन नहीं हुआ था, मनुष्य अपने सारे कार्य समूह में करते थे, अतः सामूहिक संवेगों की उत्पत्ति संभव थी।"[46] गीति में निजत्व के भाव की उत्पत्ति के विषय में चर्चा करते हुए वे कहते हैंः- "श्रम के विभाजन की प्रक्रिया जैसे-जैसे तीव्र होती गई वर्ग व्यवस्था भी कठोर होती गई। अब लोगों की समूची चेतना शासक वर्ग के इर्द-गिर्द केन्द्रित हो गई। कवि अब एकाकी व्यक्ति के रूप में रह गया। निष्क्रियता की परिस्थितियों ने उसे अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप प्रगति प्रदान किया।"[47]

गीतों का श्रमजन्य होना अपने आप में एक विशेषता ग्रहण किए हुए है परन्तु इस तथ्य से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि प्रकृति के सौंदर्य को देखकर ही मनुष्य में रागात्मक प्रवृत्ति उभरी और उसके अंतःस्थल रूपी बादल से गीत की वर्षा होने लगी यह भी ध्यातव्य है कि गीत की उत्पत्ति के पीछे मात्र रागात्मकता ही एकमात्र कारण नहीं था।

जैसे कि पहले विवेचन किया जा चुका है मार्क्सवादी व्याख्याकार गीत की उत्पत्ति श्रमानुभूतिजन्य मानते हैं। अपने संघर्षमय जीवन को सहज बनाने के लिए मनुष्य कभी-कभी लय, ताल और छंदों में शब्दों को बाँध लेता था और यहीं सामूहिक गीतों की उत्पत्ति हुई थी। दूसरी ओर डॉ. उमाशंकर तिवारी मानते हैं कि गीत की उत्पत्ति का मुख्य कारण मानव के आवेगात्मक भावों का परिणाम था। बाद में यह गीत धर्म के अंतर्गत भी अपना अस्तित्व खोजने लगे। उनके शब्दों में:- "कविता का आदिस्वरूप या आदिगीत मानव की अविवक्षित चिल्लाहट मात्र था। भय आनन्द, दुःख या प्रेम के आवेगात्मक भाव जब संगीतात्मक ध्वनि समूहों के रूप में सहसा अनायास अभिव्यक्त हुए तो वह अभिव्यक्ति चिल्लाहट के रूप में ही थी। यह ध्वनि या ध्वनि समूह अपने मूल रूप में अर्थ-रहित था जो परवर्ती युग के धार्मिक काव्य में भी अवशिष्ट रूप में वर्तमान था। अंतर इतना ही था कि इस विकसित रूप वाले गीत में विविक्षित शब्दों का भी समावेश हो गया था।"[48]

यदि उपर्युक्त तथ्यों पर विचार किया जाए तो गीत की उत्पत्ति के पीछे हम प्राकृतिक, भौगोलिक और सामाजिक आदि सभी कारणों का समावेश पाएँगे। डॉ0 माधवेन्द्र प्रसाद पाण्डेय का विचार इसी तथ्य की पुष्टि करता है। वे मानते हैं:- "गीत का उद्‌भव मानव की उस उद्दाम जिजीविषा का परिणाम था जिसकी सहायता से वह प्राकृतिक, भौगोलिक तथा सामाजिक विसंगतियों में भी जीने के लिए सतत् सचेष्ट एवं क्रियाशील था।"[49]

अतएव मानव के मन की प्रबल जीने की इच्छा, प्रकृति की मधुरिमा, समाज के लोगों के साथ मेलमिलाप की भावना और भौगोलिक कारणों से ही गीत का जन्म हुआ। विद्वानों के मतों की ओर दृष्टिपात करने पर यह स्पष्ट होता है कि लोक ही गीत की उत्पत्ति का आधार रहा होगा। चाहे सामूहिक चेतना की अभिव्यक्ति के रूप में हो या फिर

103670
Date..........

जनभाव के रूप में सभी के मूल में लोक की सत्ता ही स्थापित होती हुई प्रतीत होती है। "लोक वस्तुतः सामूहिक भाव है जिसमें व्यय नहीं युग अभिव्यक्त होता है। इसमें युग की पूरी पहचान छिपी होती है औपचारिकता के बिना।"[50] और लोक की इसी बड़ी शक्ति ने मनुष्य समाज का विकास किया। प्राचीनता से नवीनता की ओर प्रवहमान नदी की धारा की तरह लोक चिर प्रगतिशील रहा। प्रगति की उस धारा में लोक ने प्रकृति के साथ संपर्क स्थापित किया; अपनी भाषा की महत्ता को समझा; अपने अनुभूतियों से तादात्म्य स्थापित किया और इन अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने के विभिन्न उपाय खोज निकाला। अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने के इसी क्रम में गीत की उत्पत्ति हुई और लोक विराट सत्ता की प्रगतिशीलता से तादात्म्य स्थापित करते हुए गीत भी निरन्तर विकास के पथ पर अग्रसर होता।

डॉ. रामकुमार मिश्र के अनुसार "हिन्दी गीतों की सुदीर्घ परम्परा का विकास लोकगीतों से प्रारम्भ हुआ।"[51] इनमें वाममार्गी तान्त्रिक सिद्ध, गीतगोविन्दकार, जयदेव, विद्यापति सिद्धों का अनुसरण करते कबीर, नानक, दादु आदि, सूरदास, मीराबाई, तुलसीदास, रीतिकाल के अलबेली 'अलि' हितवृन्दावन लाल, भगत रसिक, आधुनिक युग के भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, द्विवेदी युग के बद्रिनाथ भट्ट, मैथिलीशरण गुप्त, मुकुटधर पाण्डेय, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, रायकृष्णदास, छायावादी युग में सुमित्रानन्दन पंत, प्रसाद, निराला, महादेवी वर्मा, रामकुमार वर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', तथा छायावादोत्तर काल में दिनकर, बच्चन, नरेन्द्र जानकीवल्लभ शास्त्री, सुमित्राकुमारी सिन्हा, अंचल, विद्यावती 'कोकिल' ने पाली, नीरज, वीरेन्द्र मिश्र, रामनाथ अवस्थी, हंसकुमार तिवारी, श्रीपाल सिंघ'क्षेम', शम्भूनाथ सिंघ, त्यागी, रामनाथ अवस्थी आदि उल्लेखनीय है। इस प्रकार गीतिकाव्य के विकासयात्रा को चार चरणों में बाँटा जा सकता है:-

1) प्राथमिक अवस्था- जहाँ गीतों में काव्यत्व का प्रसार न होकर गेयता का तत्त्व ही सर्वोपरि था। इन गीतों के स्वरूप का विकास संगीतशास्त्र और काव्य के दो रूपों में हुआ। इनमें वाद्ययंत्रों का प्रयोग भी अपेक्षित था।

2) द्वितीय अवस्था में संगीत से गीत को पृथक अभिव्यक्ति मिली। संगीत से शास्त्रीय विधान महत्वपूर्ण होता है जबकि आत्माभिव्यंजन और भावुकता का महत्त्व होता है। इस प्रकार गीतों में स्वर सामन्जस्य वाद्य-यंत्र एवं ताल पद्धति का होना आवश्यक नहीं माना गया है।

3) तृतीय अवस्था में भाव और संगीत समान स्तर पर आ गए और इनके वर्गीकरण द्वारा गीतों की कलात्मकता का विकास हुआ । यहाँ शब्द, मात्र लय विस्तार का साधन न रहकर अर्थाभिव्यक्ति का साधन बन जाते हैं । मध्ययुगीन सूर, तुलसी, मीरा के पद इसके साक्षी हैं।

4) चतुर्थ अवस्था में गीतिकाव्य शास्त्रीय विधान से पृथक हो अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाता है । जहाँ एक ओर संगीत का आग्रह छटता है वहीं आत्मनिष्ठा, आत्मानुभूति और आत्मभिव्यंजना का आग्रह बढ़ता है।

रामखेलावन पाण्डेय जी के अनुसारः- "गीतिकाव्य संगीत के शास्त्रीय-विधान से विभिन्न संगीतात्मकता का आवेश ग्रहण करता है। उसमें संगीत नहीं संगीतात्मकता है जिसके द्वारा विशिष्ट प्रभाव की योजना होती है और उसमें तीव्रता आती है। संगीत वहाँ बाह्य आरोप नहीं अंतर्निहित प्रभाव है। यह गीतिकाव्य की चरम परिणति है। गीतिकाव्य को राग-ताल के घेरे में डाल कवि सम्मेलनों के गायक कवि गीतिकाव्य की प्रकृत्ति का अपमान करते हैं।"[52] जब हम गीत शब्द की चर्चा करते हैं तो समान अर्थों में प्रयुक्त होने वाले कुछ अन्य शब्दों की ओर हमारा ध्यान जाता है, जैसे गीति, गीतिकाव्य, काव्यगीति और प्रगीत

आदि। अर्थ की दृष्टि से प्रयुक्त शब्द के अपने विशिष्ट अर्थ है और ये सभी शब्द गीत के ही विविध पक्षों को विशेष रूप में व्याख्यायित या प्रकाशित करते हैं।

इन शब्दों के कोशीय अर्थ में व्यापक भिन्नता दिखाई देती है और प्रत्येक शब्द अपने विशिष्ट अर्थ संदर्भों से अवृत्त प्रतीत होती है परन्तु विचार करने पर ये शब्द वस्तुतः गीत के ही विविध पक्षौं की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं। इनमें न तो आत्यंतिक विरोध है और न ही प्रयोग के स्तर पर व्यापक अंतराल। फिर भी विद्वानों ने इन शब्दों को अलग-अलग तरह से परिभाषित और व्याख्यायित किया विशेष रूप से हिन्दी के विचारकों ने गीत, गीति और गीतिकाव्य को एक ही अर्थ में प्रयुक्त किया है। इन तीनों शब्दों की व्याख्या भले ही अलग हो, अर्थ की दृष्टि से इनमें कोई अंतराल नहीं दिखता। यहाँ इस विवाद में न पड़कर यह जानना अधिक समीचीन होगा की गीत, गीति अथवा गीतिकाव्य क्या है और इनकी क्या सम्यक व्याख्या हो सकती है।

गीत, गीति, गीतिकाव्य

गीत शब्द की व्युत्पत्ति की ओर ध्यान देने से पता चलता है कि गीत शब्द संस्कृत के "गै" धातु में "क्त" प्रयोग के जोड़ने से बना है। इसका शाब्दिक अर्थ "गाया हुआ" है। संगीत रत्नाकार में गीत का सीधा-सपाट अर्थ देते हुए गीत को 'स्वरों का गठन' माना गया है जो 'मनोरंजक हो'। इसी प्रकार प्रामाणिक हिन्दी कोष में गीत को 'वह वाक्य पद या छंद माना गया है 'जो गाया जाता हो' और गाने की चीज़ विशेष हो। विश्व संगीतशास्त्र में गीत को व्याख्यायित करते हुए उसे ऐसा वाक्य माना गया है जो धातु या मात्रा युक्त हो। प्रस्तुत कोशीय परिभाषाओं से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि गीत में गेय तत्व का होना अनिवार्य है।

गीत प्राचीन काल से ही मनुष्य का अंतरंग अंग है। उसकी परम्परा वेदों में पाई जाती है। जब गीत की सृष्टि हुई तब मानव ने उस तथ्य की ओर ध्यान नहीं दिया था कि गीत को व्याख्यायित या परिभाषित किया जाय। कालान्तर में विभिन्न विद्वानों ने गीत शब्द को परिभाषित करते हुए अपना-अपना मत प्रदत्त किया। इन परिभाषाओं पर दृष्टिपात करने पर ही हमें गीत के मूलभूत स्वरूप की जानकारी प्राप्त होगी।

भारत के प्राचीनतम ग्रंथों में वेदों को परिगणित किया जाता है। चारों वेदों में एक सामवेद भी है। गीत का समावेश सामवेद में पाया जाता है। गीत के मूल को जानने के लिए भरतमुनि के नाट्यशास्त्र का विवेचन करने उचित होगा क्योंकि नाट्य को पंचम वेद माना गया है। साहित्याचार्य मधुसुदन शास्त्री इस विषय में कहते हैं:- "चारों वेदों के अंग अर्थात अंश को लेकर तब नाट्यवेद बनाया गया है।"[53] उपर्युक्त तथ्य से यह स्पष्ट है कि नाट्य में चारों वेदों के अंश समाहित हैं। यह भी दृष्टव्य है कि लोगों को आह्लाहित करने के लिए सामवेद से गीति लिया गया क्योंकि गीति में आनन्दव्यंजनसामर्थ्य विपुल मात्रा में होता है। नाट्यशास्त्र की भूमिका में मधुसुदन शास्त्री जी लिखते हैं:- "सामवेद से *गायन किया गया। क्योंकि साम का ही नाम गीत है और प्रयोग माने अभिनय के प्राण* है।"[54] इस प्रकार त्रेता युग में रचित नाट्यशास्त्र में भी हमें गीति का उत्स प्राप्त होता है। यानि गीत का प्रादुर्भाव प्राचीन काल में हुआ है और इसका विवेचन आज से लगभग 10 लाख वर्ष पूर्व रचित नाट्य शास्त्र में प्राप्त होता है।

गीत की आत्मा रस ही होती है और संगीत रत्नाकार में भी यह माना गया है कि नाट्य शब्द का मुख्य अर्थ रस है। यथाः -"नाट्य शब्दों रसो मुख्यो"[55] भरतमुनि जब नाट्य को समस्त ज्ञान, शिल्प, कर्म विधाओं एवं कलाओं युक्त सार्ववर्णिक पंचम वेद मानते हुए नाट्य में प्रयुक्त नृत्य के विषय में कहते हैं :- "ताण्डवं नटवं नाट्यं लास्यं नृत्यं

चनर्तने ।" अतः वे अप्रत्यक्ष रूप से नाट्य में प्रयुक्त गीत तत्व की ओर भी इंगित करते हैं क्योंकि 'लास्य' का अर्थ 'वह नृत्य' होता है 'जिसे वाद्य और गीत का योग हो।"[56]

साहित्य रत्नाकार में गीत को परिभाषित करते हुए लिखा गया--"गीत ऐसी मनोरंजक रचना है, जसमें स्वरों का गठन हो।"[57] यदि गीत के कोशीय परिभाषाओं की ओर दृष्टिपात करें तो हम पाएँगे कि संस्कृत कोश 'वाचश्पत्यम' में हमें गीत शब्द की विस्तृत व्याख्या प्राप्त होती है। यहाँ 'गीत' शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा गया है:- "गीत-न0 गै- गाने भावेत्क। गाने स्वर विशेष निष्पाद्ये शब्दं भेदे। तज्व द्विविधं लौकिकं वैदिकञ्च तत्र गान शब्दे वैदिकगान लक्षणादिकमुक्तं लौकिकधुनोच्यते। तुमात्राममायुक्तं गतिमित्युच्यते बुधैः।"[58]

दृष्टव्य है कि गीत को एक ऐसा शब्द माना गया है जहाँ गान के भाव समाहित हो। गीत वैदिक और लौकिक दो प्रकार के होते हैं। गीत धातु और मात्रा युक्त होते हैं। ध्यातव्य है कि विश्व संगीतशास्त्र में प्रयुक्त गीत शब्द की परिभाषा में भी गीत को धातु और मात्रा युक्त होना बताया गया है। इसी प्रकार गीत की चर्चा 'अमरकोश' और 'सामसंहिता' जैसे ग्रंथों में भी प्राप्त होती हैं। अमरकोश के अनुसार गीत और गान समानार्थक हैं:-

"गीत गानमिमें स्मे।"[59]

संस्कृताचार्यों द्वारा संस्कृत कोशों में दिए गए गीत विषयक मतों पर दृष्टिपात करने के पश्चात यह आवश्यक हो जाता है कि हम गीत विषयक पाश्चात्य मतों और अंग्रेजी कोशों की ओर भी ध्यान केन्द्रित करें। अंग्रेजी शब्दकोशों में गीत शब्द के लिए हमें दो समानार्थी शब्दों का प्रयोग देखने को मिलता है। 'Song' और 'lyric'. Song शब्द की व्याख्या करते हुए *Concise Oxford Dictionary* में लिखा गया है:- "Song *n.* Singing, vocal music; piece of music for singing, short poem etc. Set to

music or meant to be sung; *musical composition suggestive of a* song."[60] अर्थात 'song' वह संज्ञा यब्द है जिसका अर्थ गाना, कंठ गायन, गीत का एक छोटा टुकड़ा, छोटी कविता और संगीतमय उक्ति है जिसे गाया जा सके। इसी कोश में 'lyric' शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा गया है:- "(of poetry) expressing writer's emotions usually briefly and in stanzas or groups of lines; (of poet) writing in this manner; or of for the lyres; meant to be sung, fit to be expressed in song."[61] अर्थात कविता के संदर्भ में 'Lyric' शब्द का अर्थ कवि द्वारा अपने भावों को संक्षिप्त रूप में छंदों में अभिव्यक्त करना है। कवि के संदर्भ में 'Lyric' शब्द *का अर्थ* इसी प्रकार लिखना *या 'Lyre' नामक वाद्ययंत्र* के लिए लिखना, जिसे *गाया* जा सके, जिसे गीत के रूप में अभिव्यक्ति दी जा सके।

Collins Dictionary & Thesaurus नामक अंग्रेजी शब्दकोश में 'song' शब्द को 'music for the voice'[62] अर्थात स्वर के लिए संगीत के रूप में परिभाषित किया गया है। 'lyric ' शब्द की परिभाषा देते हुए यहाँ लिखा गया है "Short poem expressing personal emotion in songlike style."[63] 'अर्थात ऐसी कविता जो व्यक्तिगत भावों की अभिव्यक्ति गीत रूप में करें।' ध्यातव्य है कि इन दोनों कोशों परिभाषाओं में 'Song' शब्द को परिभाषित करते हुए उसके गेय तत्व को अधिक प्रधानता दी है *जब कि* lyric शब्द *में कवि के व्यक्तिगत भावों की संक्षिप्त गेयतापूर्ण अभिव्यक्ति को* प्रधानता दी गई है। यह भी दृष्टव्य है कि Song के लिए किसी निश्चित वाद्य यंत्र की ओर इंगित नहीं किया गया है जबकि Lyric शब्द के लिए यह माना गया है कि वह Lyre नामक तंत्री वाद्य यंत्र के सहारे गाया जाता है ।

संस्कृत परिभाषाओं में प्रयुक्त गीत शब्द की व्याख्या में भी गेय तत्त्व को प्रधानता दी गई है। परन्तु पाश्चात्य मत के Lyric शब्द की तरह वहाँ यह नहीं माना गया कि गीत lyre नामक वाद्य यंत्र के सहयोग से ही गाया जाता है। साथ ही यह भी ध्यातव्य है कि संस्कृत व्याख्याकारों ने पाश्चात्य विद्वानों की तरह इस बात पर भी बल नहीं दिया है कि गीत को संक्षिप्त होना चाहिए तथा इसमें वैयक्तिक भावों की प्रधानता होनी चाहिए। अतः गीत विषयक संस्कृत पाश्चात्य मतों में पर्याप्त भिन्नता है। गीत के विषय में दिए गए पाश्चात्य विचारकों के मत भी महत्त्वपूर्ण हैं। लिरिक पोएट्री नामक पुस्तक में अर्नेसटराईस ने लिखा है- "गीत शब्दों की ऐसी अभिव्यक्ति है जो प्रभावात्मक भावों से अनुशासित और शक्तिशाली लयों में आबद्ध हो।"[64] इन्होंने गीत के प्रभावात्मक, अनुशासित और शक्तिशाली होने के साथ-साथ उसकी सांगीतिक अभिव्यक्ति को भी महत्व प्रदान किया है।

पाश्चात्य विचारक गमर गीत में वैयक्तिक मत को महत्त्व प्रदान करते हुए लिखते हैं- "गीत उस अन्तर्वृत्ति निरूपण कविता को कहते हैं, जिसमें कवि की वैयक्तिक अनुभूतियों का चित्रण होता है।"[65] इस प्रकार पाश्चात्य विचारकों ने गीत में सांगीतिक, वैयक्तिक, प्रभावशाली और शक्तिशाली अनुभूतियों का होना अनिवार्य माना है।

गीत संबंधी परिभाषाओं में हिन्दी कोशों और व्याख्यारों की उक्तियाँ भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। कोशीय परिभाषाओं में गीत को ऐसा पद माना गया है जिसे गाया जा सके। संक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर में गीत का अर्थ इस प्रकार दिया गया है:- "गीत-संज्ञा (पु) (सं.) वह पद या छंद जो गाया जाता हो।"[66] यहाँ गीत में गेय तत्व को महत्व देते हुए यह माना गया है कि गीत उसे ही माना जाएगा जहाँ किसी छंद, वाक्य या पद को गाया जा सके। 'गीत' शब्द की अधिक प्रमाणिक और विस्तृत जानकारी हमें हिन्दी विश्वकोश में प्राप्त होती है जहाँ 'गीत' शब्द को व्याख्यायित करते हुए यह लिखा गया है कि:-

"गीत-गान, गाना, ध्रुवपद, तराना आदि।"[67]

यहाँ यह लक्षणीय है कि गीत को गान, तराना और ध्रुवपद से जोड़कर इसके अर्थ को अधिक विस्तृत और बृहत कर दिया गया है। गीत के अर्थ को व्याख्यायित करते हुए आगे लिखा गया है:-"यह नियमित स्वरनिष्पन्न शब्दविषेश है। संगीतशास्त्र के मत में धातु और मात्रायुक्त को ही गीत कहा जाता है। धातु नादात्मक और मात्रा अक्षरात्मक है।"[68] ध्यातव्य है कि गीत को यहाँ एक ऐसा शब्द माना गया है जहाँ स्वर की निष्पत्ति क्रमबद्ध रूप से होती है। यहाँ लय और तलात्मकता का तारतम्य क्रम और सुर में होना आवश्यक माना गया है।

इसके उपरान्त संगीतशास्त्र में गीत की चर्चा करते हुए यह बताया गया है कि वह धातु जो नादप्रधान होता है और वह मात्रा जिसमें अक्षर का महत्व होता है, गीत में विद्यामान रहता हैं। इस प्रकार गीत में अक्षरों का सुनिश्चित गठन होने के साथ ही समुचित ध्वनि व्यवस्था का होना अनिवार्य है। गीत के विषय में हिन्दी विश्वकोश में यह भी लिखा गया है कि:-"गीत सभी को प्रीतिकर होते हैं। गीत दुःख की यातना मिटाने का उपाय, सुखी की प्रीति का कारण और योगी की उपासना का प्रधान अंग है। इसी से प्राचीन संगीतवेत्ता बतलाते हैं कि प्रभुशंकर ने संसार को दुःखाक्रान्त देखकर के सांसारिको को दुःख निवारण का प्रधान उपाय गीत और वाद्य प्रकाश किया है। सामवेद में सहस्त प्रकार के गीत का उपाय है।[69]

भारतीय पारम्परिक समाज के धार्मिक व्याख्यानों में गीत को मानव के दुःख निवारण का उपाय बताया गया है। भारत में गीत का कितना अधिक महत्व था यह इस तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि चारों वेदों में एक सामवेद है जिसमें गीत और संगीत के विभिन्न उपाय हैं । प्राचीन साहित्य में हमें प्रार्थनापरक, धार्मिक और संस्कारात्मक गीतों के

विपुल भण्डार का दर्शन होता है। अन्य शब्दकोशों की तरह हिन्दी शब्दसागर में भी गीत को'गाया हुआ, घोषित अथवा कथित' के रूप में परिभाषित किया गया है।[70] अतः हम पाते हैं कि लगभग सभी कोशीय परिभाषाओं में गीत के गेय तत्व का प्राधान्य रहा है।

कोशीय परिभाषाओं के अतिरिक्त कुछ हिन्दी विद्वानों ने भी गीत संबंधी अवधारणाओं को पुष्ट किया है। बाबू गुलाबराय अपनी पुस्तक सिद्धांत एवं अध्ययन में यह मानते हैं:- "मुक्तक काव्य भी कई प्रकार का होता है। आकार की दृष्टि से इसके दो भेद हैं- पाठ्य और गेय जिसको गीत कहते हैं।"[71] इस प्रकार बाबू गुलाबराय ने काव्य के दो भेदों- पाठ्य और गेय में से गीत को गेय काव्य के अंतर्गत रखा है। इनकी परिभाषा काव्य की संस्कृत परिभाषाओं से भिन्न नहीं हैं। छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा गीत की परिभाषा इस प्रकार देती हैं:- "सुख दुःख के भावावेशमयी अवस्था विशेष का गिने-चुने शब्दों में स्वर-साधना के उपर्युक्त चित्रण कर देना ही गीत है।"[72] महादेवी जी ने भी गीतिकाव्य में संक्षिप्तता पर बल दिया है। गीत की परिभाषा को स्पष्ट करते हुए उन्होंने आगे लिखा है:-

क) "वास्तव में गीत के कवि को आर्त्तक्रन्दन के पीछे छिपे हुए भावातिरेक को दीर्घ निःश्वास में छिपे हुए संयम से बांधना होगा, तभी उसका गीत दूसरे के हृदय में उसी भाव का उद्रेक करने में सफल होगा।"

ख) "गीत यदि दूसरे का इतिहास न कहकर वैयक्तिक सुख-दुःख ध्वनित करे सके तो उसकी मार्मिकता विस्मय की वस्तु बन जाती है। इसमें संदेह नहीं।"

ग) "सफल गायक वही है जिसके गीत में सामन्यता हो अर्थात जिसकी भाव-तीव्रता में दूसरों को अपने सुख-दुःख की प्रतिध्वनि सुन पड़े और तब स्वतः संभव है जब गायक

अपने सुख-दुःखों की गहराई में डूबकर या दूसरे के उल्लास-विषाद से सच्चा तादात्मय कर गाता है।"[73]

स्पष्ट है कि महादेवी वर्मा गीत में वैयक्तिकता, संक्षिप्तता, सांगितिकता आदि गुणों के साथ-साथ उसका भावावेशमयी होना भी आवश्यक मानती हैं। वे गीत में वर्णन की अपेक्षा चित्रण के गुण का होना भी आवश्यक मानती हैं।

गीत के राग-रागिनियों में निबद्ध होने के विषय में वाड्मय विमर्श में लिखा गया हैः- "राग-रागिनियों के अनुकूल जिन पदों की रचना होती है वे विशेषतः गेय होने के कारण गीत कहलाते हैं।"[74] हिंदी साहित्य : उद्‌भव और विकास नामक पुस्तक में डा० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी अपना मत प्रकट करते हुए कहते हैं:- "आधुनिक प्रगीत मुक्तक कवि के भावावेग के क्षणों की रचना होती है, उनमें गीत का सहज और हल्की गति होती है। ये विच्छिन्न जीवन-चित्र होने पर भी प्रभावशील होते हैं और इनमें शास्त्र-प्रसिद्ध व्यापार-योजना की आवश्यकता नहीं होती। पुराने रूपकों में कवि-कल्पना की समाहार शक्ति प्रधान हिस्सा लेती थी पर आधुनिक मुक्तकों में कवि का भावावेग ही प्रधान होती है। परन्तु इतना स्मरण रखना उचित है कि आजकल के प्रगीत मुक्तकों में यद्यपि व्यक्तिगत अनुभूतियों का प्राधान्य है तो भी वे इसलिए हमारे चित्त में आनन्द का संचार नहीं करते कि वे व्यक्तिगत अनुभूति हैं, बल्कि इसलिए कि वे हमारी अपनी अनुभूतियों को जाग्रत करते हैं। जो बात हमारे मन को आनन्द से तरंगित कर देती हैं वही हमारी 'अपनी' होती है।............ आज का प्रगीत मुक्तक व्यक्तिगत विषय- ग्राहिता का परिणाम है, परन्तु वह उतना ही सामाजिक है जितना रीतिकालीन रूढ़ियों की योजना के भीतर गृहीत मुक्तक होता था। पुराने मुक्तकों में जिन विभावों की योजना केवल उद्दीपन के रूप में होती थी और जिन अनुभावों कर वर्णन केवल भावनीय मनोरोगों के संबंध में प्रयुक्त किए जाने लगे

हैं । ऐसा करने से भाषा में अधिकाधिक लाक्षणिकता आनेलगी है, क्योंकि जड़ प्रकृति को यदि आलम्बन मान बनाकर उसमें अनुभावों और हावों की योजना की जाएगी तो लक्षण वृत्ति का आश्रय लेना पड़ेगा।"[75]

गीतों के विषय में डा. द्विवेदी की यह व्याख्या वैज्ञानिक और सम्यक है। उन्होंने गीतों की सहजता और सुगमता पर बल देते हुए यह माना है कि आधुनिक मुक्तकों में भावावेग का प्राधान्य होता है, साथ ही इनमें विच्छिन्नता और प्रवाहशीलता होती है। डा. सुधांश ने 'जीवन और काव्य' नामक पुस्तक में गीत पर विचार करते हुए लिखा है:-"गीत जिस प्रकार आवेग-प्रधान भावना का एक खण्ड है उसी प्रकार उसकी अभिव्यक्ति भी अखण्ड होती है। अप्रस्तुत विधान उसके आवेग की एकसूत्रता को खंडित नहीं कर सकता। कवि के हृदय की अंतर्ज्वाला किसी बाह्य प्रेरणा से प्रभावित होकर उसके सारे अन्तर्बाह्य को एक साथ अभिव्यक्त कर देती है। उसमें स्वभावतः ही लय-छंद को अनुकूल गति प्राप्त हो जाती है। समझ-विचार कर, किसी अध्यवसाय के साथ किसी गीत की रचना नहीं होती। वह एक मनोवेग की रचना है, कवि के अंतस में जो भावना घनीभूत हुई रहती है वह प्रेरणा संकेत पाते ही बाहर निकल पड़ती है उसके सारे अंतस को उद्‌भासित कर देती है।"[76]

वस्तुतः डा0 सुधांशु ने गती के आवेग-प्रधान भावना का खण्ड मानते हुए इसकी अभिव्यक्ति को अखण्ड माना है। उन्होंने गीत निर्माण की प्रक्रिया का विवरण देते हुए गीत के मूल में मनुष्य के आंतरिक मन की ज्वाला को स्थापित किया तथा यह भी माना कि गीत निर्माण की प्रेरणा बाह्य होती है, जो अन्तर्बाह्य को एकाकर करती है। गीत की सर्जना के लिये डा0 हरवंशलाल शर्मा ने रागात्मिका वृत्ति और हृदय में तीव्र अनुभूतियों का होना अनिवार्य माना है :- "हृदय की रागात्मिकता वृत्ति के योग से जब सुख और दुःख की

अनुभूति तीव्रतर होकर अनेक भावों की उमड़ती हुई धार में समस्त परूषता और कलुषता का प्रक्षालन करती हुई अकस्मात कल-कल ध्वनि से कवि के कंठ से फूट पड़ती है तो उसे गीत की संज्ञा प्राप्त हो जाती है।"[77] ध्यातव्य है कि गीत संबंधी हिन्दी विद्वानों के मत प्राचीन भारतीय मत की अपेक्षा पाश्चात्य मत से अधिक प्रभावित है। जिस प्रकार पाश्चात्य विद्वान 'lyric' शब्द को व्याख्यायित करते हुए उसमें संक्षिप्तता, स्वानुभूतिमूल और वैयक्तिकता के भावों का होना अनिवार्य मानते हैं, ठीक उसी तरह आधुनिक हिन्दी व्याख्याकार गीत का संबंध रागात्मिकता वृत्ति, संक्षिप्तता, वैयक्तिकता आदि तत्वों से जोड़ते हुए प्रतीत होते हैं। गीत शब्द की तरह विभिन्न कोशों और व्याख्याकारों द्वारा गीति शब्द की भी व्याख्याएँ प्रस्तुत की गई है।

संस्कृत कोश वाचश्चत्यम में गीति को परिभाषित करते हुए लिखा गया है:-"त्वस्मि गीति-रागेण धरिणा प्रसमंन्हतः। आहोराग-परिवाहिणी गीतिः शुक। आर्य्याप्रथमदलोक्तं कथमपि लक्षणं भवेंदुमयोः।"[78] अर्थात सारयुक्त उक्ति को ही गीति की संज्ञा दी जाती है। यह आर्या छंदों के भेदों में से एक है। गीति की उत्पत्ति गीत से ही हुई होगी। बृहत हिन्दी शब्दकोश में गीति को गीत ही माना गया है। गीत एवं गीति का कुछ विद्वान समानार्थक शब्दों के रूप में प्रयोग करते हैं। वाचश्चत्यम में दिए गीति की परिभाषा की तरह हिन्दी शब्दसागर में भी गीति को आर्या छंद का एक भेद माना गया है जिसमें निश्चित चरण और मात्राएँ होती हैं। यथा- गीत "आर्या छंद के भेदों में से एक है जिसमें विषम चरणों में 12 और सम चरणों में 18 मात्राएँ होती हैं। इसे उद्‌गाहा या उद्‌गाथा भी कहते हैं।[79]

The Encyclopaedia Indica में भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है। गीति के विषय में बताते हुए संक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर में भी यही माना गया है कि 'गीति' आर्या छंद

का एक भेद है जिसमें 12 और 18 मात्राएँ होती हैं। "विषम चरणों में 12 और सम चरणों में 18 मात्राएँ होती है तथा छठे में जगण और अंत्य गुरु होता है।"[80] इस प्रकार गीति में कुछ निश्चित मात्राएँ तथा छंद का विशेष रूप से ध्यान रखना पड़ता है। गीति का प्रयोग सामान्यतः गीत या गीतिकाव्य के लिए भी किया जाता रहा है परन्तु गीति कुछ कारणों से गीत से भिन्न मानी जाती है। वस्तुतः गीत को समूह रूप में अधिक गाया जाता है जबकि वैयक्तिक गान का भाव गीति में पाया जाता है। गीत संगीत के अधिक निकट है जबकि गीति में काव्यगत भावों का उत्कर्ष पाया जाता है। गीति में स्वानुभूति का अधिक आग्रह रहता है और गीत किसी भी कोमल अनुभूति की अभिव्यंजना करता है।

डा. रामकुमार मिश्र के अनुसार "वस्तुतः गीत और गीति में वही अंतर है जो विवाहादि संस्कारों के अवसर, त्योहार, उत्सव आदि के समय गाने के लिए रचित गीतों और भाव- भक्त के हृदय से निःसृत स्वानुभूतिपूर्ण तथा काव्यमय पदों में है।"[81] इस प्रकार गीति में भाव स्वतः स्फूर्त रूप से हृदय से निष्काषित होते हैं और गीत में रचना पद्धति पर विशेष ध्यान दिया जाता है और किसी विशेष भाव, समय, संस्कारादि को व्यक्त करने के लिए इनकी रचना होती है। गीति में भावना का आवेग विद्यमान रहता है। एक अल्हड़ नदी की तरह यह निरंतर प्रवाहमान रहती है। इस प्रकार गीत और गीति में बहुत सूक्ष्म अंतर विद्यमान है जिस कारण आजकल दोनों शब्दों का प्रयोग एक ही अर्थ में किया जाने लगा है।

'गीत' और 'गीति' की तरह 'गीतिकाव्य' शब्द का भी प्रयोग प्रचलित है। गीतिकाव्य शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग करने वाले व्यक्ति लोचन प्रसाद पाण्डेय है जिन्होंने 'कविता-कुसुममाला' के प्रथम संस्करण में जून 1606 को काव्य के तीन रूपों गीतिकाव्य, श्रव्यकाव्य और दृश्यकाव्य से परिचय करवाया । गीतिकाव्य वस्तुतः काव्य और गीति का

सम्मिश्रित रूप है। हाँलाकि आधुनिक गीतिकाव्य पर पाश्चात्य चिन्तन की छाया है तथापि इसका मूल हमें भारतीय चिंतन के अंतर्गत भी प्राप्त होता है। गीतिकाव्य एक आधुनिक शब्द है जो 'लिरिक' शब्द के तत्वबोध के लिए निर्मित है। इसका मूलभूत आधार गीत ही है। हिन्दी साहित्य कोश में भी गीतकाव्य का मूलभूत आधार गीत को ही माना गया है:- "गीतिकाव्य 'लिरिक' के तत्वबोध के लिए निर्मित आधुनिक शब्द है जिसका मूलभूत आधार गीत अथवा गीतिकाव्य है।"[82] इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिक गीतिकाव्य की संवेदना वस्तुतः पाश्चात्य शब्द से ही उद्भूत है। यहाँ 'लिरिक' शब्द गीति का पर्याय है।

गीतिकाव्य की परिभाषा देते हुए हिन्दी शब्दसागर में कहा गया है:-"ऐसा काव्य जो गीतिप्रधान अथवा गेय और आत्मपरक हो। गीतिकाव्य और गेय काव्य दोनों एक वस्तु नहीं है।"[83] अतः गीतिकाव्य में आत्मपरकता और गेयता के तत्व निहित हैं। परन्तु गीतिकाव्य से गेय काव्य भिन्न होता है। गीतिकाव्य के अर्थ को समझने के लिए पाश्चात्य परिभाषा पर विचार-विमर्श करना उचित होगा। इन व्याख्याओं में गीतिकाव्य के लिए 'lyric' अथवा 'lyrical poetry' शब्द का प्रयोग किया गया है।

Encyclopaedia Britanica में lyric poetry को परिभाषित करते हुए लिखा गया है :- "From the greek lyrikos, a poem to be sung to the lyre, now extended to include any poetry that sets out to express the thoughts and feelings of the poet. It is sometimes contrasted with narative poetry, which relates events in the form of a story. Blegies, odes, sonnets are all important kinds of lyric poetry."[84] अर्थात यह शब्द Greek भाषा के 'lyrikos' से निर्मित है और एक ऐसी कविता है जो Lyre नामक वाद्ययंत्र के साथ गाया जा सके। परन्तु आजकल गीतिकाव्य का अर्थविस्तार हो चुका है ।

कोई भी कविता जो कवि की भावनाओं और विचार धाराओं को अभिव्यक्त कर सके, गीतिकाव्य के अंतर्गत आती है। कभी-कभी इसकी तुलना आख्यान कविता से भी की जाती है जो एक कहानी के रूप में घटनाओं का संबंध जोड़ती है।

गीतिकाव्य के अंतर्गत शोकगीति, प्रशस्तिकाव्य या प्रगीत; चतुर्दशपदी आदि भिन्न-भिन्न प्रकार की कविताएँ आती हैं। The Concise Oxford Dictionary of English Literature की परिभाषा से यह ज्ञात होता है कि गीतिकाव्य एक छोटा काव्य है, जो कवि की भावनाओं की सीधी अभिव्यक्ति होती है। यथा- "Lyric is a short poem, of a musical and rythmical nature, expressing directly the poets own feelings."[85] Palgrave ने गीतिकाव्य को किसी एक भावना परिस्थिति या परिभाषा पर ही केन्द्रित माना है। अपनी किताब 'The Golden Treasury' के आमुख में उन्होंने लिखा है:- "Lyrical poetry has here been held essentially to imply that each poem shall turn on some single thought, feeling or situation, a defination which is now generally accepted."[86]

गीतिकाव्य की चर्चा करते हुए A Dictionary of Classical Antiouities में लिखा गया है:- "While among the Greeks elegic and iambic poetry which forms the transition from epic to lyric composition; was practised by the Ionians, lyric poetry proper or as it was more commonly called melic poetry. (Melos, a song) viz. The song accompanied by music was cultivated by the नolions and Dorians. This is due to the talent for music peculiar to these races. That playing on stringed instruments

and singing were cultivated even in wythical times in Abolia in the island of Lesbos."[87]

इस परिभाषा से यह बात एकदम स्पष्ट हो जाती है कि गीतिकाव्य की पाश्चात्य परम्परा बहुत पुरानी है और यह काव्य मुख्यतः lyre नामक वाद्य की सहायता से ही गाया जाता था। Webster's New World Dictionary की परिभाषा भी उपरोक्त परिभाषाओं की पुष्टि करता है। यहाँ गीतिकाव्य की चर्चा करते हुए बताया गया है:-"a poem mainly expressing the poets emotions & thoughts sonnets, elegies, odes, hymns etc are lyric poem."[88]

शब्दकोशों के अतिरिक्त पाश्चात्य विद्वानों का मत भी गीतिकाव्य के विषय में महत्वपूर्ण है। ग्रीक साहित्य में काव्य के दो भेद- गीतिकाव्य एवं सामूहिक काव्य थे। डा0 चार्ल्स ने अपनी पुस्तक Methods and materials of Literary Criticism नामक पुस्तक में गीतिकाव्य को ही काव्य की सभी विधाओं में सर्वश्रेष्ठ माना है।[89] गीतिकाव्य की सामान्य परिभाषा देते हुए शिप्ले यह मानते हैं कि गीतिकाव्य एक ऐसा काव्य है जिसे लायर नामक वाद्ययंत्र के सहारे गाया जाता है। यथा:-`A poem to be sung of lyre'[90] कुछ इसी प्रकार के विचार हमें हडसन की परिभाषा में भी प्राप्त होती है:- "Lyric poetry in the original meaning of the term was poetry composed to be sung to the accompaniment of lyre or harp."[91] पालग्रेव ने भी Golden Treasury of song and Lyrics के आमुख में यही बात कही है। प्रो.एस.टी.लॉड ने गीतिकाव्य को आध्यात्म से जोड़ते हुए माना है:- "The lyric, a movement of fancy by which the spirit strives to live itself from limited to the universal."[92]

वस्तुतः सभी गीतों में आध्यात्मिक या रहस्यात्मक तत्व हो आवश्यक नहीं है। इसलिए उपर्युक्त परिभाषा दोषपूर्ण है।

हर्बर्ट रीड के अनुसार-"Words, their sound and even their very appearance are of corse everything to the poet, the sense of words is the sense of poetry, but word have associations carrying the wind beyond sound to visual image and abstract idea."[93] इन्होंने कविता में संगीत, भाषा, भाव-विचार आदि के गुणों का समावेश किया है। कुछ भारतीय विद्वानों की तरह एवर क्रौम्बी ने भी गीतिकाव्य में संगीतात्मकता के गुण को महत्वपूर्ण माना है। साथही उन्होंने अर्थ के चमत्कार पर भी बल दिया है। "The poet relies], indeed, on his music for the full expression of what he has to say, but the importance of the music depends on the meaning of the words."[94]

Oxford Junior Encyclopaedia में कवि के वैयक्तिक भावों की अभिव्यक्ति पर जोर देते हुए गीतिकाव्य के छोटे-छोटे अनुच्छेदों में विभक्त होने पर बल दिया है:- "---When we speak of 'lyric' we mean a short poem conveying some thought or sentiment of the poets over; and such poem is usually divided into stanzas or 'slrophes.''[95] पाश्चात्य विद्वानों की तरह कुछ भारतीय विद्वानों ने भी गीतिकाव्य की समुचित परिभाषाएँ दी हैं:-"गीतिकाव्य (लिरिक पोइट्री) के अंतर्गत मुक्तक वर्ग की वे रचनाएँ आती हैं जिनमें संगीतात्मकता, वैयक्तिक रागद्वेष, या अनुभूति की सार्वभौम अभिव्यक्ति, भाषान्विति, अतः प्रेरणा और संक्षिप्तता के साथ-साथ काव्य-कला की परीपूर्णता भी उपलब्ध होती है।"[96]

डॉ.मिश्र गीतिकाव्य में संगीत तत्व का होना अनिवार्य मानते हैं, साथ ही वैयक्तिकता को भी वे महत्व देते हैं। उनके अनुसार गीतिकाव्य को संक्षिप्त होना चाहिए। डॉ. सिद्धेश्वर शर्मा जी का मानना है किः-"गीतिकाव्य कहलाने के लिएगीत तभी योग्य हो सकते हैं जब उनमें काव्य-रस तथा काव्य-प्रतिबिम्बना का पूरा-पूरा संचार हो।"[97] डॉ. शर्मा गीतिकाव्य में रस का होना अनिवार्य मानते हैं। साथ ही वे यह भी मानते हैं कि काव्य-प्रतिबिम्बना का गीतिकाव्य में सम्पूर्ण रूप से संचार होना चाहिए।

'हिन्दी साहित्य' नामक पुस्तक में गीतिकाव्य पर विचार-विमर्श करते हुए डॉ. भोलानाथ यह मानते हैं:- "मुक्तक रचनाओं में स्वर-लय, भाव-लय एवं वातावरण-लय कोमल मधुर एवं चित्रात्मक भाषा, सौन्दर्य चेतना, मानवीय करण, चिन्तनात्मकता, लोक जीवन की वैयक्तिक अनुभूतियों दृष्टिकोण की नवीनता एवं सूक्ष्म की अनुभूति, भावुकता इन सबने ने मिलकर गीतिकाव्य का रूप धारण कर लिया है।"[98] इस प्रकार भोलानाथ तिवारी जी ने गीतिकाव्य के सभी तत्वों का एकीकरण कर गीतिकाव्य का रूप निर्धारित किया है। गीतिकाव्य के विषय में डॉ0 उमाकान्त का मत यह है:-"काव्य की वह विधा जिसमें विषय की अपेक्षा विषयी की प्रमुखता होती है प्रगीत अथवा गीतिकाव्य के नाम से अभिहित की जाती है।.......... व्यक्तिपरक कविता का ही नाम प्रगीत है। उसमें वैयक्तिकता का व्यक्ति के विषयी के अपने सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, प्रेम-कलह, क्षोभ-क्रोध, आदि की परिव्याप्ति होती है। आत्माभिव्यंजन अथवा निजी रागात्मक प्रगीत का अनिवार्य गुण है और यह रागात्मकता अत्यंत तीव्र होनी चाहिए। इसलिए संसार के अधिकांश प्रगीत आकार में संक्षिप्त है।"[99]

इस प्रकार डॉ. उमाकान्त गीतिकाव्य में विषयी की प्रमुखता, व्यक्तिपरकता, आत्मभिव्यंजन, रागात्मक तीव्रता और संक्षिप्तता को महत्व देते हैं। गीतिकाव्य विषयक डॉ. राजेश्वर चतुर्वेदी द्वारा व्यक्त विचार डॉ. भोलानाथ तिवारी के विचारों के समान प्रतीत होते

हैं । यथा- "गीतिकाव्य क्षणानुभव विशेष की तीव्र परिसम्वेनात्मक पूर्णाभिव्यक्ति है। इसमें अनुभूति, मन की प्रथम संवेगात्मक प्रक्रिया है, कल्पना उस संवेग की सृजनात्मक व्यापार-शक्ति तथा बुद्धि या विचार-सृजन की व्यवस्थापिक वृत्ति है। इस प्रकार गीतिकाव्य, प्रतिभाशक्ति की सर्वोत्तम स्थितियों में व्यक्ति के मानसिक व्यापारों का अभिव्यक्तिगत फल है। वह विशेष अनुभवों की पूर्ण इकाई के रूप में कवि के व्यक्तित्व का संश्लिष्टात्मक घटनाचित्र है।"[100] हृदय के भावों की अभिव्यक्ति पर बल देते हुए एक अन्य विद्वान एस.पी.खत्री ने कहा:- "....लिरिक अथवा गीतिकाव्य से प्रयोजन उन कविताओं का है जिनमें कवि ने अन्तर्वादी शैली अपना कर अपने अन्तरतम की भावनाओं का परिचय दिया है।"[101] गीतिकाव्य की व्याख्या करते हुए उसके दोनों पक्षों-काव्यतत्व और संगीततत्व पर बल दिया है। प्रो. नवलकिशोर गोड़ के अनुसार:-"गीतिकाव्य साहित्यजगत का अर्द्धनारीश्वर है। जिस तरह शैव-दर्शन के आध्यात्म चिन्तन के क्षेत्र में शिव और शक्ति का समाहार अर्द्धनारीश्वर के रूप में मूर्त हो गया है उसी तरह साहित्य के क्षेत्र में संगीत और काव्य के अविछिन्न सम्मिलन के फलस्वरूप स्वर और वाणी का समाहार गीतिकाव्य के रूप में दिखाई देता है।"[102]

डॉ. रामकुमार वर्मा गीतिकाव्य में विचारों की एकरूपता को महत्वपूर्ण मानते हुए लिखते हैं:-"गीतिकाव्य की रचना आत्मभिव्यक्ति के दृष्टिकोण से होती है, उसमें विचारों की एकरूपता रहती है।"[103]गीतिकाव्य में शब्द और लय के सामंजस्य पर बल देते हुए गोविन्द त्रिगुणायत यह मानते हैं:-"गीतिकाव्य अन्तवृर्ति निरूपक वह निरपेक्ष रचना है जिसमें शब्द और लय का सामंजस्य, माधुर्य, प्रवाहात्मकता, कोमल भावनाओं का उद्रेक तथा प्रभाव ऐक्य के साथ-साथ कवि का अन्तर्दर्शन भी शब्द-चित्रों में संजोया रहता है।"[104] रामखेलावन पांण्डेय जी गीतिकाव्य उसे मानते हैं जिसमें सजीव भाषा के साथ-साथ कवि

के आंतरिक भावों की सांगीतिक अभिव्यक्ति हो। यथा-"सजीव भाषा में व्यक्ति के आंतरिक भावों की सूक्ष्म अभिव्यंजना, संगीतात्मकता के आग्रह के साथ जिसमें होती है, वह गीतिकाव्य है।"[105]

गीतिकाव्य की तरह बांग्ला भाषा में भी 'काव्यगीति' शब्द का प्रयोग मिलता है। यदि बांग्ला साहित्य के इतिहास की ओर दृष्टिपात किया जाए तो हम देखते हैं कि यह शब्द हिन्दी में प्रयुक्त होने वाले गीतिकाव्य शब्द से अर्थ में भिन्न होते हुए भी व्यापक रूप से बांग्ला साहित्यकारों द्वारा प्रयुक्त होता रहा है और अनेक बांग्ला कवियों ने स्वतंत्र रूप से काव्य गीति की रचना की है।'काव्यगीति' शब्द को परिभाषित करते हुए सुश्री करूणमय गोस्वामी कहती हैं:-"जे गीने काव्य ओ संगीतेर शम्मिलन घटे ताकेई बला जाए काव्यगीति व काव्यसंगीतग। भाषानिरूपक्षे बा बिशुद्ध संगीतेर आदर्श ऐई गानेर नय, पदबाहित भावव्यंजना के परिस्फुट ओ तीव्र करे तोलाई काव्यगीतिर उपजीव्य।"[106]अर्थात "जिस गाने में काव्य और संगीत का सम्मिलन घटता है उसे ही काव्यगीति या काव्यसंगीत कहा जाता है। इस गान का आदर्श भाषानिरपेक्ष या विशुद्ध संगीत नहीं है बल्कि पदवाहित भावव्यंजना को परिस्फुट और तीव्र करना ही काव्यगीति का उपजीव्य है।" उनके अनुसार "काव्यगीति एक संगीत धारा है। विशुद्ध संगीत के आदर्श रचित गेय संगीत की धारा से यह धारा पृथक है। काव्यगुणयुक्त पद के साथ सुर के भावग्राही सम्मिलन में काव्यगीति की धारा घटित है। सुर की सहायता से काव्य को अन्तरके मध्य में ध्वनित करना ही इस संगीत धारा का मुख्य वैशिष्ट्य है।"[107]

अन्यान्य बांग्ला विचारकों ने भी काव्यगीति विषयक मतों का प्रतिपादन किया है। नारायण चौधरी के अनुसार:-"काव्यगीतिर मध्ये प्रेमेर गानई बेशी, तबे प्रकृतिओ अन्यान्य विषयक गानओं किछू-किछू आछे।"[108]अर्थात काव्यगीति के अन्तर्गत प्रेममूलक गान ही

अधिक है, फिर भी कुछ प्रकृति और अन्याय विषयक गान भी इसके अंतर्गत आते हैं। स्पष्ट है कि काव्यगीति संगीत की एक धारा है जिसमें काव्यगुणयुक्त पद का समावेश रहता है। यह कवि के वैयक्तिक भावों का प्रतिपादन करता है और इसमें मूलतः प्रेम और प्रकृति के गीतों का समावेश है।

बंग्ला साहित्य के शिखर पुरुष एवं महाकवि गुरुदेव रविन्द्रनाथ टैगोर काव्यगीति के उद्देश्य की ओर इंगित करते हुए लिखते हैं:-"गानेर कथाकेई गानेर सुरेर द्वारा परिस्फुट करिया तोला एई श्रेणीर संगीतेर मुख्य उद्देश्य।"[109]अर्थात गान की बात को गान के सुर द्वारा परिस्फुट करना इस श्रेणी के संगीत मुख्य उद्देश्य है। काव्सगीति के तथ्यों की चर्चा करते हुए वे आगे लिखते हैं:-"कथा उ सुरेर साहचर्यई श्रद्धेय, कोनो पक्षेरई आनुगत्य बैद्ध नय। सेखाने सूर जेमन वाक्य के माने, तेमनि सूरओं वाक्य के अतिक्रम करेना।"[110]अर्थात कथा और सुर का सहचर्य ही श्रद्धेय है, कोई भी पक्ष अनुगत्य बाध्य नहीं है। वहाँ, जहाँ सुर वाक्य को मानता है उसी प्रकार सुर वाक्य का अतिक्रमण भी नहीं करता। स्पष्टतः रविन्द्रनाथ ने काव्यगीति में सुर और काव्य के साहचर्य को महत्वपूर्ण माना है।

हिन्दी में गीतिकाव्य की जो अवधारणा है, बांग्ला में भी काव्यगीति उसी अर्थ में प्रयुक्त होता है। हाँलाकि बांग्ला काव्यगीति का अर्थ संकुचित हो प्रेम प्रकृति एवं निजी भावों की कविताओं तक रह जाता है। फिर भी गीतिकाव्य और काव्यगीति में कोई मूलभूत अंतर नहीं पाया जाता। दोनों में एक ही प्रकार के तत्व पाए जाते हैं।

गीतिकाव्य संबंधी सभी विचार धाराओं पर दृष्टिपात करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि अधिकतर विद्वानों ने एक ही मूलतत्व को भिन्न-भिन्न भाषाओं में अभिव्यक्त किया है। इन परिभाषाओं के मुख्य बिन्दु इस प्रकार हैं:-

1) गीतिकाव्य में वैयक्तिक भावनाएँ प्रधान होती हैं।

2) संगीतधर्मिता इसका अनिवार्य गुण है।

3) गीतिकाव्य में तीव्र भाव आवश्यक होते हैं।

4) यह संक्षिप्त होना चाहिए।

5) इसमें एक ही केन्द्रिय भाव हो।

6) भूमिका बांधना आवश्यक नहीं होता।

7) रागात्मक तत्व होते हैं।

8) अनेक रूपों में अभिव्यक्ति होती हैं।

9) हर गीतिकाव्य निरपेक्ष होता है।

10) उसमें चित्रात्मकता का गुण होता है।

गीतिकाव्य के तत्व

गीतिकाव्य की विभिन्न परिभाषाओं, विकास क्रम और लक्षणों पर दृष्टिपात करने से गीतिकाव्य के कुछ तत्व उभर कर सामने आती है। इन व्याख्याओं के अनुसार गीतिकाव्य का दृष्टिकोण अंतर्मुखी होता है और कवि हृदय के भावावेश सहज उद्रेक और प्राकृतिक वेग के साथ इसमें निःसृत होता है। गीतिकाव्य में संगीतात्मकता अंतर्निहित रहती है और तीव्र अनुभूतिपूर्ण स्वानुभूतिमूलकता इसके केन्द्र में रहती है। इसके अतिरिक्त सद्य-स्फूर्ति, स्वच्छन्दता, अनाडम्बर और नवोन्मेष भी गीतिकाव्य के कुछ प्रमुख तत्व हैं। गीत के तत्व पर प्रकाश डालते हुए अमरकोश में यह माना गया है कि गीत में छह तत्वों का होना अनिवार्य है:- "सस्वर, सरसं चैव सरांग मधुराक्षरणा सालंकार प्रमाणं च षडविध गीतलक्षणम।"[111] अर्थात गीत स्वरपूर्ण होना चाहिए। उसमें रस की प्रधानता होनी चाहिए। उसमें रागों तथा मधुरअक्षरों के समावेश के साथ अलंकर योजना भी होनी चाहिए और वह प्रमाणित भी होना चाहिए। गीतिकाव्य के प्रमुख तत्वों का उल्लेख करते हुए पाश्चात्य विचारक ए. आर. एण्ट्वीसटेल ने यह माना कि गीतिकाव्य संगीतात्मक और शब्दयोजना से

परिपूर्ण होता है। यह एकात्मक भाव की अभिव्यक्ति होने के कारण अपने-आप मे एकरूपता समाए हुए होता है। इसके अतिरिक्त इन्होने गीतिकाव्य मे संक्षिप्तता, प्रवाहमयता आदि तत्वो पर बल भी दिया है। यथा:-

1) It is musical, metrically or verbally or both.

2) It is objective in character.

3) It is expression of a single mood emotion and so achieve unity.

4) It is spontanious, unpremedictated or rather appears so.

5) Compared with other type of poetry it is short.

6) It enjoys an endless variety of forms.

7) It is embelished with consummate (through concealed art)

8) There is often a vistful or hunting loveliness which eludes all tastes.[112]

डॉ नगेन्द्र ने आत्म-निवेदन और मनोरंजन को गीतिकाव्य के दो प्रमुख तत्व माने हैं। उन्होने दीपशिखा की आलोचना करते हुए लिखा है:- "हिन्दी मे विश्व के लगभग सभी साहित्यो मे गीति-परम्परा आदिकाल से ही चली आती है। या यो कहिए की कविता का मूल रूप ही गीत है। गीत के इतिहास पर दृष्टि डालने से उसके दो प्रयोजन हैं- आत्मनिवेदन और मनोरंजन।"[113] यहॉ यह स्पष्ट कर देना उचित है कि मनोरंजन शब्द के अर्थ की व्यापकता मे संगीतात्मकता भी समाहित हो जाता है।

डॉ. रामखेलावन पाण्डेय गीतिकाव्य के उद्‌भव और विकास को देखते हुए गीतिकाव्य के कुछ तत्वो का निर्धारण करते हैं, जो इस प्रकार हैं:-

1 संगीतात्मकता

2. जीवन के एक पहलू का कलाकार के मन पर पड़ने वाले कल्पनागत प्रभाव का सौन्दर्य और कला-पूर्ण चित्रण।

3. रागात्मक अनुभूति की इकाई और समत्व।

4. अन्तदर्शन और आत्म-निष्ठता, सुख-दुःख, राग-द्वेष, आशा-निराशा जिसके आधार हैं।

5. *लयात्मक अनुभूति।*

6. समाहित प्रभाव।"[114]

डॉ. रामखेलावन पाण्डेय जी गीतिकाव्य के विषय में यह भी कहते हैं कि:- "वैयक्तिक अनुभूति की संवेदनशील संगीतात्मक अभिव्यक्ति ही गीतिकाव्य है" और "गीतिकाव्य अतः कवि के मन पर पड़नेवाले जीवन के एक पहलू के प्रभाव की सौन्दर्यपूर्ण कलात्मक अभिव्यक्ति है।"[115]इस प्रकार डॉ. पाण्डेय गीतिकाव्य में वैयक्तिकता, संगीतात्मकता, रागात्मकता अनुभूति की इकाई समत्व और कलात्मक अभिव्यक्ति का होना आवश्यक मानते हैं।

डॉ. शिवनन्दन प्रसाद ने "साहित्य के रूप और तत्व" पुस्तक में गीतिकाव्य के लक्षणों का उल्लेख करते हुए लिखा है:- "गीतिकाव्य में घटना, चरित्र, दृश्य, परिस्थिति आदि की अपेक्षा नहीं होती, उसमें केवल अभिव्यंजना और रस-परिपाकपर कवि की दृष्टि केन्द्रित हो जाती है। गीतिकाव्य में, इसलिए जीवन का क्षण बोलता है। जीवन के घटनात्मक क्रमिक विकास का चित्रण उसमें नहीं होता। पर जीवन का वह एक क्षण अतिशय महत्व का होता है। उस क्षण में कवि की समस्त वृत्तियाँ मानो किसी एक भाव की अनुभूति में केन्द्रित हो जाती है। और उस भाव की अत्यन्त तीव्र एवं मार्मिक अभिव्यक्ति में कवि लीन हो जाता है।---अनुभूति की तीव्रता के कारण कवि का अन्तर स्वतः संगीत के स्वरों में फूट पड़ता है। ---भावना की यह अतिशय तीव्रता क्षणस्थायी ही होती है-देर तक

कवि भावना के चरम शिखर पर आरूढ़ नहीं रह सकता। अतएवं गीतिकाव्य संक्षिप्त हुआ करता है।"[116] इस प्रकार डॉ. प्रसाद के अनुसार गीतिकाव्य में भाव-व्यंजना, रस-परिपाक, एक क्षण की अभिव्यक्ति, भावों की अत्यधिक तीव्रता, स्वतः स्फुटित संगीतात्मकता और संक्षिप्तता के तत्व अनिवार्य हैं। अतः उनके अनुसार गीतिकाव्य को संक्षिप्त होना चाहिए ।

डॉ. उमाशंकर तिवारी ने भी गीतिकाव्य की कुछ विशेषताएँ निर्धारित की हैं जो उपरोक्त सभी कथनों से साम्य स्थापित करता है। इन्होंने गेयता को गीतिकाव्य का अनिवार्य तत्व माना है। उल्लेख्य है कि संस्कृत से पाश्चात्य विचारकों तथा हिन्दी से बांग्ला विचारकों तक सभी ने गीतिकाव्य में गेय तत्व की प्रधानता को महत्व प्रदान किया है। परन्तु यह तथ्य पहले भी स्पष्ट किया जा चुका है कि गीतिकाव्य में बाह्य रूप-रचना से सांगीतिकता अनुस्यूत रहती है। तिवारी जी ने संक्षिप्तता को भी गीतिकाव्य का एक अनिवार्य गुण माना है। इसी से गीतिकाव्य प्रभावोत्पादक बन पड़ता है। आत्मभिव्यंजन को वे गीतिकाव्य की पीठिका मानते हैं, साथ ही यह भी मानते हैं कि गीतिकाव्य में अभिव्यक्त अनुभूतियों में सच्चाई, सघनता एवं अन्वितिपूर्णता न होने पर उसे गीतिकाव्य की संज्ञा नहीं दी जा सकती। वे सहज भावोच्छ्वास के साथ प्रभावान्विति को भी गीतिकाव्य की एक विशेषता मानते हैं क्योंकि इसमें विषय-वस्तु का अनावश्यक विस्तार नहीं होता। यथाः-

1) "गेयता- रूप संगठन की दृष्टि से स्वरबद्धता गीतिकाव्य का अनिवार्य धर्म है। इसी से उसके शब्द-चयन या छंद योजना का निर्धारण होता है। वैसे कुछ गीतियाँ ऐसी भी हैं जो स्वर-बद्ध नहीं होती फिर भी उनमें एक आंतरिक लय वर्तमान रहती है । वस्तुतः यही आंतरिक गीतात्मकता या अंतस्यूत गेयता गीतिकाव्य की निजी विशेषता है जो उसे अन्य काव्यरूपों से अलग और विशिष्टस्थान प्रदान करती है।"[117]

2) संक्षिप्तता- यह एक अनिवार्य गुण है "क्योंकि लंबी रचना न तो ठीक ढंग से गाई जा

सकती है और न तो अनुभूति की केन्द्रियिता एवं सघनता को प्रकट कर सकती है । आकार की लघुता गीति के प्रभाव एवं आकर्षण की रक्षा करने के साथ-साथ भावानुभूति को सापेक्ष्य व्यंजना और उच्च कोटि की गरिमा प्रदान करती है।"[118]

3) आत्मभिव्यंजना- यह गीतिकाव्य के रूप- संगठन की पीठिका है। समाज में व्यक्तिवाद के विकास के साथ गीतिकाव्य व्यक्ति की आत्मभिव्यक्ति बन कर रह गया । गीतिकाव्य एक ऐसी विधा है जिसमें वस्तु-वर्णन बहुत ही कम होता है।"[119] भावाभिव्यंजना के प्रधान होने पर भी गीतिकाव्य में रागात्मकता प्रयत्क्ष होती है और वस्तु-वर्णन के प्रधान होने पर रागात्मकता प्रच्छन्न होती है।

4) अनुभूति प्रवणता- गीतिकाव्य में अभिव्यक्त अनुभूतियों के सच्चे सघन एवं अन्वितिपूर्ण न होने पर उन्हें गीति की संज्ञा नहीं दी जाती है। "अनुभूति में केन्द्रीयता का गुण वर्तमान होता है, जोड़ी-बटोरी आत्मानुभूतियाँ एक साथ प्रस्तुत होने पर अन्विति एवं सघनता को नष्ट कर देती है। एक गीत में एक ही केन्द्रीय अनुभूति को गहराई और तीव्रता के साथ अभिव्यक्ति दी जाती है। प्रबंध और मुक्तक में अभिव्यक्त विचार सामान्यतः व्यापक होता है जबकि गीतिकाव्य में व्यक्त भाव व्यक्तिनिष्ठ और विशिष्ट होते हैं।"[120] इन अनुभूतियों का सम्बन्ध कवि की अंतश्चेतना से होता है।

5) भावोच्छवास की सहजता गीतिकाव्य का संबंध हृदय के तीव्र वेगों से होता है और वह नितान्त सहजता के साथ आशुकाव्य की तरह अभिव्यक्त होता है । "कवि भावावेग तीव्रता को नहीं रोकता परन्तु वह अनुभूति को कलात्मक रूप देने का भी विवेक रखता है ।"[121]

6) प्रभावन्विति- गीतिकाव्य की अभिव्यक्ति सहज, सरल और पूर्ण होती है और उसका

प्रभाव भी सीधा और अन्विितपूर्ण होता है क्योंकि उसमें विषय-वस्तु का बाह्य-वर्णन या घटना-विवेचन का अनावश्यक विस्तार नहीं होता।[122]

इस प्रकार गीतिकाव्य अपने आप में विभिन्न विशेषताओं को समेटे हुए है। अन्य विद्वानों की तरह ही डॉ. श्यामसुन्दर दास ने भी गीतिकाव्यों में संक्षिप्तता, आत्मभिव्यंजना, भावनापन्नता, संगीतात्मकता एवं निरपेक्षता के गुणों को महत्व दिया है। वस्तुतः आत्मभिव्यंजना प्रधान काव्य को ही वे गीतिकाव्य मानते हैं और कहते हैं:-"आत्मभिव्यंजन संबंधी कविता गीतिकाव्य में ही अधिक लिखी जाती है। छोटे-छोटे गेय पदों में मधुर भावनापन्न आत्मनिवेदन स्वाभाविक भी जान पड़ता है। ऐसे पदों में शब्द की साधना के साथ स्वर की साधना भी उत्कृष्ट हो सकती है। इनसे कर्कशता बहिष्कृत कर दी जाती है। इनकी भावना प्रायः कोमल होती है और एक-एक पद में पूरा होकर समाप्त हो जाती है।"[123]

पं. रामदहिन मिश्र निम्नलिखित सभी तत्वों के एकीकरण को ही श्रेष्ठता की कसौटी मानते हैं। उनके अनुसारः-"जिस गीतिकाव्य में शब्दों की सुन्दर ध्वनि, सुकुमार, संदर्शन, सरल, सुन्दर तथा मधुर शब्द, कोमल कल्पना, संगीतात्मक छंद, अनुभूति की विभूति, भावानुकूल भाषा और कलापूर्ण अभिव्यक्ति हो, वह गीतिकविता प्रशंसनीय है।"[124]

विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रतिपादित गीति के तत्वों का अवलोकन करने पर निष्कर्ष रूप में गीतिकाव्य के निम्नलिखित तत्व उभर कर आते हैं:-

1. गीतिकाव्य काव्यतत्व और गेय तत्व का समावेश होना चाहिए।

2. गीतिकाव्य में एक समय पर एक ही भाव की स्थापना होती है।

3. संक्षिप्तता गीतिकाव्य का अनिवार्य गुण है।

4. इसमें वैयक्तिक भावनाओं की प्रधानता होती है।

5. गीतिकाव्य आवेग प्रधान होता है।

6. रागात्मक अनुभूति की प्रधानता गीतिकाव्य का एक तत्व है।

7. गीतिकाव्य प्रभावोत्पादक होता है क्योंकि इसमें सहज सरल अभिव्यक्ति को महत्व प्राप्त होता है।

8. गीतिकाव्य में कोमल भावनाओं एवं शब्दों को महत्त्व दिया जाता है।

9. गीतिकाव्य विषयी-प्रधान होता है।

10. कल्पना और चिन्तन का उपयोग बिना किसी भूमिका के किया जाता है।

11. प्रत्येक गीत निरपेक्ष और वस्तुनिष्ठ होता है।

12. गीतिकाव्य में चित्रात्मकता को भी महत्व दिया जाता है।

इस प्रकार गीतिकाव्य वैयक्तिक सुख, दुःख, हर्ष-शोक आदि भावनाओं का चित्रण करता है। यही भावनाएँ मनुष्य के आनन्द-प्राप्ति का कारण बन वैयक्तिक होते हुए भी विराट आयाम प्राप्त करता।

गीतिकाव्य की-विषय वस्तु

विभिन्न कालों मे, गीतिकाव्यों की विषय-वस्तु परिवर्तित होती रही है। गीतिकाव्य की विशेषताओं की ओर दृष्टिपात करने के पश्चात यह जरूरी हो जाता है कि हिन्दी साहित्य के आदिकाल से आधुनिक काल तक गीतिकाव्यों की विषय-वस्तु का विस्तारित विवेचन किया जाए। आदिकाल में गीतिकाव्य की परम्परा इतनी सुदृढ़ नहीं मिलती परन्तु 'हिन्दी में गीति रचना सिद्धों के चर्यापदों के आदर्श पर प्रारम्भ हई।'[125] इस काल में सिद्धों ने साम्प्रदायिक सिद्धांतों के प्रचार के लिए लोकभाषा को ही अपनाया । भक्तिकाल के निर्गुण

पंथियो ने 'सिद्धो के बाह्य पूजा, जाति-पॉति, तीर्थ-व्रत आदि के विरोधी-भाव के साथ-साथ नाद, बिन्दु, निरति, सुरति आदि के मनमाने रूपक और उलटवासियो के साथ- 'वेदान्त से ज्ञानवाद, सूफियो से प्रेमवाद और वैष्णवो से अहिसावाद तथा प्रपत्तिवाद ग्रहण किए।'[126] सगुण धारा के कवियो ने भावविह्वल गीतियो की सृष्टि की और दैन्य, आत्मनिवेदन आदि विनीत भावो को सरल रूप से इष्टदेव के सामने रख दी। रीतिकाल की परिस्थितियॉ ऐसी नही थी कि गीतिकाव्य का विकास हो पाता परन्तु फिर भी कुछ कवियो ने स्वानुभूतिपरक गीतियॉ लिखी। आधुनिक काल के आरम्भ मे भारतेन्दु ने ब्रज भाषा का प्रयोग कर कई स्वानुभूतिपरक, भक्तिपरक और देशात्मबोधक गीतियॉ लिखी जबकि द्विवेदी युग रविन्द्रनाथ के प्रभाव से प्रभावित हुआ। "द्विवेदी जी ने नूतन छंद के प्रयोग के लिए कवियो को प्रोत्साहित किया।"[127] इस युग मे सार्वभौम भाव, रहस्यात्मक भाव आदि की अभिव्यक्ति हुई। "छायावादी युग हिन्दी गीतिकाव्य के विकास की दृष्टि से चरमोत्कर्ष का युग माना जाता है।"[128] इस काल मे अंग्रेजी के स्वच्छंदतावाद का प्रभाव स्पष्ट होता है। प्रकृति को इन कवियो ने नवीन रूपो मे (प्रणय, आध्यात्मिक) दर्शाया। इनकी भाषा लाक्षणिक, वक्र एवं नवीन अलंकार युक्त थी।

छायावादोत्तर गीतिकाव्य मे प्रगतिवाद धारा मार्क्सवादी दृष्टिकोण से प्रभावित था। इस काल के कवियो ने युग के प्रति असंतोष, साम्यवादी समाज की स्थापना, मानवतावादी लोक मंगलकारी तथा यथार्थपरक अभिव्यक्ति पर बल दिया। इनकी भाषा सरल, स्वाभाविक तथा अधिक मुखर थी। प्रयोगवाद के युग मे कुण्ठा, निराशा, आत्मपीड़न, बौद्धिकता के प्रति आग्रह, शिल्प-विधान मे नवीन प्रयोगो को प्रश्रय मिला। "गीतियो मे यंत्र-तंत्र लय तुक, छन्द-योजना के अभाव के अतिरिक्त अनगढ और गद्यात्मक भाषा का व्यवहार नवीन प्रयोगो का परिचायक है।"[129]

इस प्रकार गीतिकाव्य की विषय-वस्तु विभिन्न कालों के सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक आदि पस्थितियों से प्रभावित होकर परिवर्तित होती रही है और छायावाद में पहुँचकर अपने चर्मोत्कर्ष पर पहुँचती है।

गीतिकाव्य का वर्गीकरण

गीतिकाव्य प्राचीन काल से परम्परा के रूप में हमारे समाज में उपस्थित रहा है। प्रारम्भ में धार्मिक आयोजनों, उत्सव त्योहार आदि में ही गीतिकाव्य अपनी अभिव्यक्ति पाता रहा है। परन्तु पाश्चात्य विचारकों के प्रभाव से आधुनिक गीतिकाव्य में वैयक्तिकभावनाओं का पुट भी शामिल होता गया। गीतिकाव्य के वर्गीकरण के कई आधार हो सकते हैं। विद्वानों ने इन्हीं आधारों को मानकर गीतिकाव्य का वर्गीकरण कई प्रकार से किया है। E.W.Hawphins ने 'The early lyric poetry of India' में भारतीय गीतों को चार भागों में विभाजित किया है:-

1. ई.पू.वी शताब्दी से लेकर चौथी शताब्दी तक के वैदिक गीत
2. ई पू चौथी शताब्दी से पहली शताब्दी तक भक्तिगीत
3. प्रेमगीत
4. रहस्य-गीत[130]

डॉ. रामखेलावन पाण्डेय यह मानते हैं कि:-"गीतियों का वर्गीकरण वस्तुनिष्ठ और आत्मनिष्ठ रूप में किया जाता है। वस्तुनिष्ठ गीतिकाव्य का तात्पर्य उन, गीतों से लिया जाता है जिसका परिस्थिति, व्यक्ति अथवा वस्तु से संबंध हो और आत्मनिष्ठ गीतियों में इच्छा शक्ति भावना अनुभूति और विचार की अभिव्यंजना रहती है।"[131]इसी प्रकार अन्य

विद्वानों ने भी गीतिकाव्य को भिन्न-भिन्न प्रकार से वर्गीकृत किया है। कभी गेयता के आधार पर तो कभी स्वरूप अथवा विषय के आधार पर गीतिकाव्य को वर्गीकृत किया जाता रहा है। मूलतः गीतिकाव्य को वर्गीकृत करने के तीन आधार माने जा सकते हैं:-

(क) गेयता का आधार

(ख) स्वरूप का आधार

(ग) विषय का आधार

गेयता के आधार पर गीतों को एकस्वर गीत, समूह-गीत और नृत्य-गीत के रूपों में बाँटा जा सकता है। एकस्वर गीत एक ही व्यक्ति द्वारा स्वतंत्र रूप से गाया जाता है। अंग्रेजी में इसे 'मोनोडी' कहते हैं। मूलतः इसके अंतर्गत दुःखान्त गीतों को ही रखा जाता है जिसमें विलाप करने वाला एक पात्र होता है। सूर, तुलसी, मीरा, निराला, रामकुमार और बच्चन आदि के गीत इस कोटि में आते हैं। समूह-गीत एक से अधिक लोग मिलकर गाते हैं और अंग्रेजी में यह कोरस के नाम से जाना जाता है। समूह-गीत अधिकतर लोकगीतों, कुछ नाटकों आदि में पाए जाते हैं। कुछ एकस्वर गीतों को भी समूह रूप में गाया जाता है। उदाहरण के लिए 'भारतिजय विजय करें' (निराला), प्रसाद के द्वारा रचित 'हिमाद्रि तुंग श्रृंग से' और 'पैरों के नीचे जलधर हो' अच्छे समूह गीत हैं। नृत्य-गीत में नृत्य की शास्त्रीय गति होती है। इस प्रकार के गीत में नृत्य के लय-ताल के साथ शब्दों का मेल बैठाना पड़ता है।

विषय के आधार पर गीतो को चौदह वर्गों में बाँटा जा सकता है। यथा-प्रार्थना-गीत, रहस्यवादी गीत, राष्ट्रीय गीत, प्रयाण गीत, उत्यव-गीत, शोक-गीत, सम्बोध-गीत, वीर-गीत, परिवृत्ति गीत (पेरेडी), उपालम्भ गीत, विचारात्मक गीति, उपदेशात्मक गीत और प्रेम-गीत । मध्यकाल में प्रार्थना परक गीतों की विपुल संख्या प्राप्त

होती है। आधुनिक काल में 'साकेत' में मैथिलीशरण गुप्त की रचित प्रार्थना गीत इसी का उदाहरण है। आधुनिक हिन्दी काव्य के क्षेत्र में ऐसे भी गीत मिलते हैं, जिनमें व्यक्तिगत भक्ति के स्थान पर राष्ट्र और विश्व जीर्णोद्धार की कामना मिलती है। निराला का 'वीणावादिनी वर दे' इस प्रकार के गीत का उत्कृष्ट उदाहरण है। "रहस्यवाद जीवात्मा की उस अंतर्निहित प्रकृति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और आलौकिक शक्ति से अपना शान्त और निश्छल सम्बन्ध जोड़ना चाहती है।"[132] वस्तुतः परमात्मा को परम पुरुष और अपने आपको दुल्हिन मानकर आत्मा जो प्रणय-व्यापार करती है, वही रहस्यवाद का मूल है। रहस्यवाद के सिद्ध और प्रसिद्ध कवि है, डॉ. रामकुमार वर्मा और श्रीमती महादेवी वर्मा। रहस्यवादी गीतों में आत्मा-परमात्मा का सम्बन्ध-नियोजन दानों के एकाकार होने की प्रवृत्ति, आध्यात्मिक तड़पन, प्रिय के वियोग में प्रिय की विरह कातर उक्तियॉ, प्राकृतिक उपादानों में व्यक्त विश्वपति की छवि, करुणा की प्रधानता, अनेकता में एकता के दर्शन, चित्त की एकाग्रता, असमर्थता का बोध आदि विशेषताएँ पाई जाती है।

राष्ट्रीय गीतों में स्वतंत्रता पूर्व के संघर्ष, चुनौती, उत्साह, बलिदान, नव-निर्माण, मानवतावादी दृष्टिवत्रेण राष्ट्रीय-एकता आदि के भाव पाए जाते हैं। प्रयाण-गीत किसी युद्ध-भूमि या वीर-लक्ष्य की प्राप्ति के उद्देश्य से एक या अनेक व्यक्तियों के अभियान-गीत को कहते हैं। इसकी रचना में ओजस्वी शब्दों एवं चरणों की गति के साथ मिलती हुई-लय-गति का ध्यान रखना होता है। उत्सवों पर गाए जाने की क्षमता लोकगीतों की विशेषता है। जन-जीवन का आह्लाद सामाजिक रूप में उत्सव और आन्तरिक स्तर पर गीत बनकर प्रकट होते हैं। छठ, दिपावली, दशहरा, सावनपूजा तीज, आदि व्रतों के अवसर पर अनेक लोकगीत, मगही, मैथिली, भोजपुरी, छत्तीसगढ़ी आदि में मिलते हैं। 'होली' के अवसर पर लिखे गए निराला के गीत इसी कोटि में आते हैं।

करूण का स्थायी भाव शोक होने के कारण शोक-गीत को करूण-गीत भी कहते हैं। इसमें संवेग का आधिक्य होता है। ग्रीक-साहित्य में तथा अंग्रेजी साहित्य में शोकगीत को 'एलेजी' कहा जाता है। सम्बोध गीत एक ऐसी संगीतात्मक रचना है, जिसमें किसी को सम्बोधित किया जाता है, जिसका विषय प्रायः गम्भीर चेतना से सम्बद्ध होता है, जिसका एक निश्चित उद्देश्य होता है और जिसमें तर्कसम्मत विचार होते हैं। इसमें एक काव्यमयी वक्तृता का आभास मिलता है। इसमें किसी को सम्बोधित कर कवि अपने मनोभावों का विस्तार से वर्णन करता है। अंग्रेजी में दो प्रकार के सम्बोध (ओड्स) का प्रचलन मिलता है- एक होरेशियन और दूसरा पिण्डारिका। प्रथम में एक ही अनुच्छेद की आवृत्ति होती है। दूसरे में तीन अनुच्छेदों के खण्ड होते हैं। संस्कृत में मेघदूत, पवनदूत आदि में सम्बोधन की शैली मिलती है। निराला के कुछ गीत भी इस कोटि में आते हैं। वीर गीत, काव्य-कला का अत्यंत प्राचीन रूप है। यह कथाकाव्य का एक रूप है जो वर्णनात्मकता प्रधान होता है। हिन्दी में 'आल्हा-ऊदल' आदर्श वीर गीत है। व्यंग्य और हास्य में विशेष अन्तर सोद्देश्यता का होता है। हास्य का प्रधान उद्देश्य महज मनोरंजन है, पर व्यंग्य का लक्ष्य दोष-परिमार्जन है। व्यंग्य में तिलमिला देने की शक्ति होती है। हिन्दी में कबीर साहित्य में व्यंग्य की विपुलता है। हास्य गीत दो रूपों में मिलता है। शुद्ध हास्य और परिवृत्ति गीत। दोनों प्रकार की रचनाओं के क्षेत्र में बेढ़ब, बेधड़क, चोंच, गोपाल प्रसाद व्यास, हरिशंकर शर्मा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इनकी रचनाओं में स्वयं कवि भी अपने ऊपर व्यंग्य हास्य उत्पन्न करते हैं। बंगला साहित्य के कवि काज़ी नज़रुल इस्लाम ने भी ऐसे ही हास्य गीतों की रचना की है।

परिवृत्ति गीत (पेरोडी) में मूल कवि के शब्दों के हेर-फेर या किंचित परिवर्तन से हास्य उत्पन्न किया जाता है । उपालम्भ का आश्रय अपने प्रेमी की निष्ठुरता और अपने

खण्डित प्रेम की दुहाई देनेवाले वियोग की अवस्था में किया जाता है। भ्रमरगीत इस प्रकार के गीति का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। विचारात्मक गीत के अंतर्गत आने वाली रचनाओं में भावनाएँ ठोस होकर चिन्तन बन जाती है। उनमें एक दर्शनिक गम्भीरता होती है। निराला और पंत की कुछ रचनाएँ इस कोटि में आती हैं। उपदेशात्मक गीतों में लौकिक नीति और पारलौकिक सिद्धि के लिए संदेश दिए जाते हैं। प्रेम गीत की परम्परा सुदीर्घ है। भक्तिकाल रामायण युग से आधुनिक काल तक विपुल मात्रा में प्रेम गीत पाए जाते हैं। निराला और नज़रुल के अधिकतर गीतिकाव्य प्रेम अथवा प्राकृतिक सुषमा के विस्तारित वर्णन से परिपूर्ण है।

स्वरूप के आधार पर गीतिकाव्य को चतुर्दशपदी, गज़ल, गीतिकाव्य, पत्र-गीति और गीति-प्रबन्ध के रूप में बाँटा जा सकता है। चतुर्दशपदी, जिसे अंग्रेजी में सॉनेट कहते हैं, का सर्वप्रथम प्रयोग इटली के कवि 'पेट्रार्क' ने किया था। 14 पंक्तियों की इस छोटी सी रचना में एक ही भाव की पुष्टि होती है। इसमें आठ और छः पंक्तियों के दो खण्ड होते हैं। प्रथम खण्ड के कथन की व्याख्या अंतिम खण्ड में होती है। अंग्रेजी में शेक्सपीयर और मिल्टन तथा हिन्दी में प्रभाकर माचवे, रामइकबालसिंघ 'राकेश' त्रिलोचन शास्त्री आदि ने चतुर्दशपदियाँ लिखी हैं। गज़ल उर्दू के प्रभाव से हिन्दी में आया है। यह गेयता की दृष्टि से गीतिकाव्य के निकट है। गज़ल के पहले शेर में अन्यनुप्रास और बाद के शेर में तुक-साम्य होता है। इन्हें क्रमशः 'मतला' और 'मकता' कहते हैं। हिन्दी में गज़लों की दिशा में निराला ने काफ़ी प्रयोग किए हैं जो 'बेला' की रचनाओं में देखा जा सकता है। गीति-नाट्य का मुख्य आधार गीत ही होता है और इसके गीतों में ही कथोपकथन होता है। कथा की सरलता, भाव की प्रधानता, रागात्मक एवं कोमल वृत्तियों की व्यंजना, आत्मभिव्यंजन और गीति तत्व की प्रधानता आदि गीतिनाट्य के कुछ लक्षण हैं। प्रसाद का

'करूणालय' हिन्दी का सर्वप्रथम गीतिनाट्य है। पन्त के 'युग-पथ में त्रिवेणी' भगवतीचरण वर्मा के 'मधुकण' संग्रह में इन्दुमती, दिनकर का 'इतिहास के आँसू' आदि अच्छे गीतिनाट्य हैं। पत्र-गीति में गीतिकाव्य की रचना पत्र के रूप में की जाती है और प्रायः प्रेम परक होती है। बच्पन की 'प्रणय-पत्रिका' इसका उदाहरण है। निराला द्वारा रचित 'महाराज शिवाजी का पत्र' भी एक पत्र गीति ही है। गीति-प्रबन्ध में प्रबन्ध काव्य का पुट विद्यमान होता है। यह प्रबन्ध काव्य की तरह उद्देश्य-प्रधान, बौद्धिक ऊँचाई युक्त, शिष्ट और नागर समाज की जीवन-विधि से परिपूर्ण और अलंकृत, उदात्त तथा गरिमामयी शैली प्रधान होता है।

इस प्रकार गीतिकाव्य के वर्गीकरण के कई आधार हैं और इसे कई प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है। आगे आने वाले संदर्भों में गीतिकाव्य के वर्गीकरण के इन्हीं आधारों पर सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला और काज़ी नज़रुल इस्लाम के गीतिकाव्यों को वर्गीकृत कर उनके गीतों का तुलनात्मक निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है।

संदर्भ :

1. बृहत् हिंदी कोष- पुनर्मुद्रित संस्करण 1997 पृ0 संख्या-1244,
2. हिंदी साहित्य कोष- भाग-1, पृ0 संख्या- 764
3. सम्मेलन पत्रिका, सं0 1980, पृ0 संख्या- 307,
4. कुछ विचार- लोकभारती प्रकाशन, 1999, पृ. 6
5. हिंदी साहित्य कोष- भाग-1, पृ. 764
6. नाट्यशास्त्र पृ. 17, 123
7. अग्निपुराण, 337 अध्याय, 607 श्लोक
8. काव्यालंकार, प्रथम परिच्छेद- पृ. 2
9. काव्यादर्श, डॉ0 नगेन्द्र- भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा, पृ. 58
10. काव्यालंकार, सूत्रवृद्धि 1, 2, 6
11. काव्यप्रकाश, पृ. 474-477
12. वही, पृ. 378
13. अरस्तू काव्यशास्त्र, पृ. 26
14. डॉ0 भगीरथी मिश्र, काव्यशास्त्र, पृ. 10
15. वही, पृ. 11
16. Wordsworth-preface
17. The Poeitical works of William Wordsworth, P-935
18. श्यामनन्दन शास्त्री - काव्यशास्त्र की रूपरेखा, पृ. 35
19. पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त- डॉ0 शान्तिस्वरूप, पृ. 239
20. वही
21. काव्यशास्त्र -डॉ0 भगीरथी मिश्र, पृ. 13
22. Lives of eng poets, P-117
23. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त, प्रो0 देशराज सिंह, पृ. 179
24. काव्यशास्त्र की रूपरेखा, श्यामनन्दन शास्त्री, पृ. 35
25. Illusion and reality, P-3
26. रसज्ञ- रंजन, पृ. 50
27. सम्मेलन पत्रिका, चैत्र-वैसाख, पृ. 307
28. चिन्तामणि, भाग-1, पृ. 141
29. साहित्यालोचन, पृ. 37
30. गद्य-पद्य, पृ. 205
31. साहित्य सुधानिधि, जुलाई- 1894
32. डॉ0 नगेन्द्र, भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा - पृ0 635

33. जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धांत - पृ0 103
34. रस-रहस्य 8/20
35. कविता कौमुदी- भाग 3, पृ.- 103, 69
36. काव्यशास्त्र, पृ0 43
37. अग्निपुराण, काव्यनुशासन - L/10
38. ध्वन्यालोक, तृतीय उद्योत
39. साहित्यदर्पण, षष्ठ परिच्छेद - 313-14
40. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा-चन्द्रशेखर पाण्डेय साहित्य निकेतन- कानपुर-1945, पृ.-245
41. गीतिकाव्य- डॉ0 रामखेलावन पाण्डेय- ज्ञानमंण्डल लिमिटेड, पृ.- 6
42. वही, पृ.- 8
43. Christopher Codwell - Illusion and Reality- p-59 (1946) L & W London
44. आधुनिक गीतिकाव्य- डॉ0 उमाशंकर तिवारी- पृ.- 27
45. A Handbook of Poetics- B. Gummerea, -p-75
46. मार्क्सवादी साहित्य चिन्तन- शिवकुमार मिश्र- पृ.-262
47. मार्क्सवादी साहित्य चिन्तन- शिवकुमार मिश्र- पृ.-262
48. आधुनिक गीतिकाव्य-डॉ0 उमाशंकर तिवारी, प्रथम संस्करण-199, वाणी प्रकाशण, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ.- 29
49. सौन्दर्यबोध और हिन्दी नवगीत-डॉ0 माधवेन्द्र प्रसाद पाण्डेय विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी- पृ.- 48
50. लोक की अवधारणा-आलेख, हिन्दी अनुशीलन-हिन्दी साहित्य परिषद्, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, डॉ0 माधवेन्द्र प्रसाद पाण्डेय
51. छायावादोत्तर हिन्दी काव्य शिल्प- डॉ0 रामकुमार मिश्र, पृ.- 118
52. गीतिकाव्य- डॉ0 रामखेलावन पाण्डेय - पृ.- 13-14
53. नाट्यशास्त्रम-प्रथम भाग-सं- साहित्याचार्य मधुसूदन शास्त्री, पृ.- 8
54. नाट्यशास्त्रम-प्रथम भाग-सं- साहित्याचार्य मधुसूदन शास्त्री, पृ.- 10
55. नाट्यशास्त्रम-प्रथम भाग-सं- साहित्याचार्य मधुसूदन शास्त्री, पृ.- 18
56. बृहत हिन्दी शब्द कोश, पृ.- 989
57. साहित्य रत्नाकार कालिनाथ खडा, पृ.- 6
58. वाचश्पत्यम (बृहत संस्कृताभिधानाम p-2592-भाग चार-वाराणसी 1970 Compelled by Sri Taranath Tarkareachaspati.

59. हिन्दी साहित्यकोश-भाग-1- परिभाषिक शब्दावली, वाराणसी p-222 iiird edition.
60. Concise Oxford Dictionary-p- 716
61. Concise Oxford Dictionary-p- 439
62. Collin's Dictionary & Thesaurus-p-572
63. Collin's Dictionary & Thesaurus-p-370
64. Lyric Poetry - Earnestrise, forward forth
65. Handbook of poetics- grammer-p-40
66. संक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर - षष्ठ संस्करण, पृ.- 269
67. हिन्दी विश्वकोश, षष्ठ भाग- BR Pule-p-347
68. हिन्दी विश्वकोश, षष्ठ भाग- BR Pule-p-347
69. हिन्दी विश्वकोश-षष्ठ भाग- पृ.- 347
70. हिन्दी शब्दसागर- p-127, 1967 ई0
71. सिद्धांत और अध्ययन- पृ0 225
72. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य, पृ0 141
73. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य, पृ0 141
74. वाङ्मय विमर्ष - विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ0 41
75. हिन्दी साहित्यः उद्भव और विकास- पृ0 452
76. जीवन और काव्य - पृ0- 241-42
77. सूर और उनका साहित्य- पृ0 285-86
78. वाचशपत्यम-भाग-4, पृ0- 2563, संस्कृत सीरीज- वाराणसी-1
79. हिन्दी शब्दसागर-तृतीय भाग-सं- श्यामसुन्दरदास, पृ0- 1271
80. संक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर- रामचन्द्र वर्मा, षष्ठ सं- 269
81. छायावादोत्तर हिन्दी काव्य शिल्प -डॉ0 राम कुमार मिश्र, पृ0- 117
82. हिन्दी साहित्य कोश- भाग- 1- पृ0- 223-224, सं- धीरेन्द्र वर्मा
83. हिन्दी शब्दसागर- तृतीय भाग पृ0 -129
84. Encyclopaedia Britanica- vol-vi. Lalo Mouppar N.E.H.U. rub- 1943-1973-p-420
85. The Concise Oxford Dictionary of English lit- II edition] oxford issue press-p-346
86. The Concise Oxford Dictionary of English lit- iind edition] oxford issue press-p-346

87. A Dictionary of Classical Antiques (Mythology) Religion, List and Arts, Miltal Pub- Delhi- Dr.Oskar Seyffert-1986.
88. Webster's New World Dictionary, pub- Crulab Primlani, chap-1
89. Methods and Materials of Literary Criticism-p-7
90. Dictionary of World literary terms
91. The Study of literature, W.H. Hudson-p-248
92. Outlines of Aesthetics, Translated by- S.T Ladol p-9
93. Form in Modern Poetry-p-45
94 Poetry: Its Music and Meaning p-49
95. Oxford Junior Encyclopaedia- vol xii p- 248
96. छायावादोत्तर हिन्दी काव्य शिल्प -डॉ0 रामकुमार मिश्र, शुभदा प्रकाशन, पृ0-117, प्र0स0-2001, शाहदरा दिल्ली
97. गीत-गोविन्द, हिन्दी-रूपान्तर- विनयमोहन शर्मा- प्रस्तावना- डॉ0 सिद्धेश्वर शर्मा- पृ0-6
98. हिन्दी साहित्य(1926-47ई0) पृ0- 6
99. मैथिलीशरण गुप्तः कवि और भारतीय संस्कृति के व्याख्या पृ0-197-98
100. छायावादी काव्यः स्वरूप और व्याख्या, पृ0 74
101. काव्य की परख- पृ0 9
102. छायावाद का गीति- सौन्दर्य, 'छायावाद और प्रगतिवाद' पृ0-40
103. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास- डॉ0 रामकुमार वर्मा पृ0- 56
104. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत - भाग-2 पृ0- 30
105. गीतिकाव्य- डॉ0 रामखेलावन पाण्डेय- ज्ञानमण्डल लिमिटेड-पृ0- 14
106. बांग्ला, काव्यगीतिर धाराय काज़ी नज़रुल इस्लामेर स्थान-करुणामय गोस्वामी-पृ. 1
107. बांग्ला, काव्यगीतिर धाराय काज़ी नज़रुल इस्लामेर स्थान-करुणामय गोस्वामी-पृ0 5
108. नारायण चौधरी- काज़ी नज़रुलेर गान/प्र0 प्रकाशन-1977 पृ0 45
109. रविन्द्रनाथ ठाकुर- 'संगीत चिन्ता' - प्रथम प्रकाशन- कलकत्ता 1966 विश्व पृ0- 27
110. रविन्द्रनाथ ठाकुर- संगीत चिन्ता - पृ0 86
111. हिंदी साहित्यकोश - भाग 1, पृ. 222
112. The Story of poetry P. 45-46
113. विचार और अनुभूति, पृ. 121
114. गीतिकाव्य-डॉ0 रामखेलावन पाण्डेय, पृ. 31

115. वही, पृ. 36 एवं 100
116. विचार और अनुभूति, पृ. 85-86
117. आधुनिक गीतिकाव्य- डॉ0 उमाशंकर तिवारी, वाणी प्रकाशन, पृ. 30
118. वही
119. वही
120. वही, पृ. 31
121. वही, पृ. 32
122. वही, पृ. 32
123. साहित्यालोचन, पृ. 95
124. आधुनिक हिंदी गीतिकाव्य का स्वरूप और विकास, पृ. 56
125. गीतिकाव्य का विकास, लालधर त्रिपाठी, पृ. 419
126. छायावादोत्तर हिंदी काव्य शिल्प-डॉ0 रामकुमार मिश्र, पृ. 118
127. वही, पृ. 119
128. वही, पृ. 120
129. वही, पृ. 121
130. The Early lyric poetry of India- P. 20
131. गीतिकाव्य, डॉ0 रामखेलावन पाण्डेय, पृ. 213
132. अंजलि, अपने विचार-डॉ0 रामकुमार वर्मा, पृ. 13

द्वितीय अध्याय

निराला एवं नज़रुल का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

द्वितीय अध्याय

निराला और नज़रुल का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

प. बंगाल के मेदिनीपुर जिले में महिषादल एक सुंदर रियासत था । आज भी वहाँ के जर्जरित महल के अंश एक अनुपम सौंदर्य की छँटा बिखेरते है । हरित श्यामल दूब से भरा मैदान, फलदार बागान और रंग-बिरंगे फूलों के क्यारियों की छँटा, सभी मिलकर एक मनोरम दृश्य का सृजन करते हैं । इसी अनुपम स्थान में संवत् 1953 तदनुसार 13 फरवरी सन् 1897 को निराला का जन्म हुआ । निराला के पूर्वज उत्तरप्रदेश के गढ़ाकोला के बैसवाड़ा गाँव में रहते थे । उनके दादाजी शिवधारी तिवारी के चार बेटे थे जिनमें से रामसहाय तिवारी भी एक थे । रामसहाय नौकरी की तलाश में महिषादल जा पहुँचे और वहीं पुलिस की नौकरी में भर्ती हो गये । यहीं उन्हें निराला जैसे पुत्र की प्राप्ति हुई । निराला का पूरा नाम सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला था परन्तु उनको बचपन में सुर्जकुमार के नाम से पुकारा जाता था । सुर्जकुमार के जन्म के छाह साल बाद ही उनकी माँ चल बसी और परिणाम स्वरूप पिता का सम्पूर्ण ध्यान उन पर केन्द्रित हो गया । उनके प्रतिवेशी ज्वाला प्रसाद की पत्नी सुर्जकुमार को काफी स्नेह करती थी । पिता रामसहाय के कठोर शासन से बालक सुर्जकुमार उद्धृत स्वभाव का हो गया । अपनी इसी उद्धृतता के कारण उन्हें पिता के हाथों बुरी तरह से पिटना पड़ता था । डॉ. रामविलास शर्मा निराला के स्वयं लिखे वाच्य को उद्धृत करते हुये लिखते हैं 'मारते वक्त पिताजी इतने तन्मय हो जाते थे कि उन्हें भूल जाता था कि दो विवाह के बाद पाए हुये इकलौते पुत्र को मार रहे हैं ---- चार-पाँच साल की उम्र से अब तक एक ही प्रकार का

प्रहार पाते-पाते सहनशील भी हो गया था और प्रहार की हद मालूम हो गई थी ।'[1] पिता का दण्ड सुर्जकुमार को अन्यायपूर्ण लगता था । इसलिए वे बचपन से ही जिद्दी स्वभाव के हो गए । दुःख का प्रथम प्रहार उन्हें तब लगा जब ढाई वर्ष की अवस्था में उन्होंने अपने माता को खो दिया । 13 सितम्बर 1907 में वे महिषादल में तीसरी कक्षा में भर्ती हुये । पढ़ने-लिखने में विशेष रुचि न होने पर वे खेलकूद में अधिकतर समय बिताते थे । मात्र 14 वर्ष में उनका विवाह डलमऊ के रामदयाल द्विवेदी की पुत्री मनोहरा देवी से हो गया । विवाह के पश्चात मनोहरा देवी को उनके पिता के घर छोड़कर सुर्जकुमार पुनः महिषादल लौट आए ।

महिषादल पहुँचकर सुर्जकुमार की दिनचर्या पुनः पहले जैसे हो गई । खेलकूद में अधिक रुचि होने के कारण फुटबॉल खेलने और तैरने में पटु हो गए । स्वास्थ्य में भी उचित वृद्धि हुई । महिषादल के पास एक नाट्यशाला था । सुर्जकुमार के मन में स्वाभाविक रूप से नाट्य अभिनय के प्रति रुचि उत्पन्न हुई । वे अधिकतर नाट्य देखते और कभी-कभी उसमें छोटी सी भूमिका भी निभाते । ऐसा ही एक बांग्ला नाटक 'तरुबालाय' था जिसमे सुर्जकुमार ने एक हिन्दुस्तानी की भूमिका निभाई। अपने देह को सुन्दर-सुगठित करने की रुचि भी यहाँ से उनके मन में जागी । इस प्रकार अब उनका प्रधान काम व्यायाम करना, बादाम का शरबत पीना, रामायण पाठ करना और मित्रों के साथ बैठना ही था ।

खेलकूद में रूचि होने पर भी सुर्जकुमार की बुद्धि प्रखर थी और स्मरणशक्ति प्रचंड । किसी भी चीज को दो-तीन बार पढ़ने से ही वे उसे कण्ठस्थ कर लेते थे । उन्हें संस्कृत काव्य के वे अंश प्रिय लगते थे जहाँ शब्दसज्जा सुन्दर हो । इसी प्रकार दिन

कटने लगे और वे 16 साल की अवस्था में आ गए । सोलह साल के सुर्जकुमार सुन्दर, सुगठित, स्वस्थ देह के अधिकारी थे । कुछ दिनों पश्चात पिता उन्हें पुनः गाँव ले गए और उनका गौना हो गया । मनोहरा देवी सीधे-सादे प्रकृति की सरल महिला थी । घर के काम में व्यस्त होते हुए भी वे समयानुसार पूजा-पाठ करती और तुलसीदास का भजन गातीं । निराला उनकी कर्मठता और सरल स्वाभव पर अनुरक्त हुये । कुछ दिनों बाद सभी महिषादल लौट आए । निराला मैट्रिक की परीक्षा में बैठे किन्तु गणित के स्थान पर परीक्षा-पत्र में श्रृंगार-रस की हिन्दी कविता लिख आए । परिणामस्वरूप परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं हुये । क्रुद्ध पिता ने सुर्जकुमार को अपना परिवार स्वयं सम्भालने को कहा । कोई उपाय न देखकर वे अपनी पत्नी को लेकर अपने ससुराल डलमऊ चले गये । छः महीने पश्चात उनके पिता उन्हे पुनः महिषादल ले गए । सुर्जकुमार मांसाहारी थे और मनोहरा देवी शाकाहारी । अपने अक्खड़ स्वभाव के कारण वे मनोहरा देवी को सुख नहीं दे पाए और कुछ ही महीनों में वे पुनः अपने पिता के घर लौट गईं । 1914 ई. में उन्होंने एक पुत्र को जन्म दिया । नाम रखा रामकृष्ण । 1917 ई. में मनोहरा देवी ने पुत्री सरोज को जन्म दिया । इसी वर्ष सुर्जकुमार के पिता रामसहाय ने भी देहत्याग दिया । 19 साल के सुर्जकुमार के मन में अब दायित्वबोध जागने लगा और नौकरी की तलाश में वे राजा के सम्पर्क में आए । उन्हें पत्रों, कोर्ट-कचहरी, खज़ाना इत्यादि को देखभाल करने का कार्यभार सौंपा गया । एक बार एक संस्कृत नाटक में उन्हें संस्कृत श्लोक-पाठ का अवसर प्रदान किया गया । सुर्जकुमार के सुंदर स्पष्ट एवं लयात्मक श्लोक पाठ से राजा खुश हुये और उन्होंने उनके लिए संगीत शिक्षा की व्यवस्था भी की ।

1914-1918 ई. तक प्रथम विश्वयुद्ध समाप्त हुआ । इसी समय भारत में भयानक महामारी फैली । इस महामारी की चपेट में आकर मनोहरा देवी ने देह त्याग

दिया । सुर्जकुमार टेलीग्राम पाकर वहाँ पहुँचे तो देखा महामारी के प्रकोप से उनके बड़े भाई भी बीमार थे । कुछ ही दिनों में सुर्जकुमार ने अपनी आँखों के सामने अपने बड़े भाई, भाभी और उनकी छोटी बच्ची को एक-एक कर मृत्यु की गोद में सोते देखा । मृत्यु का ऐसा भयंकर रूप देख सुर्जकुमार विक्षुब्ध हो गये । चार वर्ष के पुत्र रामकृष्ण और सवा साल की पुत्री सरोज को उनके ननिहाल छोड़कर सुर्जकुमार गढ़कोला गए । वहाँ भी लोगों को मृत्यु की गोद में सोते देखकर सुर्जकुमार गंभीर शोक में डूब गए । वे पुनः डलमऊ लौट गए । वहाँ वे कभी श्मशानों में घूमते तो कभी गंगा किनारे बैठकर शवों को बहते हुये एकटक देखते रहते । कुछ समय पश्चात सुर्जकुमार पुनः महिषादल लौट गए किन्तु कुछ ही दिनों में राजकर्मचारी से कुछ अनबन हो जाने के कारण स्वाभिमानी सुर्जकुमार ने नौकरी से त्यागपत्र दे दिया । इस प्रकार 1921 ई. में सुर्जकुमार ने राजा के त्यागपत्र अस्वीकृत करने पर भी अपने सामान को नीलाम कर दिया और अपने बड़े भाई के बेटे के साथ गढ़ाकोला प्रस्थान करने का निश्चय किया ।

हाँलाकि सुर्जकुमार ने महिषादल छोड़ दिया था परन्तु वहाँ की यादों ने उनका पीछा न छोड़ा । आखिर वहीं उनकी साहित्यिक यात्रा प्रारम्भ हुई थी । वे नियमित रूप से बंगाल के संवाद पत्रों को पढ़ते और देश-विदेश की अवस्था और राजनीति लेकर चर्चा करते । 1920 ई. में गाँधी जी के नेतृत्व में असहयोग आँदोलन प्रारंभ हुआ । पूरा देश स्वदेशप्रेम की गूँज से आलोड़ित हो गया । वे अन्य कवियों की स्वदेशप्रेममूलक रचनाएँ पढ़ते और प्रेरित होते । उनके सर्वाधिक प्रिय स्वेदशप्रेममूलक गीतों के रचयिता द्विजेन्द्र लाल थे । उन्होंने स्वयं भी ऐसे ही एक गीत की रचना की -- 'जन्मभूमि' । 1920 के जून महीने में यह गीत 'प्रभा' नामक पत्रिका में प्रकाशित हुई । परन्तु सुर्जकुमार को अन्य कवियों की तुलना में अपना नाम हल्का प्रतीत हुआ । अतः उन्होंने अपना नाम सूर्यकान्त

त्रिपाठी रखा । और इस प्रकार सूर्यकान्त का नया जीवन-कवि रूप में प्रारंभ हुआ। धीरे-धीरे वे विभिन्न पत्रिकाओं में लेख भी लिखने लगे । उनके एक लेख से प्रभावित होकर रामकृष्ण मिशन में उन्हें 'समन्वय' पत्रिका में काम करने के लिए बुला लिया गया । 1922 में वे 'समन्वय' पत्रिका से जुड़ गए और संपादन का कार्यभर भी संभाला, परन्तु स्वामी माधवानन्द का नाम संपादक के स्थान पर छपता था । 1923 ई. में सूर्यकान्त 'मतवाला' पत्रिका में शामिल हुए । और कुछ ही दिनों में 'मतवाला' अत्यंत लोकप्रिय पत्रिका बन गई । परन्तु हिन्दी के तथाकथित साहित्कारों ने उन पर उँगलियाँ उठाना आरम्भ किया । उनकी कविताओं का घोर विरोध हुआ, कटु आलोचना हुई और साथ ही उन पर अनेक प्रकार से व्यंग्य कसे जाने लगे । उन पर बांग्ला के कवियों की नकल उतारने का दोष भी लगाया गया ।

एक तरफ कटु आलोचना और दूसरी ओर घोर आर्थिक संकट ने निराला की प्रतिभा को दमित होने के स्थान पर और अधिक बढ़ाया । 1929 ई. में वे 'गंगा पुस्तकमाला से जुड़े ।' उन्होंने 'सुधा' के संपादन का कार्यभार भी संभाला । परन्तु 40 रुपये की अल्पराशि से उनकी आर्थिक स्थिति और भी विपन्न हो गई । कुछ लोग कहते थे निराला' को फिजूलखर्च करने की आदत थी परन्तु सत्य तो यह है कि वे दानी थे । गरीबों की दुर्दशा उनसे देखी नहीं जाती थी । महादेवी वर्मा ने उनके विषय में सटीक ही कहा -- 'वे सबेरे ही आ पहुँचे । पचास रुपये चाहिए -- किसी विद्यार्थी का परीक्षा-शुल्क जमा कराना है, अन्यथा वह परीक्षा में नहीं बैठ सकेगा । संध्या होते-होते किसी साहित्यिक मित्र को साठ देने की आवश्यकता पड़ गई । दूसरे दिन लखनऊ के किसी तांगे वाले की माँ को चालीस मनीआर्डर करना पड़ा.......... सारांश यह है कि तीसरे दिन उनका जमा किया रुपया समाप्त हो गया ।'[2] आंतरिक रूप से निराला जितने कोमल और सरल थे

वाह्य व्यक्तित्व से वे उतने ही सुगढ़ और कठोर । उनकी चौड़ी छाती, लम्बे घने केश, गोरा रंग और आवेश युक्त आँखों को देखकर कोई भी प्रभावित हुये बिना नहीं रहता था । निराला का परिचय देते हुये एक बार मुंशी नवजादिकलाल श्रीवास्तव कहते हैं -- 'पद्मपलाशलोचन, आजानुबाहु, कालपक्षधारी, वृषभस्कन्ध और कोकिलकंठ हैं । उनकी अंगुलियाँ अजंतागुहा के चित्रों की छवि छीनती हैं । उनकी मांसपेशियाँ ग्रीस, रोम की मूर्तियों की याद दिलाती हैं । सुए की टोंट-सी उनकी नासिका और अनारदाने से उनके दांत देखकर आप घपले में पड़ जाएँगे । जब वे भुजदण्ड ठोककर अपना प्रशस्त वक्षस्थल का विस्तार दिखाते हैं, तो बुद्धि पगुरी करने लगती है। डील-डौल पंजाबी, बोलचाल बैसवाड़ी, रहन-सहन वेदान्ती ।'[3]

अपने इस दिव्य वेश के कारण निराला अनेक साहित्यिकों में अनोखे लगते थे । परन्तु अपने को संवारने में निराला अत्यन्त लापरवाह रहते । उनकी दाढ़ी प्रायः बड़ी रहती थी । एक तहमद बाँध, कुरता पहन और पैरों में कभी चप्पल या पंप शू पहन कर या फिर कभी नंगे पाँव ही वह घर से बाहर निकल पड़ते ।

मेहमानों के समक्ष भी वह सीधे-सादे वेश में ही रहते । उनके विषय में अज्ञेय लिखते है --

'क्षणभर की झाँकी में हमने देख लिया कि निराला जी केवल कौपीन पहने हुये थे । थोड़ी देर बाद आए तो उन्होंने तहमद लगा ली थी और कन्धे पर आगोछा डाल लिया था ।[4]

इस प्रकार निराला सरल, सहज किन्तु प्रखर व्यक्तित्व के धनी थे । इतने प्रतिभा सम्पन्न होते हुये भी निराला अपनी आर्थिक विपन्नता को दूर न कर सके । अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए कभी उन्हें बाल साहित्य लिखना पड़ता, कभी अनुवाद करना पड़ता और कभी ट्यूशन पढ़ाना पड़ता । फिर भी कभी-कभी उन्हें भरपेट भोजन भी

न मिल पाता । इस बीच निराला उत्कृष्ट साहित्यिक ग्रंथों की रचना करते रहे ।

1935 में निराला की पुत्री सरोज अस्वस्थ हो गई । कविराज के परामर्श अनुसार सरोज को गंगा किनारे एक मठ में रखा गया । महीने भर सरोज वहाँ रही परन्तु निराला की आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं थी । विवश होकर उन्होंने प्रकाशक दुलारेलाल के पास पत्र भेजा । रामविलास शर्मा स्वयं इस पत्र को लेकर उनके पास गए परन्तु दुलारेलाल ने पैसा भी नहीं दिया और ऊपर से एम. ए. पास सचिव को भेजने पर उनका माखौल भी उड़ाया । क्षुब्ध निराला ने कई प्रकार से पैसे माँगने की कोशिश की परन्तु अंततः भाग्य ने उनका साथ न दिया । कितनी अजीब बात थी । जिस इंसान के लिये निराला ने दिन रात काम किया, जिसकी प्रतिष्ठा की नींव निराला ने ही डाली थी, वही इंसान प्रयोजन के समय निराला को उनका मेहनतनामा देने से मुकर गया । निराला निरुपाय थे । कुछ दिनों बाद उनके पास टेलीग्राम आया । सरोज इस दुनिया से चल बसी थी । निराला की आँखों से एक बूँद पानी तक न गिरा । पत्नी की मृत्यु को तो उन्होंने सहन कर लिया था पर सरोज की मृत्यु से वे एकदम टूट गए ।

जिस साहित्य को उन्नति के शिखर पर पहुँचाने के लिये उन्होंने आप्राण चेष्टा की उस साहित्य से आखिर उन्हें मिला क्या ? मात्र निन्दा, तिरस्कार, लांच्छना ही जुटा उनके भाग्य में । सरोज की मृत्यु ने निराला के प्रकृत जीवन की धारा को मोड़कर रख दिया । उन्होंने अपने केश कटवा लिये और सन्यासियों जैसा जीवन व्यतीत करने लगे । परन्तु सरस्वती के पुत्र निराला ज्यादा दिन साहित्यचर्चा से दूर न रह सके । अपने मन के सभी दुःखों और कष्टों के एकत्रित कर उन्होंने पुत्री-शोक की प्रेरणा से एक ऐसी शोक-गीति का निर्माण किया जो देश में ही नहीं अपितु विश्व-साहित्य में भी दुर्लभ है । 'सरोज-स्मृति' में उन्होंने अपने और अपनी पुत्री के साथ किये सभी अन्यायों का खुलासा

किया । इस प्रकार मर्मांतक पीढ़ी की अवस्था से वे धीरे-धीरे प्रकृतस्थ हुये ।

1935 ई. से 1940 ई. तक निराला ने विपुल गद्य साहित्य की रचना की । '1940 के उपरान्त वे प्रगतिशील आन्दोलन के साथ रहे और यथार्थवादी काव्य तथा कथा का सृजन करते रहे ।' आर्थिक विपन्नता और कटु आलोचना को सहते-सहते 1945 में निराला कुछ समय के लिये मानसिक रूप से विक्षुब्ध होने के कारण मौन हो गए । 'निराला का मानसिक संतुलन बिगाड़ने में उनके विरोधियों का बहुत बड़ा हाथ था ।[6]

सन् 1940 के बाद निराला का साहित्यिक विरोध कम होने लगा । 1947 में उनकी स्वर्णजययन्ती मनाई गई और 'साहित्य-सम्मेलन' में साहित्य परिषद का सभापति भी बनाया गया । स्वर्णजयन्ती के अवसर पर उन्हें 11 हजार रुपये की धनराशि भेंट की गई परन्तु बाद में पता चला कि उस डब्बे में कुछ नहीं था ।

सन् 1950 से 1957 तक निराला ने कई गीतों की रचना की । अर्चना, आराधना, गीतगुंज, सांध्यकाकली आदि गीत-पुंजों में उनके लगभग 240 गीत छपे । 1960 ई. वसन्त पन्चमी के दिन इलाहाबाद में निराला अनुरागियों ने उनका जन्मदिवस मनाकर उन्हें सम्मानित किया । उनके काव्यों का मूल्यांकन हुआ एवं उसकी प्रशंसा की गई । पर निराला धीर गंभीर पुरूष की तरह अधिक उत्साहित नहीं हुए तथा कहा -- 'साहित्य की अराधना करते हुये मेरे जीवन का गुरुतर भाग व्यतीत हुआ है । हिन्दी की जितनी सेवा की है उस समादर के योग्य नहीं हुआ । लोग मुझसे उच्चमान साहित्य सेवा के प्रत्याशी की आशा रखते हैं । परन्तु अब मुझसे अधिक आशा करना व्यर्थ है । पर माँ सरस्वती के चरणों में मैं और दो-चार कुसुम उत्सर्ग करने का प्रयास करुँगा । मैं चाहे जो भी हूँ, माँ सरस्वती का संतान तो अवश्य हूँ ।'[7] दिल्ली में भी निराला का जन्मदिवस मनाया गया । पर निराला की मानसिक विक्षिप्तता ने एक और नया मोड़ लिया । वे किसी भी

प्रकार के कागज पर हस्ताक्षर नहीं करते थे । समस्या के समाधान के लिये उन्हें मानसिक रूप से विक्षिप्त घोषित कर दिया गया एवं पुत्र रामकृष्ण को उनका एकमात्र उत्तराधिकारी स्थिर किया गया ।

1960 ई. के अगस्त महीने में निराला अत्यधिक अस्वस्थ हो गये । खाँसी के साथ-साथ हार्निया की बीमारी ने भी उन्हें जकड़ लिया । वर्षाकाल में उनकी स्थिति गंभीर हो गई । कानपुर और इलाहाबाद के अच्छे-अच्छे चिकित्सकों ने उनका उपचार किया । कुछ स्वस्थ होते ही उनहोंने पुनः पुरानी दिनचर्या आरम्भ कर दी । इतने दिन माँस खाने की उन्हें मनाही थी पर एक दिन उन्होंने स्वयं माँस बनाया तथा साथी - मित्रों के साथ स्वयं भी खाया । यहीं से उनका स्वास्थ्य खराब हो गया । संध्या के समय उन्हें दस्त होने लगे । उन्होंने मात्र एक सेब का टुकड़ा खाया। उनका विश्वास था कि इसी सेब के टुकड़े में जहर था । निराला अपनी मानसिक विक्षिप्तता के कारण लोगों पर अविश्वास भी करने लगे थे । वर्षा के कारण चिकित्सक को बुलाना कठिन था । दूसरे दिन सुबह मर्फिया का इंजेकशन देकर उन्हें अस्पताल ले जाया गया । परन्तु उनका कष्ट बढ़ता ही गया । 15 अक्टूबर 1961 को सुबह 9.23 मिनट पर उन्होंने अपना शरीर त्याग दिया । आजीवन कष्ट झेलने के उपरान्त भी मृत्यु के समय निराला प्रसन्नचित मुद्रा में ही थे । समाज की यंत्रणाओं का विषपान करते हुये भी उनहोंने सदा इस समाज और साहित्य को अमूल्य रत्न दिये ।

उनके मरणोपरान्त लोगों ने उनके महत्त्व को समझा । कुछ ही दिनों में निराला विरोधी पत्रिका में लिखा गया -- हम इसे अपने पूर्वजन्म के बहुत बड़े सुकृति का परिणाम मानते हैं कि उन्होंने अपनी सर्वोत्तम कृति 'तुलसीदास' हमें समर्पित किया .....।' 1961 में नवम्बर अंक में 'सरस्वती' पत्रिका में पुनः लिखा गया 'निरालाजी और नहीं रहे..............

किन्तु जितने दिन हिन्दी भाषा है, जितने दिन संसार में शुद्ध काव्य-पारखी हैं, जब तक दलित-पतित एवं पीड़ित मनुष्य हैं......... तब तक निराला का यश-शरीर अमर रहेगा, उनकी वाणी जीवित रहेगी.........।'

निराला : क्रमिक रचनात्मक विकास

रचनाकार की रचना उसके देशकाल एवं जीवन की विभिन्न परिस्थितियों से प्रभावित होती है । यह कथन निराला के क्षेत्र मे भी चरितार्थ होती है । जीवन में किए गए संघर्षो सुख-दुःख के पलों एवं विभिन्न अनुभवो के दर्शन हमे उनकी रचनाओ मे प्राप्त होते हैं । दूधनाथ सिंह ने ठीक ही लिखा है -- 'निराला की हर रचना एक सम्पूर्ण स्वतंत्र जीवन दृष्टि है ।'[8] उनके अनुसार - 'उनका सारा जीवन सांसारिक दृष्टि से असफल, अव्यवस्थित, विश्रृंखल, अतिशय अव्यावहारिक और दुखद रहा है ।'[9] इसी द्वन्द्वपूर्ण मनःस्थिति से प्रेरित हो निराला ने अपनी रचनाओ को जन्म दिया । इसी कारण निराला के कृतित्व को समझने के लिए उनके जीवन की यथार्थताओ से परिचित होना आवश्यक है ।

'निराला की काव्य-रचना प्रक्रिया के विकास को काल-क्रम के आधार पर समझा और विश्लेषित नहीं किया जा सकता है।'[10] इसका कारण दूधनाथ सिंह ने यह माना है कि 'अपने समकाकलीनो मे निराला ही ऐसे एक कवि हैं, जिनके विराट, सर्वग्रासी प्रतिभाशाली व्यक्तित्व मे काव्य-रचना प्रक्रिया' के अनेक स्तर हर समय साथ-साथ क्रियाशील रहे हैं । छायावादी काव्य-सिद्धान्त तो निराला के कालजयी कवि-व्यक्तित्व के एक ही पहलू में समा जाते हैं । उनकी काव्य-रचना का बहुत बड़ा भाग ऐसा है, जो किसी भी काव्य-सिद्धान्त के घेरे मे नहीं अँटता।' इन स्थितियो के बावजूद यहॉ उनकी रचनाओ को निश्चित ऑकड़ा प्रस्तुत करने की कोशिश की जा रही है ।

निराला के रचना-काल की अवधि लगभग 40-50 वर्षों तक मानी जाती है । दूधनाथ सिंह ने 'अपरा' के अतिरिक्त उनके काव्य-संग्रहों की संख्या 13 मानी है । यथा--- (1) अनामिका (2) परिमल (3) अनामिका (नूतन अंक) (4) गीतिका (5) तुलसीदास (6) कुकुरमुत्ता (7) अणिमा (8) बेला (9) नये पते (10) आराधना (11) अर्चना (12) गीत गुंज तथा (13) सांध्य काकली ।

यदि विषय के आधार पर उनकी कृतियों का वर्गीकरण किया जाय तो मुख्य रूप से उनकी रचनाएँ यथार्थवादी, आत्मपरक, सामाजिक, राष्ट्रवादी, श्रृंगारिक, प्रकृतिपरक, भक्तिपरक, दार्शनिक एवं प्रगतिशील विषयों के अंतर्गत वर्गीकृत की जा सकती है । यहाँ कालक्रम के अनुसार उनके काव्यकृतियों का वर्गीकरण प्रस्तुत है :

1. अनामिका : अनामिका की भूमिका में निराला लिखते हैं कि 'अनामिका' नाम की पुस्तिका मेरी रचनाओं का पहला संग्रह है ।'[11] इस पुस्तिका का प्रकाशन 1923 में मुंशी नवजादिकलाल द्वारा कलकत्ता से लिया गया । इसके कुल 40 पृष्ठों में 9 कविताओं का संकलन है जिनमें रचना-स्तरों के अनेक क्रियाशील रूप देखने को मिलते हैं । कुछ कविताओं की छंद योजना एवं भाषिक-संरचना सरल है तो कुछ में 'ग्रेड, डिगरी' जैसे अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग है । 'आध्यात्म फल' की भाषा और कथन-भंगिमा एक गहरे व्यंग्य की अनुभूति लिए हुए है जब कि 'माया' और 'तुम और मैं' संस्कृत की ध्वनि-लहरियों से युक्त एक नयी भाषिक संरचना का आभास देती हैं । 'अधिवास' अपनी ही अध्यात्मिक सिद्धि और 'परमपद लाभ' की आकांक्षाओं वाली काव्य-रचना से पृथक जन-समान्य के संस्पर्श की एक शक्तिशाली उद्घोषणा है ।[12]

सामान्य स्तर की कविताओं में 'आध्यात्मफल', 'माया', 'जल्द', 'सच्चा प्यार', 'लज्जित' आदि आती है । 'जूही की कली' में गीतात्मक लक्षण झलकता है । 'तुम और

मैं', अधिवास, पंचवटी प्रसंग अभूतपूर्व शैली मे लिखी गई कविताएँ हैं ।

2. परिमल : परिमल का प्रकाशन काल 1929 है तथा इसमें कुल 78 कविताओं का प्रकाशन किया गया । परिमल की कविताएँ मूलतः प्रार्थनापरक प्राकृतिक, नारी-सौन्दर्य विषयक, देशप्रेम विषयक, आध्यात्मिक तथा सामाजिक चेतना के आधार पर स्थापित हैं । इसके तीन खण्डो में प्रथम खण्ड के अंतर्गत 33 कविताएँ आती है । दूसरे खण्ड में विषम मात्रिक सान्त्यानुप्रासिक 31 कविताएँ हैं तथा तीसरे खण्ड में मुक्त छंद मे रचित 14 कविताएँ हैं । दूधनाथ सिंह का मानना है -- 'परिमल में भी कविताओं का तीन खण्डो मे जो विभाजन किया गया है, वह सिर्फ छन्द-विधान को दृष्टि मे रख कर ही निराला ने किया है । सम्वेदना की दृष्टि से एक खण्ड की कविताएँ दूसरे खण्डों की कविताओं से अलग-अलग रचना-स्तरों पर साम्य और वैभिन्य रखती हैं ।'[13] परिमल में 'यमुना के प्रति', 'स्मृति', नोन', खेवा, प्रार्थना, पतनोन्मुख विधवा, भिक्षुक, संध्यासुन्दरी, बादलराग, जागो फिर एक बार, महाराज शिवाजी का पत्र, भर देते हो, आदि अनेक उत्कृष्ट कविताओ का संकलन है ।

3. **गीतिका** : 'गीतिका' निराला की श्रेष्ठतम गीतात्मक कृति है जिसमें लगभग 100 गीत है । इसका प्रकाशन काल 1936 माना गया है । गीतिका के अधिकांश गीत श्रृंगारिक हैं । इसमे 'स्पर्श से लाज लगी, मौन रही हार, नयनों के डोरे लाल गुलाल भरे आदि अनेक गीतों का संकलन है ।' 'गीतिका के गीतों की रचना मुख्यतः ताल-सुरो को ध्यान में रख कर की गयी है, किन्तु सम्वेदना और भाषा के लिहाज से उसमें भी अलग-अलग ज़मीन की रचनाएँ हमे बराबर मिल जाती हैं ।'[14] गीतिका के नवीन प्रयोगों के सौन्दर्य को देखते हुए जयशंकर प्रसाद ने गीतिका की परिचयोंक्ति मे माना है -- 'गीतिका हिन्दी के लिए सुन्दर उपहार है । उसके चित्रों की रेखाएँ पुष्ट, वर्णो का विकास भास्वर है । उनका दार्शनिक

पक्ष गंभीर और व्यंजना मूर्तिमती है ।'

4. **अनामिका (नूतन अंक)** : हाँलाकि दूधनाथ सिंह ने 'अनामिका' के द्वितीय खण्ड को निराला का तीसरा काव्य संग्रह माना है परन्तु प्रकाशन काल की दृष्टि से अनामिका को निराला का चौथा काव्य-ग्रन्थ माना जा सकता है । अनामिका का प्रकाशन 1937 में हुआ जिसमें कुल 53 कविताओं का संकलन है । संबोध शैली की कविताओं के अतिरिक्त अनामिका में विभिन्न गीत एवं छन्दमुक्त कविताओं के दर्शन होते हैं । संग्रह में, राम की शक्ति पूजा, मित्र के प्रति, सरोज-स्मृति, फिर सितार सँवार लो, उक्ति, वसन्त की परी के प्रति, वारिद-वंदना, वन बेला, तोड़ती पत्थर, वे किसान की नई बहू की आँखे, मरण-दृश्य, हताशा, ठूँठ, प्रेयसी, रेखा, खण्डहर के प्रति, कविता के प्रति आदि अनेक कविताओं एवं गीतों का संकलन है । अनामिका के कविताओं को कुछ विद्वानों ने कामायनी के समकक्ष माना है तो कुछ का मानना है कि -- 'संपूर्ण निराला अनामिका में देखे जा सकते हैं ।'[15]

5. **तुलसीदास** : 1938 में प्रकाशित 'तुलसीदास' निराला की श्रेष्ठतम कृतियों में गिनी जाती है । तुकान्त छन्दों के इस आख्यानपरक काव्य को निराला ने बैलेड छन्द में रचित माना है । 'तुलसीदास' को डॉ. धनंजय वर्मा ने महाकाव्योचित मानते हुए लिखा है --

'तुलसीदास में भारतीय काव्यों की उपलब्धि के दर्शन होते हैं..... शैली महाकाव्योचित और असाधारण महत् है...।'[16]

6. **कुकुरमुत्ता** : यह एक व्यंग्यकाव्य है जिसका प्रकाशन 1942 को माना जाता है । इस काव्य में कवि यथार्थवादी एवं प्रगतिवादी दृष्टिकोण अपनाया है तथा समाज के विभिन्न पक्षों पर तीक्ष्ण व्यंग्य किए हैं । नये पते संग्रह की सात कविताएँ जैसे गर्म पकौड़ी, प्रेम संगीत, रानी और कानी, खजोहरा, स्फटिकशिला और मास्को डायलाग्स जैसी कविताएँ प्रारम्भ में इसमें संग्रहित थी ।

7. **अणिमा** : 1943 में प्रकाशित 'अणिमा' संग्रह में कुल 45 गीत हैं जिसमें निराला के व्यक्तित्व के अनेक रूपों की अभिव्यक्ति मिलती है पर मूलतः इन गीतों में करुणा एवं विषाद का स्वर ही मुखरित रहा है । इसमें, स्नेह-निर्झर बह गया है, मैं अकेला, चूँकि यहाँ दाना है, सड़क के किनारे दुकान, यह है बाजार, स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज, भगवान बुद्ध के प्रति आदि अनेक कृतियों के अतिरिक्त कुछ भाव-विह्वल प्रार्थना गीत भी हैं ।

8. **बेला** : 1946 में प्रकाशित 'बेला' में कुल 95 प्रगीतों एवं गज़लों का संकलन है । इसमें अधिकतर उर्दू छन्दों एवं शब्दावलियों का प्रयोग हुआ है । अधिकतर साधारण किन्तु सशक्त भाषा में रची जाने के कारण यह साहित्य में विशेष स्थान रखती है ।

9. **नये पत्ते** : 'नये पत्ते' काव्य संग्रह में प्रगतिवादी स्वर मुखारित हुआ है, साथ ही हमें मार्क्सवादी चिंतन की झलक भी देखने को मिल जाती है । 1946 में प्रकाशित 28 कविताओं के इस संग्रह में डिप्टी साहब आए, मंहगू मंहगा रहा, झींगुर डट कर बोला जैसे अनेक कविताओं का संकलन है जिनमें विभिन्न मतवादों का डँटकर विरोध हुआ है ।

10. **अर्चना** : 'अर्चना' के गीत प्रार्थनापरक हैं । इसका प्रकाशन काल 1950 है और इसमें कुल 112 भावगीत है । 'अर्चना निराला के प्रपत्ति-भाव के श्रेष्ठतम गीतों का संकलन है ।'[17]

11. **आराधना** : 'अर्चना' के समान ही 'आराधना' के भाव-गीतों का स्वर भी प्रर्थना एवं भक्तिपरक है । इसमें लगभग 96 गीत हैं जिनका प्रकाशन 1953 में हुआ । इन गीतों में लयात्मक प्रवृत्ति के साथ ही कुछ असहज शब्दों का प्रयोग भी हुआ है ।

12. **गीतगुंज** : 26 गीतों के इस संग्रह का प्रकाशन 1954 में माना जाता है । इन गीतों में 7गीत पुराने काव्य-संग्रहों में भी संकलित हैं। अर्चना एवं आराधना के समान गीतगुंज भी लघुगीतों का संग्रह है जिसमें प्रकृतिपरक रचनाओं के साथ लोकमंगल की रचनाएँ भी हैं ।

13. **संध्या काकली** : 1969 में प्रकाशित इसमें कुल 78 कविताएँ हैं जिनमें 25 कविताएँ गीतगुंज से ली गई हैं । विषयवैविध्य के कारण इसमें निराला के सम्पूर्ण साहित्य की झलक देखने को मिल जाती है । जहाँ एक ओर प्राकृतिकपरक, प्रेमपरक, यथार्थपरक और आध्यात्मिक कविताओं का संकलन है वहीं दूसरी ओर इसमें संस्कृत काव्यों की झलक देखने को मिलती है ।

निराला स्वतंत्र स्वभाव के कवि थे । इसलिए उनकी कविताओं का वर्गीकरण कठिन कार्य है । किन्तु यहाँ कुछ प्रवृत्तियों के आधार पर उनकी कविताओं का वर्गीकरण करने का प्रयास किया गया है । अन्य कवियों के समान निराला के कविताओं की निश्चित शुरुआत एवं अंत नहीं है, बल्कि एक अनन्त प्रक्रिया का अवलोकन होता है । दूधनाथ सिंह के अनुसार -- 'निराला की काव्यात्मक उपलब्धि उनकी शुरूआतों का कहीं अन्त न होना ही है । उनकी कविता का सहज-सचेत अन्त कहीं नहीं होता । वह लगातार अपनी अर्थ-छवियों और अपने 'मौन-मधु से पाठक को आन्दोलित करती चलती है और सर्वथा नये असन्तोष का सृजन करती है । इस रूप में निराला का कहीं भी अन्त नहीं होता । उनकी रचनात्मकता का कोई अन्तिम पूर्ण विराम नहीं है ।'[18]

काज़ी नज़रुल इस्लाम का जीवन-वृत्त

काज़ी नज़रुल इस्लाम का जन्म वर्धमान जिले के आसानसोल महकुमार जामुरिया थाना के चुरुलिया गाँव में 1306 साल 11 वीं ज्येष्ठ, मंगलवार, तदनुसार 24 मई 1899 ई. को हुआ । उनके पिता फकीर अहमद और माता जाहेदा खातून थी । नज़रुल के पूर्वपुरुष पटना के अंतर्गत हाजीपुर के अधिवासी थे । उनके पितामह काज़ी अमीनुल्लाह और मातामह मुन्शी तोफायल अली थीं । काज़ी फकीर अहमद ने दो विवाह किये जिससे उन्हें

कुल सात संतानों की प्राप्ति हुई । उनकी द्वितीय स्त्री से ही नज़रुल ने जन्म ग्रहण किया पूर्व चारों संतानों की अकाल मृत्यु से नज़रुल के बचपन का नाम 'दुःखूमिया' रख दिया गया । दारिद्र्य नज़रुल के बचपन का साथी था । चुरुलिया गाँव के राजा नरोत्तम सिंह थे । यहीं पर पीरपुकुर के पास नज़रुल ने एक मिट्‌टी के घर में जन्म लिया । परन्तु नज़रुल के पूर्वपुरुष दरिद्र न थे । वे पटना के अधिवासी थे । मुगल सम्राट शाहआलम के समय वे हाजीपुर से चुरुलिया आ गए । बचपन में नज़रुल को 'दुःखूमियाँ' के अतिरिक्त 'ताराखेपा' और 'नज़र अली' के नाम से भी अमिहित किया जाता था । 'दुःखूमिया' के जीवन में चाहे और किसी भी चीज़ का अभाव हुआ हो पर दुःख का अभाव कभी नहीं हुआ ।

1314 के 7 तिथि के चैत्र महीने अर्थात 1908 ई. में नज़रुल को नौ वर्ष का पितृहीन बालक होना पड़ा । पिता की मृत्यु से आर्थिक विपन्नता का प्रखर तम को झेलते हुये नज़रुल को अपनी पढ़ाई छोड़नी पड़ी । 1909 ई. में मात्र दस वर्ष की अवस्था में नज़रुल ने गाँव के मक्तब से निम्न प्राइमरी की परीक्षा उत्तीर्ण की तथा उसी मक्तब के साथ-साथ हाज़ी पहलवान के मज़ार और पीरपुकुर के मस्जिद में वे आर्थिक विपन्नता को दूर करने के लिए काम करने लगे । यहीं से नज़रुल ने सामाजिक रीतियों, आचार-अनुष्ठानों आदि का संस्कार ग्रहण करना प्रारम्भ किया । बाल्यकाल में नज़रुल अत्यंत चंचल स्वभाव के थे । परन्तु उनकी मेधाशक्ति और बुद्धि भी उतनी ही प्रखर थी । इसी कारण उनकी ज्ञानपिपासा विद्यालय तक ही सीमित नहीं थी । चाहे कहीं कीर्तन हो या यात्रागान, मौलवी का कुरान पाठ हो या फिर सूफी दरवेशों और साधु-सन्यासियों का सत्संग, हर जगह नज़रुल उपस्थित हो जाते और मनयोग से उनकी बातें सुनते । नज़रुल ने फ़रसी की शिक्षा चुरुलिया के एक मकान में काजी फ़जले अहमद से ली । उन्हीं के

साहचर्य से नज़रूल अरबी-फ़ारसी और उर्दू मिश्रित काव्य की श्रृष्टि करते । एक उदाहरण दृष्टव्य है --

'मेरा दिल बेताव किया तेरी आबरू-ए-कमान

जला जाता है हाय इश्क में जान परेशान ।'

परन्तु यह नज़रुल की पहली कविता नहीं । शैलजानन्द के अनुसार उनकी पहली कविता 'राजार गढ़' है ।[20] '12-13 वर्ष की छोटी-सी उम्र में नज़रूल गाँव के लेटो नाच-गान और नाटक दल में प्रविष्ट हुये । अनवरूल इस्लाम के अनुसार-- 'घर की स्थिति अच्छी नहीं थी इसीलिये नज़रूल इन सब लेटो दल में गान एवं नाटक रचना कर अर्थोपार्जन करते थे ।[21] उनहोंने इस छोटी सी उम्र में 'चासार संग', 'मेघनाद-वध', 'शकुनि-वध', 'दाता-कर्ण', 'राजपुत्र', 'अकबर बादशाह' आदि आख्यानमूलक नाटकों की रचना की थी ।

अकस्मात नज़रुल ने गाँव त्याग किया और वर्धमान जिले के मैथरून हाइस्कूल में पढ़ने लगे । पर यहाँ भी उनका मन ज्यादा दिन न लगा और उन्होंने स्कूल जाना बंद कर दिया । उनका फक्कड़ मन कभी पाला गान लिखता, उनके सुर बनाता या फिर कभी ढोलक बज़ाकर मस्तमौला सूफियों की तरह गाने लगता । ऐसे ही एक अवसर पर नज़रुल को गाते देखकर एक बंगाली इसाई गार्डसाहब ने उनहें बावर्ची की नौकरी दे दी । कुछ दिनों में नज़रुल ने यह नौकरी छोड़कर अब्दुल वाहिद के रोटी के दुकान में पाँच रुपए मासिक के वेतन पर नौकरी कर ली । मयमनसिंह जिला के त्रिशाल थाना के अंतर्गत काज़ी-शिमला गाँव में रहने वाले दारोगा काज़ी रफीजुद्दीन अहमद ने नज़रुल की कुशाग्र बुद्धि का परिचय पाकर उसे दरिदामपुर हाईस्कूल में कक्षा सात में भर्ती किया । यहाँ नज़रुल अपने चंचल स्वभाव के वशीभूत होकर पुनः 1914 ई. के दिसम्बर महीने में किसी

को बिना कुछ कहे वहाँ से चले गये । 1915 ई. में नज़रुल अपनी ही इच्छा से रानीगंज में सियारसोल राज हाईस्कूल में अष्टम श्रेणी में भर्ती हुये । यहाँ वे तीन साल तक रहे । उन्हें राजबाड़ी से सात रुपये मासिक छात्रवृत्ति भी प्राप्त होता था । इसी स्कूल में नियुक्त हफिज़ नूरुन्नवी ने नज़रुल की प्रतिभा को पहचान उसे फारसी भाषा की शिक्षा दी । यहीं नज़रुल ने फारसी साहित्य को पहली बार जाना ।

नज़रुल के जीवन का एक नूतन अध्याय तब प्रारम्भ हुआ जब उन्होंने 1917 ई. में 49 नं. बंगाली पलटन में सैनिक रूप में योगदान किया । इस घटना के संबंध में शैलजानन्द लिखते हैं --

'परीक्षा देकर दोनों चुपचाप आसनसोल भाग गए । वहाँ से एस-डी उनकी चिट्ठी लेकर सीधे कलकत्ता ... ।'[22]

नज़रुल का सैनिक जीवन 1917 से 1919 ई. तक था । 49 बंगाली पल्टन में नज़रुल एक साधारण सैनिक थे पर बाद में वे इसी पलटन के क्वाटर मास्टर हवलदार के पद में उन्नत हुये । यहीं वे एक पंजाबी मौलवी से मिले और यहीं उन्होंने विख्यात फारसी कवियों के काव्यपाठ का सुयोग ग्रहण किया । नज़रुल का काव्य-संस्कार फौजी परिवेश में जन्मा था । इसी कारण उनकी संघर्ष-चेतना-अभिव्यक्ति अपने पहले और बाद के कवियों से अधिक सशक्त थी । युद्ध स्थल से अवकाश मिलते ही वे अध्ययन, मनन एवं साहित्य चिन्तन में डूब जाते । 1919 ई. में युद्ध की समाप्ति होने से मार्च 1920 में 49 नम्बर बंगाली पल्टन भंग हो गई । इससे नज़रुल को साहित्य सेवा का सुअवसर प्राप्त हुआ । मुज़फ्फर अहमद साहब ने उन्हें साहित्य से जुड़ने की प्रेरणा दी और नज़रुल ने सदा के लिए साहित्य-सेवा का व्रत धारण किया । 1920 में ही 'मुक्ति' नामक पत्रिका में नज़रुल की पहली कविता - 'बाउंडूलेर आत्मकहानी' छपी । 'मुस्लिम भारत पत्रिका में

नज़रुल एक नियमित लेखक बन गए और इसी पत्रिका में बाँधनहारा' नामक उपन्यास का प्रकाशन आरम्भ करवाया । इसके अतिरिक्त उनकी 'बोधन और शायरी', 'शातिल अरब', 'बादल प्रांतेर शराब', 'खेया पारेर तरणि' नामक काव्य रचनाएँ भी इस पत्रिका में छपने लगी ।

उनकी रचनाएँ मूलतः साधरण जन-जीवन के विषय में थी । 22 वर्ष की अवस्था में नज़रुल ने एक ऐसी कविता की जिससे उनकी ख्याति अपने चरम सीमा पर पहुँच गई । यह कविता थी 6 जनवरी 1922 को प्रकाशित उनकी 'विद्रोही' कविता । इन्हीं दिनों नज़रुल ने एक नई पत्रिका 'नवयुग' का संपादन भी किया । शीघ्र ही वे बेहतरीन संपादकों में भी गिने जाने लगे । 'उड़ाओं-उड़ाओं लाल निशान' जैसे कविताओं की रचना कर वे बंगाल की कम्युनिस्ट पार्टी के प्रवर्तकों में शामिल हो गए । कम्युनिस्ट पार्टी के प्रतिष्ठाता मुजफ्फर अहमद के संपर्क में आने पर उनमें जनवादी स्वर, एवं देश-भक्ति की भावना मुखारित होने लगी । नज़रुल ने कुछ दिनों तक 'दैनिक सेवक' के संपादकीय विभाग में भी कार्य किया । 1922 में ही उन्होंने अर्द्धसाप्ताहिक पत्र 'धूमकेतू' का प्रकाशन किया । 1921 ई. में त्रिपुरा के दौलतपुर ग्राम के निवासी अली अकबर खान से उनकी मित्रता हो गई । उनकी बहन की बेटी नर्गिस पर नज़रूल अनुरक्त हुए और एक कविता- 'नीलपरी' की रचना की । 1921 के 17 जून शुक्रवार को नर्गिस एवं नज़रूल के विवाह की बात पक्की हो गई । परन्तु किसी कारणवश अगले दिन प्रातः ही वे सदा के लिए इस रिश्ते को ठुकरा कर चले गये ।

नज़रुल पुनः साहित्य सेवा में लीन हो गए । उन्होंने अंग्रेजी शासन व्यवस्था के खिलाफ खुलकर आवाज़ उठाई । 26 सितम्बर 1922 में उन्होंने 'आनन्दमयीर आगमने' नामक कविता की रचना की जिससे उन्हें कारावास में जाना पड़ा । यहाँ की विषम

परिस्थितियों के विरोध में नज़रुल ने 39 दिन का अन्शन भी किया । अंततः अंग्रेज़ सरकार को ही झुकना पड़ा तथा उन्हें 1923 के 15 दिसम्बर को जेल से मुक्त कर दिया गया । जेल से मुक्ति के पश्चात मिदनापुर में उनके लिए चार दिनों का अधिवेशन रखा गया जिसमें देश के अनेक महान हस्तियों ने भाग लिया । इन्ही दिनों 1924 में नज़रुल ने 'भांगार गान' नाम कविता लिखी ।

इन दिनों नज़रुल सेनगुप्त परिवार के साथ मेलजोल बढ़ाने लगे । श्रीमती बिरजासुंदरी देवी को वे अपनी माँ का दर्जा देते थे । उनकी बेटी प्रमिला सेनगुपता से 24 अप्रैल 1924 ई. को नज़रुल का विवाह सम्पन्न हुआ । परन्तु आर्थिक विपन्नता ने कई कठिनाइयों को जन्म दिया । इसी तरह जीवन के तिक्त अनुभवों को सहते हुए 1926 में नज़रूल ने कृष्णगढ़ की ओर प्रस्थान किया । इस बीच वे साहित्यिक सेवा में लीन रहे । 1929 में उन्होंने अखिल भारतीय मज़दूर और कृषकदल के सम्मेलन में भी भाग लिया । अपने कई भाषाणों में उन्होंने मानवी-भेद-भावों का विरोध भी किया । 'साम्यवादी' और 'सर्वहारा' जैसी रचनाओं डॉ. बांधन सेनगुप्त के अनुसार - 'ढ़ोंगी, कपटी, समाज सुधारकों को उन्होंने तलवार रूपी कलम की नुकीली धार से बेनकाब कर दिया ।'

धनसंपदा का अभाव होते हुए भी नज़रुल ने साहित्य सेवा को त्यक्त नहीं किया बल्कि प्रलयशिखा, मृत्युक्षुधा, फणिमनसा, भांगारगान, धूमकेतु, लांगल, नवयुग, विषेर बाँशी आदि रचनाओं की रचना की । उन्होंने कई व्यंग्य प्रधान गीतों की रचना भी की । वस्तुतः 'नज़रुल काव्य की तुलना में नज़रुल गीति का प्रयोग अंग्रेजों के विरूद्ध आंदोलन की घोषणा में, अधिक कामयाब सिद्ध हुआ ।'[23]

नज़रुल के जीवन में 1930 को अकस्मात एक ऐसी घटना घटी जिसमें उनके जीवन में झंझावात का संचार किया । यह घटना थी उनके चार वर्षीय पुत्र बुलबुल की

मृत्यु । एक बर उनके पुत्र बुलबुल ने उनसे कुछ कहना चाहा । नज़रुल काम में मग्न थे । इसलिये उसे गुस्से में कहा 'चले जाओं यहाँ से ।' दूसरे दिन बुलबुल को तेज ज्वर के साथ चेचक हो गया । पैसा न होने के कारण वे एक पीर के पास गये ताकि वे झाड़-फूँक कर चेचक उतार सके । परन्तु सब व्यर्थ हो गया । बुलबुल को गाड़ी में चढ़कर शहर घूमने का शौक था । नज़रुल ने उसके शव को उठाया तथा एक गाड़ी में बिना किसी को सत्य बताये शहर घूमने चले गये । उनके पास बुलबुल के लिये कफ़न खरीदने के पैसे भी नहीं थे । प्रकाशन महोदय के पास कुछ पैसों की व्यवस्था करने गये तो उन्होंने कहा कि दो एक कविताएँ लिखकर दे दो और पैसे ले जाओ । ऐसी विकट परिस्थिति में मनुष्य की स्वार्थपरायणता के नंगे नाच ने नज़रुल को विचलित कर दिया । वहीं से वे कुछ खोये-खोये से रहने लगे । बुलबुल की मृत्यु के बाद नज़रुल उसे एक बार देखना चाहते थे । इसके लिये वे कई लोगों से मिले । वरदा कान्त मजुमदार से उनहेंने तन्त्र विद्या भी सीखी । 'बरदाचरण की योगशक्ति के प्रभाव से नज़रुल अपने मृतपुत्र को एक बार स्थूल देह में देख सके ।'[24] उनकी एक कविता में उल्लेख मिलता है कि उनहोंने बुलबुल को देखा । देखा बुलबुल उनके चारों ओर प्रदक्षिणा कर रहा था । इस घटना से नज़रूल आध्यात्म की ओर मुखरित हो गए । तत्पश्चात वे संगीत जगत से जुड़ गये । 1934 में वे कलकत्ता बेतार विभाग के संगीत शिक्षक नियुक्त हुए । बाद में एच.एम.वी. के ट्रेनर के पद पर कार्यरत हुए । इस पद पर रहते हुए उन्होंने विपुल संगीत सृष्टि की ।

1939 ई. में नज़रूल ने सिनेमा में भी पदार्पण किया साँपुड़े नामक सिनेमा के माध्यम से । 1941 ई. में उन्होंने बंगीय मुसलमान साहित्य परिषद में कहा 'यदि मेरी बंसी और न बजे तो मुझे क्षमा कीजिएगा । शायद उन्हें अपने भविष्य का पूर्वाभास हो गया था । 10 जुलाई 1942 में रेडियो में कार्यक्रम प्रारम्भ होने से पहले ही उनकी वाणी सदा के

लिए अवरुद्ध हो गई । उसके बाद उनके कण्ठ के अवाज़ को किसी ने नही सुना । 27 जून 1952 को 'नज़रुल निरामय समिति' का गठन हुआ और इस समिति ने 10 मई 1953 को नज़रुल एवं उनकी पत्नी को चिकित्सा के लिए लदन भेज दिया गया । परन्तु वहॉ उपचार न होने के कारण 14 दिसम्बर 1953 को पुनः कलकत्ता लौट आए । 1960 मे उनकी साहित्यिक सेवाओ के कारण भारत सरकार ने उन्हे 'पद्मविभूषण' की उपाधि से सम्मानित किया । 1962 ई. के 30 जून को नज़रुल ने अपनी पत्नी को खो दिया । 1972 ई. मे उन्हे ससम्मान बंग्लादेश की नागरिकता से विभूषित किया गया तथा 1975 को बांग्लादेश के सर्वोत्तम साहित्यिक पुरस्कार 'एकूशी पदक' से सम्मानित किया गया । 29 अगस्त 1976 को सुबह 10 बजे उन्होने अपना पार्थिव देह त्याग दिया ।

जीवन के संघर्षो को सहते हुए नज़रुल ने साहित्य को अजस्र अमूल्य संपदा से संपन्न किया । उनके जीवन की ओर दृष्टिपात करने पर यह ज्ञात होता है कि उनका जीवन किसी झंझावात से कम न था । जीवन के संघर्षो को झेलते हुए भी कवि ने इतनी रचनाएँ की हैं कि पूरे विश्व साहित्य मे इतनी रचनाएँ किसी कवि की नही मिलती । उनका व्यक्तित्व अगणित मंणिकांचनो की तरह सदा प्रदीप्तमान रहेगा । अब्दुल अजीज अल अमान उनके व्यक्तित्व के विषय मे लिखते हैं --

'हास्यप्रिय एवं विशाल ह्रदय नज़रुल मे मनुष्यो को आकर्षित करने की एक अद्‌भुत शक्ति थी । इस कारण वे जहॉ भी जाते वही जनसमूह उन्हे घेर लेता , उस जनसमूह का प्राणकेन्द्र नज़रुल होते । काजी कवि की सुगठित देह, अपरिमित स्वास्थ्य, उन्मुक्त हास्य एवं सर्वोपरि उदात्त कण्ठ का संगीत -- ये सब समवयस्को के आकर्षण की वस्तुऍ उनके पास थी ।'[25]

निष्कर्षतः - नज़रुल मात्र एक साहित्यकार ही नहीं थे अपितु एक सच्चे देशभक्त एवं इंसान थे । मानवता से प्रेम ही उनका अंतिम ध्येय था । उन्होंने देशवासियों को गुलामी की अंधकारमय बेड़ियों को तोड़कर प्रकाश की अनुपम आभा की ओर मुखरित होना सिखाया । जहाँ तरुण वर्ग के लोग नज़रुल की कविताओं को सुनकर रक्तरंजित मुखाभा से परिपूर्ण हो उठते थे वहीं देश के दलित एवं दरिद्र वर्ग के लोग उनके विशाल हृदय की छत्रछाया में कृतार्थ हो उठते थे । धार्मिक सौहार्द की भावना को नज़रुल ने मात्र कविताओं में ही स्थापित नहीं किया बल्कि अपने जीवन में भी चरितार्थ किया । बहुमुखी प्रतिभा के धनी इस कवि को अपने जीवन के अधिकतर साल कष्ट में काटना पड़ा । जब उन्हें अनेक सम्मानों से सम्मानित किया जा रहा तब वे मानसिक रूप से विक्षिप्त हो चुके थे । स्वस्थ अवस्था में उन्होंने एक कविता में लिखा था -- 'मस्जिद के पास ही, मुझे कब्र देना भाई' -
अतः ढाका विश्वविद्यालय के हरे-भरे प्रांगण में उन्हें मस्जिद के पास ही मरणोपरान्त दफनाया गया ।

नज़रुल : क्रमिक रचनात्मक विकास

सृजनधर्मिता नज़रुल के रग-रग में बाल्यकाल से ही व्याप्त थी । 1910 ई. में ग्यारह वर्ष की अवस्था में ही उन्होंने बंगाल के 'लेटोनाच दल' में सम्मिलित होकर अनेक पाला गानों की रचना की । वैसे काव्य-रचना का आरम्भ 8 वर्ष की अवस्था में ही हो चुका था । घोंसले से गिरे हुए पक्षी शावक की व्यथा से उद्‌भूत हुई उनकी प्रथम कविता --

'मस्त बड़ो दालान बाड़ीर उई लागा ए कड़िर फांके ।'

लेटो नाच दल में उन्हें अपनी प्रतिभा को सँवारने का अवसर प्राप्त हुआ । यहाँ वे आँचलिक लोकसंस्कृति से प्रभावित हुये और उन्होंने कई रचनाएँ की जैसे - दाता कर्ण,

'शकुनि वध', 'राजपुत्र', मेघनाद वध' और 'अकबर बादशाह' आदि ।

नज़रुल बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे । उनहोंने कई नाटकों, गीतों, कविताओं उपन्यासों आदि की रचना की । कहा जाता है कि उनहोंने तीन हज़ार से अधिक गीतियों की रचना की । विभिन्न विद्वानों ने इस विषय में भिन्न-भिन्न मत दिये हैं । कोई उनके गीतियों की संख्या 3000 से अधिक मानते हैं तो कोई उनके गीतों की संख्या पाँच हजार तक ले जाते है । नज़रुल गीति अखण्ड (अ) में उनके गीतों की संख्या तीन हजार बताई गई है --

'.......... कवि ने अनुमानतः तीन हज़ार गीतियों की रचना की है ।'[26] 'नज़रुल चरितमानस' में भी नज़रुल के गीतों की संख्या तीन हज़ार से भी अधिक मानी गई है --'सुना जाता है नज़रुल सर्वसम्मति से तीन हज़ार से अधिक संगीतों के रचनाकार हैं ।' संख्या चाहे जितनी भी हो, पर यह तथ्य स्पष्ट है कि नज़रुल ने असंख्य गीतियों की रचना की और इन गीतियों की संख्या रविन्द्रनाथ के गीतियों की संख्या से अधिक है । 'वर्तमान गीतिवितान के सूची के अनुसार रविन्द्रनाथ के गानों की संख्या 2219 है।'[28] नज़रुल के गीतों की संख्या के अनिश्चत होने के पीछे एक कारण है -- प्रबल आवेग में नज़रुल ने दोनों हाथों से जिस प्रकार, गीत-सृष्टि की है, उससे अधिक प्रबलतर आवेग में उन्होंने उन रचनाओं को दोनों हाथों से ध्वस्त किया है । अपनी रचनाओं की इतनी अवहेलना शायद ही किसी अन्य साहित्यकार ने की हो । 1919 ई. में 'सौगात नामक पत्रिका में उनकी प्रथम कहानी 'बाउन्डेलेर आत्मकहानी' छपी । 'मुक्ति' उनकी पहली कविता है जो 'बंगीय मुसलमान साहित्य-पत्रिका' में प्रकाशित हुई । और यहीं से शुरू हुआ रचना सृष्टि का क्रम विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लिखने के पश्चात भी नज़रुल को तृप्ति नहीं मिली । इसलिये स्वाधीन रूप से अपनी बात कहने के लिये उन्होंने 'धूमकेतू' नामक एक

अर्ध-साप्ताहिक पत्रिका प्रकाशित की । 1922 ई. के 11 अगस्त को विश्व-कवि रविन्द्रनाथ के आशीर्वाणी से यह पत्रिका प्रकाशित हुई --

'आय चले आय रे धूमकेतू,
आँधारे बाँध अग्नि-सेतू
दुदिनरे एई दुर्ग-शिरे
उड़िये दे तोर विजय-केतन ।'

अर्थात्, धूमकेतू तुम आओ और अग्नि रूपी सेतु बाँधकर दुर्दिन के इस शिखर पर अपना विजय पताका लहरा दो । नज़रुल बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे । साहित्यसृजन के साथ-साथ वे गाते और वाद्य-यंत्र बजाते थे । उन्होंने कई कविताओं के साथ कई कहानी, नाटक, प्रबन्ध एवं संगीत ग्रन्थावली की भी रचना की ।

कविता :

(1) अग्निवीणा : अग्निवीणा नज़रुल का प्रथम काव्य संग्रह है । इसका प्रकाशन 7 नम्बर प्रताप चाट्ज्य लेन, कलकत्ता में 1922 ई. के अक्टूबर महीने (कार्तिक 1329) में हुआ । कुल 12 कविताओं का यह संग्रह, प्रलयोल्लास, विद्रोही, रक्ताम्बरधारिनी मा, आगमनी, धूमकेतू, कमाल पाशा, आनेयार, रनभेरी, शात् इल-अरब, खेया पारेर तरनी, कोरबानी और मोहर्रम जैसी सशक्त रचनाएँ हैं। 'अग्निवीणा' की प्रत्येक रचना पाठक के मन को आंदोलित करने की क्षमता रखती है । अग्नि की प्रचंड शिखा इसके प्रत्येक पन्ने पर देदिप्तमान है । बर्लिन विश्वविद्यालय के अध्यापक डॉ. हेलमूथ फन ग्लासेनप इस रचना के विषय में लिखते हैं -- 'The poems deserve with full right the name the author has given them they are full of emotion like fire and sweet like the time of vina'.[29]

(2) दोलन चाँपा : आश्विन महीने के संवत् 1330 तद्अनुसार 1923 ई. मे प्रकाशित दोलन चॉपा काव्य ग्रंथ की कविताऍ मूलतः रोमांटिक प्रवृत्ति की कविताऍ हैं । 19 कवताओ के इस समूह मे दोदूल दूल, बेला शेसे, पऊस, पथहारा व्यथा गरब, उपेक्षित, समर्पन, पूवेर घातक, अबेलार डाक, चपल-साथी, पुजारिनी, आशान्विता, अभिशाप, पिछू-डाक, मूखरा, साधेर भिखारिनी, कविरानी, आशा एवं शेष प्रार्थना जैसी उत्कृष्ट रचनाऍ हैं ।

(3) बिसेर बॉसी : 1924 मे प्रकाशित इस काव्यग्रंथ मे कुल 26 कविताऍ हैं । इस संग्रह मे विद्रोह का स्वर मुखर है । विद्रोहात्मक कविताओ के होने से इस संग्रह को ब्रिटिश सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया । यह पुस्तक विभिन्न पत्रिकाओ मे प्रकाशित कुछ उद्दीपनामूलक कविताओ एवं गीतो की समष्टि है । पराधीनता की ग्लानि मे जब सम्पूर्ण देश उदासीन था तब इस संग्रह ने मानव मन को आंदोलित किया था । इसमे फातिहा-ई-दोयाजदहम, आबिर्भाव ओ तिरोभाव, सेवक, जागृति, तूर्यनिनाद, बोधन, उद्बोधन, अभयमन्त्र, आत्मशक्ति, मरन-बरन, बन्दीबन्दना, बन्दना गान, मुक्ति सेवकेर गान, शिकल-परार गान, मुक्तबन्दी, युगान्तरेर गान, चरकार गान, जातेरनामे बज्जाति, सत्यमन्त्र, बिजय गान, पागल पथिक, भूत भागानोर गान, विद्रोहीर वाणी, अभिशाप, मुक्त-पिन्जर, झड़ आदि रचनाऍ हैं ।

(4) भाङार गान : 1934 ई. मे प्रकाशित इस उद्दीपनामूलक काव्य ग्रंथ मे कुल 11 कविताऍ हैं । जागरनी, मिलन गान, पूर्ण अभिनन्दन, झेड़ो गान, मोहान्तेर मोह अन्तेर गान, आशु प्रयाण गीति, दुःशासनेर रक्तपान, ल्यवेन्डिस बाहिनीर विजातीय संगीत, सूपार वन्दना, सहीदी ईद इत्यादि रचनाऍ इसमे संग्रहित है ।

(5) छायानट : इसमे विजयिनी, कमल-कॉटा, चैती-हाओया, वेदना अभिमान निशीथ प्रीतम

अबेलाय, हार माना हार, लक्ष्मी धड़ा, शेषेर नाव, निरूद्देशेर यात्री, चिरन्तनी प्रिया, वेदना मीन, परश पूजा, अनादृता शायक बेंधा पाखी, हारामनि, नीलपरी, स्नेहभीतू, पलातका, चिरशिशु, मानस-वधू, दहन माला, विदाय-बेलाय, अकरुन पिया, व्यथा निशीथ, सन्ध्यातारा, दूरेर-बन्धु, आशा, मरमी, मक्तिबार, आपन-पियासी, बिनागिनी, प्रतिवेशिनी, दूपूर-अभिसार, छल-कुमारी, पापई खोला, विधुरा पथिक प्रिया, मनेर मानूस, प्रियार रूप, बादल दिने, कार बाँशी बाजिलो, अ-केजोर गान, सप्त बादल, चाँद मूकूर, चिरचेना, पाहाड़ी गान, अमर कानन, पूवेर हाउया, आलता स्मृति, रोद्रदग्धर गान आदि 51 प्रेमगीत संकलित है । संभवतः इस संग्रह का प्रकाशन 1925 ई. में हुआ था ।

(6) पूबेर हाओया : सन् 1925 ई. में एक और काव्य संग्रह प्रकाशित हुआ जिसकी 37 कविताओं में से 25 कविताएँ छायानट से ली गई हैं । यह कविताएँ कवि के विरहविधुर मन का आलेख हैं । इसमें मरमी, अवसर, निकटे, मानिनी, आशा, वेदना-मानिक, वेदनहारा, निरूद्देशेर यात्री, पथिक-शिशु, स्नेह-ऋणी, होली, बे-शरम, सोहाग, शराबन तहुरा, दूपूर-अभिसार, दहम-माला आदि अनेक रचनाएँ हैं ।

(7) साम्यवादी : 1925 ई. में ही प्रकाशित यह एक लम्बी कविता है । कुछ स्तरों में विभक्त इस कविता में साम्यवादी, ईश्वर, मनुष्य, पाप, चोर-डाकात, बाराङागना, मिथ्यावादी, नारी, राजाप्रजा, सम्य, कुली मजूर आदि उपर्शीषक समाहित हैं । यह कविता लाङल पत्रिका की प्रथम संख्या में प्रकाशित हुई । साम्यवादी कविता में सभी के एक समान होने की बात कही गई है ।

(8) चित्तनामा : देशबन्धु चित्तरंजन दास की मृत्यु पर कवि ने जो कविताएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित की उन्हीं की समष्ठि चित्तनामा में प्राप्त होती है । 1925 में

प्रकाशित इस काव्य-संग्रह मे अर्ध्य, अकाल सन्ध्या, सान्त्वना, इन्द्रपतन, राज भिखारी आदि 5 कविताएँ हैं ।

(9) सर्वहारा : सर्वहारा काव्य-संग्रह का प्रकाशन सन 1926 ई. मे हुआ इसमे कृषकेर गान, श्रमिकेर गान, धीवरेर गान, चोर-डकात, मिथ्यावादी, राजाप्रजा, साम्य, प्रर्थना, चासार गान, छाद पेटार गान, चीन ओ भारत, नारी, श्रीमान आब्दुल मोहित चौधूरी स्नेह्भाजनेसू आदि रचनाएँ सम्मिलित हैं ।

(10) फनिमनसा : सन् 1927 ई. मे प्रकाशित इस काव्य-संग्रह मे अधिकतर कविताएँ सामयिक घटना या व्यक्तिविशेष को लेकर लिखी गयी हैं । इसमे प्रवर्तकेर धूर चाकाय, या शत्रु परे परे, मुक्तिकाम, रक्त-पताकार गान, श्रमिक मजूर, जागस्तूर्य, अश्विनीकुमार, दिलदरदी, इन्दूप्रयान, सावधानी घन्टा, बॉग्लाय महात्मा, सत्येन्द्र प्रयान, हेमप्रभा, क्षुधित व्याघ्र, बिबागिनी, आशीर्वाद, देशबन्धु, दे दोल, सुरकुमार और युगेर आलो जैसी कविताएँ हैं ।

(11) सिन्धु-हिन्दोल : इसकी कविताएँ मूलतः प्रेममूलक हैं । 1927 मे प्रकाशित इस काव्य ग्रंथ मे गोपन प्रिया, अनामिका, विदाय स्मरने, पथेर स्मृति अभियान, राखीबन्धन, चॉदनी रात, माधवी प्रलाप, द्वारे बाजे झांझोरे पिजिर आदि कविताएँ संकलित हैं । इस संग्रह मे कुल 16 गीत समाहित है ।

(12) जिंजीर : इस काव्य संग्रह मे कुल 16 इस्लामी भावधारा से पूर्ण कविताएँ हैं । इसका प्रकाशन 1928 ई. मे हुआ ।

(13) संचिता : 1928 मे ही प्रकाशित इस काव्यग्रंथ मे अग्निवीणा, झिगेफूल सर्वहारा, फ़णिमनसा, छायानट, दोलेनचॉपा, सिन्धु-हिन्दोल और चित्तनाम काव्य ग्रन्थो से निर्वाचित कविताओ का संकलन हैं ।

(14) चक्रवाक : 1929 में प्रकाशित इस काव्य संग्रह में 21 कविताओं का संकलन है । इसकी अधिकांश कविताएँ प्रेम और विरह का स्वर लिये हुये है । कर्णफूली, पथचारी और हिंसातुर आदि इस संग्रह की कुछ उत्कृष्ट कविताएँ है ।

(15) संध्या : 'संध्या' का प्रकाशन भी 1929 ई. में हुआ । 23 कविताओं के इस संग्रह में राष्ट्र चेतना और विद्रोह का स्वर अवगुंठित है । 'पथेय', 'चल-चल' आदि 'मार्च' स्वरों के गान है ।

(16) प्रलयशिखा : प्रलयशिखा की कविताएँ भी क्रांति का स्वर लिये हुये है । इसका प्रकाशन काल 1930 ई. है और इसमें 20 कविताओं का संकलन है जिसमें 'शुद्रेरमाझे जगिधे रूद्र', 'विंशशताब्दी' और 'पूजा अभिनय आदि प्रमुख है ।

(17) नतून चाँद : नतून चाँद 17 कविताओं का संग्रह है । 1945 ई. में प्रकाशित इस संग्रह में 'चिरजन्मेर प्रिया', 'अभयसुन्दर', 'अश्रुपुष्पांजलि आदि विविध भाष्य की कविताएँ हैं ।

(18) मरूभास्कर : मरूभास्कर एक जीवनी काव्य है जिसके तीन सर्गों में हजरत मुहम्मद की जीवनी लिखी गई है । परन्तु 1957 में दुर्भाग्यवश पूरी न हो सका ।

(19) निर्झर : निर्झर का प्रकाशन 1938 में हुआ । 'अभिमानी', 'मुक्ति', 'चिठी' आदि कहानीमूलक काव्य हैं । अन्य अरबी छंद की कविताओं में 18 अरबी लघु छंद हैं । यह 17 कविताओं का संकलन है ।

(20) शेष सओगात : शेष 'सओगात' में कुल 42 कविताएँ हैं । इसका प्रकाशन 1958 में हुआ । 'जागो सैनिक आत्मा', 'नारी', 'हुल ओ फुल', 'आर कतो दिन' आदि कविताओं का स्वर मूलतः विद्रोहात्मक हैं ।

(21) झड़ : नज़रुल का अन्तिम काव्य संग्रह 'झड़' का प्रकाशन 1960 में हुआ । इसमें 20 कविताओं का संकलन है । इसमें मात्र 8 नई कविताएँ हैं और शेष पूर्व ग्रंथो से संकलित हैं । 'उठियाछे झड़', 'गदाइरर पदवृद्धि', 'साम्पानेर गान' आदी उत्कृष्ट कोटि की रचनाएँ हैं ।

संदर्भ :

1. निराला - रामविलास शर्मा - पृ. 2 प्र.सं.
2. गंगा प्रसाद पांडेय - महाप्राण निराला , पृ. 12
3. निराला की साहित्य साधना प्र. पृ 79
4. वर्तमान - मई-जून 2000, वसन्त का अग्रदूत - पृ. 22 अज्ञेय
5. निराला - रामरतन भटनागर - पृ. 43
6. निराला की साहित्य साधना - पृ. 456
7. आज (समाचार-पत्र) 1960, फरवरी 4
8. निराला आत्महन्ता आस्था - पृ. 25
9. निराला आत्महन्ता आस्था - पृ. 14
10. निराला आत्महन्ता आस्था - पृ. 15
11. निराला - अनामिका
12. निराला - आत्महन्ता आस्था - दूधनाथ सिंह, पृ. 18
13. निराला - आत्महन्ता आस्था - दूधनाथ सिंह, पृ. 21
14. निराला - आत्महन्ता आस्था - पृ. 21
15. निराला का काव्य - एक विश्लेषण - डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र
16. डॉ. धनंजय वर्मा - निराला काव्य और व्यक्तित्व, पृ. 172
17. निराला- आत्महन्ता आस्था - परिशिष्ट , पृ. 79
18 निराला - आत्महन्ता आस्था, पृ. 25
19. अब्दुल कादिर - कविर जीवन-कथा, पृ. 1 (बांग्ला)
20. शैलजानन्द मुखेपाध्याय - आमार बन्धू नज़रुल, पृ. 18
21. अनवरुल इस्लाम - नज़रुलेर बालयजीवन कविता, (कार्तिक-पौष), पृ. 34-35
22. अचिन्यकुमार सेनगुप्त - कल्लोल युग, पृ. 40
23. नजरुल विविध प्रसंग - डॉ. जलज भादुड़ी, पृ. 104
24. नलिनी कान्त सरकार - श्रद्धास्पदेषु, पृ. 70
25. नज़रुल परिक्रमा , पृ. 69
26. नज़रुल गीति अखण्ड (अ) - काज़ी नज़रुल इस्लाम, पृ. 14 (निवेदन), 'हरफ' प्रकाशन ।
27. नज़रुल चरितमानस - डॉ. सुशीलकुमार गुप्त, पृ. 308
28. नज़रुल गीति अखण्ड (अ)- काज़ी नज़रुल इस्लाम, पृ. 14 , 'हरफ' प्रकाशन ।
29. युगश्रष्टा नज़रुल - खान मुहम्मद मुइनुद्दीन, पृ. 204

तृतीय अध्याय

निराला और नज़रुल के गीतिकाव्यों का भावपक्ष

तृतीय अध्याय

निराला और नज़रुल के गीतिकाव्यों का भावपक्ष

प्रत्येक रचनाकार की रचना उसके सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं युगीन परिस्थितियों से प्रभावित होती है । भाषिक समानता न होने पर भी भिन्न-भिन्न भाषाओं के रचनाकारों की रचना युगीन परिस्थितियों के वशीभूत होने के कारण निश्चित बिन्दुओं पर समधर्मी होती है । दूसरे शब्दों में उनकी रचनाओं में भाषाई पार्थक्य होने पर भी भावसाम्य हो सकता है । यह कथन निराला एवं नज़रुल की रचनाओं के विषय में भी चरितार्थ होता है । दोनों रचनाकार समसामयिक थे, अतएव उनकी रचनाओं में संवेदनात्मक साम्य के साथ-साथ वैषम्य भी द्रष्टव्य है । कारण यह है कोई भी दो व्यक्ति मानसिक रूप से एक नहीं होते । उनके विचारों एवं भावों में कहीं न कहीं, कोई न कोई अंतर परिलक्षित होना स्वाभाविक है । यहाँ निराला एवं नज़रुल के गीतिकाव्य में प्रयुक्त भाव-साम्य एवं भाव-वैषम्य को उभारने की कोशिश की जा रही है ।

भाव वस्तुतः रचनाकार की संवेदनात्मक अनुभूति होती है । किसी रचनाकार के रचनात्मक व्यक्तित्व या संवेदनात्मक बनावट को जानना ही उसके रचनाओं में व्याप्त भाव को जानना है । वृहत् हिन्दी शब्दकोश में 'भाव' को परिभाषित करते हुए लिखा गया है -- 'चित्त में उत्पन्न होने वाला विकार हर्ष-शोकादि मनोविकार' । भाव की परिभाषा सपाट शब्दों में देते हुए यह भी लिखा गया है -- 'जो कुछ मन में सोचा जाय' [1] -- अर्थात भाव मानव हृदय में उत्पन्न होने वाले मनोविकार हैं । स्पष्ट है, भाव का सम्बन्ध मानव के मानसिक तत्त्व से जुड़ा हुआ होता है ।

समय-समय पर विद्वानों ने विभिन्न रूपों से भाव को परिभाषित करने का प्रयत्न

किया है । संकृताचार्यों ने भाव विषयक अनेक मतों का प्रतिपादन किया है । काव्य की आत्मा रस की निष्पत्ति को भी भरतमुनि ने विभाव, अनुभाव एवं व्यभिचारी भावों का संयोग ही माना है -- यथा- 'विभावनुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पतिः'[2] मानव-हृदय में अनेक भाव स्थित रहते हैं । इन्ही भावों की अनुभूति ही काव्य की उत्पति का प्रथम चरण है । रचनाकार के मनोमस्तिष्क में भावों का जो ज्वार उठता है वही शब्दों के माध्यम से कविता के रूप में प्रस्फुटित हो उठता है । मानवहृदय में आलोड़ित इच्छाएँ ही भाव का रूप ग्रहण कर लेती है । मूलतः मानव हृदय में छिपे भाव सुप्तावस्था में ही रहते हैं परन्तु किसी विशेष कारणवश, विशेष समय पर ये जागृत हो जाते हैं ।

मानव हृदय में असंख्य इच्छाएँ उत्पन्न होती है । अतः भावों का असंख्य होना भी सामान्य है । किन्तु विज्ञ आचार्यों ने इन भावों को तीन प्रमुख भेदो में विभक्त किया है ।

1. प्रज्ञात्मक भाव
2. इन्द्रिय-जनित भाव एवं
3. गुणात्मक भाव

प्रज्ञात्मक भावों के अंतर्गत वे भाव आते हैं जो भूत, भविष्य एवं वर्तमान की चिन्ता के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं । आँख, नाक, कान आदि इन्द्रियों से प्राप्त होने वाले ज्ञान इन्द्रिय-जनित भावों के जन्मदाता होता है । मानव मन भावों को धारण करने की शक्ति रखता है और इन्हीं शक्तियों को लक्षित करते हुए उत्पन्न होने वाले भाव गुणात्मक भावों के अंतर्गत हैं ।

प्रत्येक व्यक्ति भावों की सुखात्मक अथवा दुखात्मक स्थिति का अनुभव करता है । प्रत्येक भाव का सम्बन्ध अन्य भावों से रहता है । अतः भाव स्वतंत्र एवं निरपेक्ष नहीं होते । किसी भी रचना के भाव पक्ष को समझने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि

'भाव' को विस्तारित रूप से समझा जाय ।

मानव मन में स्थायी भाव, है । इन भावों की चर्चा भरतमुनि ने भी नाट्यशास्त्र के रससूक्ति में की है । स्थायी भाव मानव हृदय के मूल भाव होते हैं और इसी कारण यह मानव चित्त मे स्थिर रहते हैं ।अधिकांश आचार्यो ने स्थायी भावो की संख्या नौ मानी है जो इस प्रकार हैं -- रति, हास, शोक, उत्साह, क्रोध, भय, जुगुप्सा, विस्मय एवं निर्वेद । विभाव वस्तुतः वे भाव होते हैं जो मानव चित्त के स्थायी भावों को जागृत करने मे सहायक होते हैं । अतः इन्हे 'सहायक भाव भी कहा जा सकता है । ये मूलतः दो वर्गो मे विभक्त हैं --

1. आलम्बन विभाव
2. उद्दीपन विभाव

जिस वस्तु या परिस्थिति का आलम्बन लेकर मानव मन का स्थायी भाव जागृत होता है उसे आलम्बन विभाव कहते है और वे उपकरण, वस्तुएँ अथवा वातावरण जिनसे उत्पन्न भाव को और अधिक उत्कर्ष मिले, उद्दीपन विभाव कहते हैं ।

स्थायी भावों की अनुभूति कराने वाले भाव को अनुभाव कहते हैं । हृदय मे जो भाव उठते हैं उन भावो को अभिव्यक्त करने के लिए मानव कुछ क्रियाएँ करता है जो अनुभाव कहलाते हैं । अनुभाव के चार भेद होते हैं -- कायिक, मानसिक, सात्विक एवं आहार्य । सात्विक अनुभाव स्वतः ही बिना किसी कृत्रिम चेष्टा के उत्पन्न होते हैं और इसके आठ भेद हैं - स्तम्भ, अश्रु, स्वेद, रोमांच, वैवर्ण्य, स्वरभंग एवं प्रलय । संचारी भाव वे होते हैं जो मानव हृदय मे अल्प काल के लिए उत्पन्न होकर पुनः विलीन हो जाते हैं । ये भाव स्थायी रूप से हृदय में नहीं होते । संचारी भाव असंख्य हैं परन्तु आचार्यो ने इनकी संख्या तैंतीस मानी है -- निर्वेद, ग्लानि, विषाद, शंका, आवेग, दैन्य, मद, मोह, उग्रता,

अमर्ष, श्रम, उन्माद, असूया, चिन्ता, औत्सुक्य, आलस्य, निद्रा, व्याधि, धृति या धैर्य, हर्ष, गर्व, मति, चापल्य, क्रीड़ा, अवहित्था, स्वप्न, विबोध, अपस्मार, स्मृति, वितर्क, त्रास, जड़ता एवं मरण । यहाँ यह ध्यातव्य है कि ये भाव सदैव संचारी नहीं बने रहते । किसी रस की पुष्टि करने पर ही ये संचारी भाव बनते हैं । इसी तरह कविता में जब यह निश्चित करना कठिन हो जाता है कि कवि द्वारा वर्णित भाव, विभाव या अनुभाव का संबंध किस रस से है तब यह काव्य का दोष माना जाता है ।

निराला और नज़रुल के गीतिकाव्यों में भावों का समधर्मी होना जितना सामान्य है, उतना ही उचित भावों में विरोध तत्व का होना भी है । इन गीतिकाव्यों मुख्यतः प्राकृतिक, वैयक्तिक, सामाजिक आदि भावों के अंतर्गत विभक्त किये जा सकते हैं ।

निराला एवं नज़रुल के काव्य में प्रयुक्त प्रकृतिकपरक भाव

साहित्यसृजन के प्रेरणाश्रोत के हिसाब से समय-समय पर प्रकृति ने विभिन्न भूमिकाएँ निभाई है । प्रकृति से मानव का संबंध अनंत काल से है । प्रकृतिजन्य पंचतत्वों से ही (क्षिति,जल,पावक,गगन,समीर) मानव शरीर की रचना हुई है । इस कारण मानव एवं प्रकृति का संबन्ध अविच्छिन्न एवं अनादि है।

'प्रकृति शब्द की उत्पति वस्तुतः प्र' पूर्वक 'कृ' धातु में 'क्तन्' 'प्रत्यय जोड़ने हुई है। बृहत हिन्दी शब्दकोश में प्रकृति को परिभाषित करते हुए लिखा गया है -- 'वह मूलतत्व जिसका परिणाम जगत् है',[3] इसी प्रकार मानक हिन्दी कोश में भी प्रकृति की परिभाषा देते हुए प्रकृति को पदार्थ या प्राणी का मूलभूत गुण माना गया है । प्रकृति को मानवेतर जगत का मौलिक और स्वाभाविक रूप भी माना गया है । यथा --

'किसी पदार्थ या प्राणी का वह विशिष्ट भौतिक सारभूत तथा सहज और

स्वाभाविक गुण या तत्त्व जो उसके स्वरूप के मूल में होता है और जिसमें कोई परिवर्तन या विकार नहीं होता ।' 'वह सारा दृश्यजगत जिसमें हमें पशु-पक्षी, वनस्पतियाँ आदि अपने मौलिक या स्वाभाविक रूप में दिखाई देती है ।'[4]

समय-समय पर संस्कृताचार्यों ने भी प्रकृति सम्बन्धी विभिन्न मतों का प्रतिपादन किया है । हिन्दी साहित्य के आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक के सहृदय रचनाकारों की रचनाओं में भी प्रकृति किसी न किसी रूप में दृष्टिगोचर होती है । चाहे आदिकालीन कवि स्वयंभू हो, या भक्ति काल के महाकवि तुलसीदास या सूरदास ; रीतिकालीन घनानंद हो या छायावादी कवि पंत, सभी रचनाओं में प्रकृति-चित्रण का विपुल अंश विद्यमान है । छायावादी कवि पंत को तो प्रकृति का सुकुमार कवि ही मान लिया गया है । उनकी प्रस्तुत पंक्तियाँ उनके प्रकृति प्रेम को उजागर करती है --

'छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया
बाले तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन'

हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखा गया है '' 'इनके मन में प्रकृति के प्रति इतना मोह पैदा हो गया था कि ये जीवन की नैसर्गिक व्यावक्ता और अनेक रूपता में पूर्ण रूप से आसक्त न हो सके ।'[5]

आदिकालीन कवि सरहपा के दार्शनिक कथन में भी प्रकृति-चित्रण को सहायक बनाया गया है --

'घोर अंधारे चन्दमणि जिमि उज्जओ करेई ।
परम महासुह ऐखु कण, दुरिअ अशेष हरेई ।'[6]

हिन्दी साहित्य के रचनाकारों की तरह ही पाश्चात्य कवियों ने प्रकृति के विभिन्न

रूपों को अपनी रचनाओं में स्थान दिया है । चाहे वे Shelly हों या Woodsworth सभी ने किसी न किसी रूप में प्रकृति का गुण गान किया है । कहने का तात्पर्य है कि प्रकृति जगत का मानव के साथ अविच्छिन्न सम्बन्ध होने के कारण भिन्न-भिन्न भाषाओं एवं धाराओं के रचनाकारों की रचनाएँ प्रकृति के करों की छाया से मुक्त न हो पाई । साहित्य में कभी तो प्रकृति आलम्बन रूप में, कभी उद्दीपन में, कभी सहचरी तो कभी उपदेशिका, कभी धात्री तो कभी प्रेरणादात्री के रूप में आती रही है । हमारे विवेच्य कवियों की रचनाओं में भी प्रकृति ने अनेक रूपों में पदार्पण किया है ।

निराला और नज़रुल के गीतिकाव्यों में प्रकृति अनेक रूपों में परिलक्षित होती हुई दिखाई देती हे ।कई स्थानों पर प्रकृति चित्रण के भिन्न रूप तो कई स्थानों पर समधर्मी प्रकृति चित्रण के रूप दृष्टिगोचर हैं । निराला का जन्म बंगाल में हुआ था । अवध के गाँव में भी वे काफ़ी समय तक रहे । इसी कारण वे सहज रूप से बंगाल के मेदिनीपुर जिले के गाँव की प्रकृति तथा अवध के गाँवों के प्राकृतिक आभा से आकृष्ट हुए । रामविलास शर्मा के अनुसार - 'उन्होंने बंगाल और अवध दोनों ही की बरसात देखी है ।'[7]

प्रकृति में उमड़ रहे बादलों को देखकर वे कभी 'बादल-राग' जैसे कविताओं की रचना करते तो कभी फूलों से आकृष्ट हो 'जूही की कली', शेफालिका' और 'बनवेला' जैसे उत्कृष्ट काव्यों की रचना कर डालते । प्रकृति के सहज, सरल सुन्दर और यथार्थ रूप को प्रस्तुत करने में निराला को विशेष आनन्द प्राप्त होता । वे विभूषित एवं स्वतंत्र रूप में प्रकृति को विशेष उपमानों से विभूषित करते । काव्य में प्रकृति का यह रूप उसका आलम्बनगत रूप होता है ।

लोकजीवन की छाया में निराला द्वारा रचित प्राकृतिक गीत अधिक सहज रूप में प्रकट होती है । अपने प्रिय ऋतु वसंत का वर्णन करते हुए वे अपने रागबोध को खुले,

उन्मुक्त एवं स्वाभाविक रूप में प्रकट करते हैं --

'अट नहीं रही है
आभा फागुन की तन
सट नहीं रही है ।'[8]

ऋतु वर्णन की परम्परा में भी निराला ने अनेक गीतों का प्रतिपादन किया उनकी प्रिय ऋतु वर्षा ऋतु थी तथापि उन्होंने ग्रीष्म, वसंत, शीत ऋतुओं का भी प्रचुर मात्रा में वर्णन किया है । 'परिमल' में ऋतु संबंधी गीत की पंक्तियाँ द्रष्टव्य है --

'ग्रीष्म का ले मृदु रवि-कर-तार,
गूँथ वर्षा-जल-मुक्ता-हार,
शरत की शशि - माधुरी अपार
उसी में भर देती धर घ्यान ;
सिक्त हिमकण से छन-छन वात,
शीत में कर रक्खा अज्ञात,
बसन्ती सुमन सुरभि भर प्राण,
बढ़ाया था किसका सम्मान ?'

इसी प्रकार गीतिका में वर्णित गीत मन को मोह लेता है --

'सखि वसंत आया ।
भरा हर्ष वन के मन
नवोत्कर्ष छाया ।
किसलय-वसना नव-वय ललिका
मिली मधुर प्रिय उर तरु-पतिका,

मधुप-वृन्द बन्दी -

पिक-स्वर नभ सरसाया ।'

अपने सम्पूर्ण जीवन में निराला ऋतुओं की ओर आकृष्ट होते रहे हैं और अपनी रचनाओं में ऋतुओं का बिम्ब बाँधने का उन्होंने अथक प्रयास किया है । उनके ऋतु वर्णन का उद्देश्य चमत्कार प्रदर्शन या अलंकरण नहीं था बल्कि वे ऋतु वर्णन को सहज सरल जीवनानुभवों से जोड़कर देखते थे -'अलंकरण या तटस्थ विवरण या चमत्कार' - प्रदर्शन अथवा नये-नये कलात्मक ललित उपमानों और चित्रों की खोज उनके ऋतु-वर्णन' का उद्देश्य कतई नहीं है। इसके भी आगे मात्र फूलों, रंगों, ऋतुओं के बदलते प्रभावों का सूक्ष्म अनुवीक्षण और यथातथ्य आकलन भी निराला के ऋतु-वर्णन का उद्देश्य नहीं है। इससे अलग, ऋतुओं के प्रसंग को अपने जीवन के व्यापक अनुभवों के भीतर से गुजरते हुए उन्होंने व्यापक जन-जीवन के संवेगात्मक प्रसंगों, स्थितियों से जोड़ने का प्रयत्न किया है ।'[9] यहाँ जीवन के प्रत्येक भाव एवं क्षण को निराला सर्वथा निजि रूप में जीते हैं । इसी कारण उनके ऋतु वर्णन को आलम्बन या उद्दीपन जैसे काव्य-शास्त्रीय ढाँचे में नहीं बाँधा जा सकता ।

जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि निराला की प्रिय ऋतु वर्षा, तदुपरान्त वसन्त रहा है, 'अनामिका से ले कर सांध्य-कांकली तक उनके सभी संग्रहों में वर्षा ऋतु की कविताएँ द्रष्टव्य हैं । वर्षा ऋतु पर उनकी लगभग 52-53 रचनाएँ प्राप्त होती है । जबकि वसन्त ऋतु की कविताओं की संख्या मात्र 18 है । इनमें अर्चना में कुल वसंत ऋतु की 7 कविताएँ प्राप्त होती हैं ।

ग्रीष्म ऋतु पर निराला ने कोई गीत नहीं लिखे हैं किन्तु किसी किसी रचना में ग्रीष्म ऋतु के बिम्ब यत्र-तत्र देखने को मिल जाते हैं । उदाहरण स्वरूप निराला की 'उक्ति'

कविता में उत्कृष्ट काव्यसौंदर्य और शब्द संयोजन के साथ ग्रीष्म ऋतु का बिम्ब जीवन की व्यथा को प्रस्तुत करता है --

'जला है जीवन यह
आतप में दीर्घकाल
सूखी भूमि, सूखे तरु,
बन्द हुआ गुंज, धूलि-धूसर
हो गये कुंज
किन्तु बड़ी व्योम उर
बन्धु नील-मेघ-माल ।'

इसी प्रकार 'नये पत्ते' की 'देवी-सरस्वती नामक रचना में ग्रीष्म ऋतु के समृद्ध, सुखी उल्लासमयी रूप को प्रस्तुत किया गया है --

'ग्रीष्म तापमय लू की लपटों की दोपहरी
झुलसाती किरणों की वर्षों की आ ठहरी ।
तुम हो शीतल कूप-सलिल, जामुन छाया-तल
लदे आम के बागों से जीवन का सम्बल ।
गेंहूँ-चने, मटर मड़कर घर आये अतिशय ।'

ग्रीष्म के अतिरिक्त निराला का ध्यान पतझड़ की ओर भी आकृष्ट हुआ है --

'वन वन के झरे पात
नग्न हुई विजन-गात ।'[10]

या -

'दुखता रहता है अब जीवन

पतझर का जैसा वन-उपवन ।

x x x x

झर झर कर जिसने पत्र-नवल

कर गये रिक्त तनु का तरु-दल

हैं चिन्ह शेष केवल सम्बल

जिनसे लहराया था कानन ।'

'गीतिका' के एक गीत में निराला ने वसन्त के पर्यवसान का खूबसूरती से आकलन किया है । यहाँ उन्होंने सूखी शब्द का रूपान्तर रूखी लिया है जिससे गीत में सौन्दर्य उत्पन्न हो गया है --

'रूखी री यह डाल, वसन-वासन्ती लेगी ।

देख खड़ी करती तप अपलक

हीरक-सी समीर-माला जप

शैल-सुता अपर्ण-अशना

पल्लव-वसना बनेगी -

वसन-वासन्ती लेगी ।'

निराला के इसी प्रतिभा से प्रभावित होकर दूधनाथ सिंह कहते हैं -- 'उत्कृष्टतम गीति-तत्त्वों के साथ शब्द-विधान और बिम्ब योजना की कला में निराला अपने समकालीनों में बेजोड़ हैं । उनकी इसी संश्लिष्टता को कुछ आलोचकों और पाठकों ने काठिन्य समझ लिया है । दरअसल यह संश्लिष्टता एक संघटित गीति-क्षमता और शिल्प का प्रतिफलन है । उसका रस और सौन्दर्य उसके भीतर पैठने में है ।'[11]

शरद ऋतु के वर्णन क्रम में निराला की पाँच-छः रचनाएँ हमारे समक्ष आती

है । 'गीत गुंज' में संकलित 'शरद की सुभ्र-गंध' जैसी प्रस्तुत किया है । पहली पंक्ति गद्यात्मकता के गुणों से पूर्ण हुए भी शब्द-संयोजन एवं मात्रा-वृद्धि से गीति-सौन्दर्य में बदल गई है --

'शरत की शुभ्र-गन्ध फैली
खुली ज्योत्सना की सित शैली ।
काले बादल धीरे-धीरे
मिटे गगन की चीरे चीरे
पीर गई उर आये पी रे
बदली द्युति मैली ।'

इस प्रकार शिशिर ऋतु का चित्रण करते हुए निराला ने 'गीतिका' के एक गीत में विरह-दुःख और करुणा का चित्र उपस्थित किया है । जहाँ एक ओर 'नील-कमल-कलिकाओं' के काँपने का चित्र अद्‌भुत बिम्ब उपस्थित करता है वहीं वन-देवी के हृदय-हार से हरसिंगार की कलियों के झरने का चित्र मन को मोह लेता है ।

वसन्त निराला की प्रिय ऋतुओं में से एक है । उनकी कुल 18 रचनाएँ इस ऋतु पर आधारित है । हालाँकि इन कविताओं के अतिरिक्त अन्य अनेक कविताओं में वसन्त -ऋतु का बिम्ब आया है । अपने पहले संग्रह से 'गीत-गुंज' तक के सभी संग्रहों में निराला ने वसंत का भरपूर चित्रण किया है । निराला के भीतर की निराशा उनके 'अन्त' नामक रचना में उल्लासमयी हो उठती है । यहाँ वे अपने उल्लास के अनुभूति को 'अन्त' की छाया की अस्वीकृति से शुरू करते हैं --

'अभी न होगा मेरा अन्त ।
अभी-अभी ही तो आया है

मेरे वन में मृदुल वसन्त -
अभी न होगा मेरा अन्त ।
हरे-हरे ये पात,
डालियाँ, कलियाँ कोमल गात ।
मैं ही अपना स्वप्न-मृदुल कर
फेरुँगा निद्रित कलियों पर
जगा एक प्रत्यूष मनोहर ।'

यहाँ वसन्त ऋतु उनके बाहर नहीं बल्कि उनके भीतर ही समाहित है । 'अर्चना' में वसन्त ऋतु संबंधी सबसे अधिक गीत संग्रहित हैं । इन गीतों के कथ्य में एक सहज एकरूपता देखने के मिलती है । 'अर्चना', 'आराधना' और 'गीतगुंज' के अधिकांश गीतों में सीधी-सादी शब्दावली के साथ हमें उल्लास और रंगमयता के चित्र दृष्टव्य होते हैं --

'केशर की कलि की पिचकारी
पान-पात की गात सँवारी ।
राग-पराग कपोल किये हैं
लाल-गुलाल अमोल लिये हैं
तरु-तरु के तन खोल दिये हैं
आरती-जोत उदोत उतारी
गन्ध-पवन की धूप-छवारी ।'

या

अट नहीं रही है
आभा फागुन की, तन

सट नहीं रही है ।

कहीं साँस लेते हो
घर-घर भर देते हो
उड़ने को नभ मे तुम
पर-पर कर देते हो
आँख हटाता हूँ तो
हट नही रही है ।

पत्तो से लदी डाल
कहीं हरी कहीं लाल,
कही पड़ी है उर मे
मन्द-गन्ध पुष्प-माल,
पाट-पाट शोभा-श्री
पट नहीं रही है ।

इन गीतो की प्रशंसा करते हुए दूधनाथ सिंह लिखते हैं --'प्रकृति के पवित्र, अनिंद्य सौन्दर्य का अत्यन्त शान्त और सहज वर्णन है । कहीं सारा संसार इस सौन्दर्य से विजड़ित 'अडग' हो गया है, तो कहीं पूरा आकाश आँखो की मुक्ति का प्रतीक है । कहीं वृक्ष-वृक्ष का तन खुल गया है, लहलहा गया है, पत्तो-पत्तो पर लालिमा और हरीतिमा रच गयी है, चिड़ियो ने आनन्द से चहचहाना शुरू कर दिया है । मन का आलस्य, खिन्नता और उदासी दूर हो गयी है । आँखो मे वह मुख-श्री चमक-चमक उठती है .... । इस समृद्धि सुख, उल्लास और सौन्दर्य की अपारता मे कवि-मन उसके नानाविध रंगो, छवियो, प्रकाश-रेखाओ पर मुग्ध और चकित है ।'[12]

यह कथन वर्षा के चित्रण में भी सत्य प्रतीत होता हैं । वर्षा के विनाशकारी एवं ध्वंस-तत्व की और निराला ने अधिक ध्यान नहीं दिया है बल्कि वर्षा ऋतु के माध्यम से उन्होंने, सुख, समृद्धि, प्रेम, उल्लास उत्फुल्लता एवं आनन्द को ही उजागर किया है । इसी कारण उन्हें वर्षा का जीवनदायिनी रूप अधिक पसंद है । मानवीय संवेगों से जोड़कर, निराला वर्षा ऋतु को 'लोक' के करीब लाते हैं । उदाहरण स्वरूप 'सांध्य काकली' का यह गीत --

'गगन मेघ छये
नये नयन नये ।
प्राणधन के श्याम घन ये,
तापजल-शीतल-प्रवण ये,
पुण्य के शुभ प्रस्त्रवण ये
हृदय-द्वार गये ।'

या

'बादल, गरजो !
घेर घेर घोर गगन, धाराधराओ !
ललित-ललित काले घुँघराले
वाल-कल्पना के-से पाले
विद्युत्-छवि उर में कब, नव-जीवन वाले !
वज्र छिपा, नूतन कविता
फिर भर दो
बादल गरजो ।'

कभी-कभी इन चित्रणों को देखकर वे अर्मूत ध्वनियों से खेलते हुए प्रतीत होते हैं --

'वारि वन वनवारि
वनवारि वनवारि ।
वारिज विपुल वारि
पुलवारि कुलवारि
द्रुमलता तुलवारि
कूलकलि कुलवारि
आकुल मुकुल वारि
विहम संकुल वारि ।'

ऐसा लगता है मानो निराला उल्लास और सुख की अभिव्यक्ति में इतने तन्मय हो गए हैं कि वे शब्दों से खेलने लगे हैं ।

इस प्रकार प्रकृति के विभिन्न पक्षों को दर्शाते हुए निराला कभी प्रकृति के आलम्बनगत चित्र को चित्रित करते हैं तो कभी उसके रसाश्रित उद्दीपनात्मक रूप का चित्रण । कभी प्रकृति मानवीकृत होकर एक अपूर्व छँटा बिखेरती हुई दिखाई देती है तो कभी पृष्ठभूमि के रूप में आकर किसी दृश्य को उभारती हुई दिखाई देती है .। कभी तो प्रकृति का प्रयोग अलंकरण हेतु किया जाता है, तो कभी प्रकृति में रहस्य के दर्शन होते हैं ।

निराला की तरह नज़रुल ने भी प्रकृति संबंधी सैंकड़ों गीतों की रचना की है । उन्होंने प्रायः सभी ऋतुओं के विषय में कविताएँ लिखी हैं किन्तु निराला की तरह उनकी सबसे प्रिय ऋतु वर्षा एवं वसन्त ही हैं । 'नज़रुल-संगीते ऋतु चेतना' नामक अपनी पुस्तक में आतोयार रहमान लिखते हैं --

'नज़रुलेर ऋतुचेतना तथा ऋतुप्रीति' किन्तु विसमभावे विभिन्न ऋतुते बन्दि तार काछे सबचेये प्रिय वर्षा एवं बसन्त.........।[13]

अर्थात नज़रुल की ऋतुचेतना तथा ऋतुप्रेम विषम रूप से विभिन्न ऋतुओं में बँधी हुई है। उनके लिए सबसे प्रिय वर्षा एवं वसन्त-ऋतु है ।

नज़रुल के ऋतु विषयक गीतों में सबसे कम हेमन्त ऋतु के वर्णन प्राप्त होते हैं । उनका एक ऐसा गीत भी है जो छह ऋतुओं को एक साथ दर्शाता है --

'एकी अपरूप रूपे मातोमाय हेरिनूपल्ली जननी ।
फूले ओ फसले कादा माटी जले झलमल करे लाबनी ।
रौद्रतपत वैशाख तूमि चातकेर साथे चाह जल
.... शाप्ला शालूके साजाइया साजी शरते शिशिरे नहिया ।
.... अघ्राने मागो आनन धानेर
शीतेर शून्य माठे तूमि फेर उदासी बाउल साथे मा ।
.... फागूने रांगा फूलेल आबीरे रांगाओ निखिल धरनी ।[14]

मातृभूमि की प्रशंसा गीति गाते हुए नज़रूल वैशाख, शरत, अघ्रान, शीत, फागुन आदि ऋतुओं का एक ही रचना में उल्लेख कर देते हैं । उनके अनुसार वैशाख महीने के तप्त किरणों में चातक पक्षी के साथ माँ धरा भी जलपिपासु हो उठती है, शरत ऋतु में शिशिर में नहाती है, अघ्रान महीने में धन-धान्य से उनका गोद भर उठता है, शीत ऋतु के शून्य माहौल में बादल की तरह उदास हो घूमने लगती है, और फागुन में रंगे फूलों के अबीर से रंगकर प्रस्फुटित हो उठती है ।

नज़रुल के वसन्त केन्द्रित गीतों में काल्पनिकता एवं सृजनशीलता से अधिक मानव मन की प्रतिक्रिया अधिक प्रखर हो उठती है -- 'वस्तुतः वसन्त केन्द्रिक गाने

103670 Date..........

नज़रुलेर अबाध कल्पना आर सृजनशीलता चेये प्रथानूगता आर गतानुगतिकतार अधिकतर प्रबल ।'[15] 'सेई संगेई तार चोखे धरा पड़े मानव मनेर ऊपर विभिन्न ऋतुर कोमल कठोर, प्रिय-अप्रिय रूपेर प्रतिक्रिया ।'[16] अर्थात-- वे मानव मन के विभिन्न ऋतुओं का कोमल, कठोर, प्रिय, अप्रिय रूप की प्रतिक्रिया दर्शाते हैं ।

नज़रुल के प्रकृति प्रेम के गीतों के विषय में एक अन्य सुविज्ञ डॉ. सुशीलकुमार गुप्त का मानना है --'एइसब गानेर चित्रकल्प ओ भासार कारूकार्य पाठक के मुग्ध न करे पारे ना । एइ प्रसंगे 'आजि दोल फागुनेर दोल लेगेछे आमेर बौले दोलोन चाँपाय' 'आजके दोलेर हिन्दोलाय आय के दिवि दोल (सुरसाकी) प्रभृति गान विशेषभावे स्मर्तव्य ।'[17] अर्थात इन सब गीतों के चित्रकल्प एवं भाषायी कारीगरी पाठकों को मुग्ध कर देते हैं । इस प्रसंग में आज दोल फागुनेर दोल लेगेछे 'आज के दोलेर हिन्दोलाय आदि गीत विशेष रूप से स्मरणीय हैं ।

कवि जीवन जगत, प्रकृति एवं परिवेश का सूक्ष्म द्रष्टा होता है । उदीयमान सूर्य, प्रवहमान नदी, चंचल झरने, उत्तुंग पर्वत शिखर, मेघदल, सतरंगी इंद्रधनुष ज्योत्सनालोकित रात्रि, उन्मुक्त प्रान्तर, फूल, पक्षी, वन्यप्राणी आदि प्राकृतिक दृष्यों ने चिरकाल से मनुष्य मात्र के हृदय में आनन्द का संचार किया है ।

नज़रुल के कविता एवं गीतों के विषय में 'आताउर रहमान का कहना है -- 'नज़रुल कविताय ओ गाने आमरा विद्रोहेर उद्दामता एवं प्रेमेर भावविभोरता संधान करि, प्रकृतिर कोमल स्पर्श ही ऐड़िये जाई । जेन तिनि सब समय विद्रोहेर कथाई बलबेन, अन्य कोनो वक्तव्य नेई तार । किन्तु तिनि मूलत कवि एवं अत्यन्त भावप्रवण कवि । कोनो कविमानस प्रकृतिर प्रति उदासीन थाकते पारेना । नज़रुलेर दृष्टिते प्रकृतिर आकर्षण कत गभीर छिल ता बूण्ते पारी 'बाँधन हारार प्रकृति कविताय, जेखाने तिनि एकई प्राकृतिक

दृश्यके दूटि रूपे फूटिये तूलेछेन । ताछाड़ा तार कविताय ओ गाने प्रकृति एवं परिवेशेर मनोरम चित्र दृष्टिग्राह्य हये उठेछे । सन्धार करूनता, सन्ध्यातारार निःसंग विस्रन्ता, सन्ध्यार आगमनचित्र नज़रुलेर काछे क्लान्तिर' सूरेर मत मायामय ।'[18] आश्य यह है कि नज़रुल के कविता एवं गीतों में हमने मूलतः विद्रोह एवं प्रेम का स्वरूप देखने की कोशिश की है परन्तु प्रकृति को जिस गंभरता से नज़रूल ने पर्यवेक्षण किया है उसे अन्देखा करना नितांत भूल होगा ।

रविन्द्रनाथ की तरह नज़रुल भी बंगाल की प्राकृतिक छँटा से विमोहित थे । इसका प्रमाण उनके एक अभिभाषाण में प्राप्त होता है --

'आमाय सादर सम्भासन करेछे तोमादेरी गिरि सिन्धु-कान्तार परिशोभित-परिस्थान ।......... तोमादेरि गिरिराजेर कोलेर काछटिते सर्से-फूलेर ऑचल बिदिये जे उदासिनी बालिकाके नदीर ढेऊ-खेलानो चूल एलिये बसे थाकते देखेछि, आमाय सर्वप्रथम मौन अभिनन्दन जानियेछे से । आमादेरे कर्नफूलीर तरंगे जे तरूनी तार भरा यौवनेर सवप्न बिछिये काननेर कून्तल एलिये घूमिये आछे, आमाय सर्वप्रथम आमन्त्रण-लिपि पाठियेछे से-ई-तार साम्पान माझिर हाते । तोमादेर बने बने घूरे फेरे जे बालिका बनलक्खी-तार हलदे पाखी बौ-कथा कओ पिक-पापियार नूपूर-कॉकन बाजिये बाजिये गुबाक-तरूर हातछानि दिये आमारा सबार आगे डेकेछे सेई आलूलायित कून्तला कपाल कुन्डला । तोमादेर ऊदार आकाशे मेघेर आलपना एँके आमार आसन रचना करेछे, चन्ड-वृष्टि-प्रपात छन्दे तोमादेर आसमानी मेयेरा आमार सिरे-पुष्प-वृष्टि करेछे, तोमादेर जलप्रपात निर्झरिनी आमार गज़ेल-गाने सूर दियेछे, सिन्धु हिन्दोल आमार रक्ते नूतन दोला दियेछे ।'[19]

स्पष्ट है, नज़रुल की रचना प्रकृति के अनुपम सौंदर्य से अत्यधिक प्रभावित थी ।

नज़रुल के गीतो के बर्हिप्रकृति वर्णन मे काल्पनिकता प्रचुर मात्रा मे प्राप्त होती हे जो पाठको को मनोहारी लगती है । उदाहरण स्वरूप 'दोलन चॉपा काव्यग्रन्थ की 'लाल नटेर खेत' तथा छायानट की 'अकेजेर गान' रचनाएँ ऐसी ही हैं जिनमे छन्दचातुर्य के कारण पाठक विमुग्ध हो उठता है । प्रकृति का मानवीकरण भी नज़रुल ने उत्कृष्टम ढंग से किया है । कभी तो वे दोपहर को उदास कहते हैं कभी संध्यातारा को घूँघट ओढी हुई वधु के रूप मे देखते हैं । यथा --

'उदास दूपूर कखन गेछे एखन बिकाल जाय
घूम जड़ानो घूमती नदीर घूमूर परा पाय ।'
शंख बाजे मन्दिरे
सन्ध्या आसे बन घिरे,
झउएर शाखाय भेजा आधार के पेजेछे हाय ।
माठेर बॉशी वन-उरासी भीमपलाशी गाय ।'[20]

अर्थात उदास दोपहर कब का चला गया है, अब तो शाम भी जाने लगा है । नींद मे डूबी हुई नदी के पैरों मे घुँघरू है । मंदिरो में शंख बज रहे हैं और संध्या सुन्दरी वन प्रांत घिर कर आ रही है ...... ।'

संध्या का इतना उत्कृष्ट वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है । इसी प्रकार संन्ध्यातारा का ये वर्णन देखिये --

'घोमटा पोरा कादेर घरेर बऊ तूमि भाई सन्ध्यातारा
तोमर चोखेर दृष्टि जागे हारानो कोन मूखेर पारा ।'[21]

अर्थात घूँघट ओढ़ी हुई संध्यातारा तुम किसके घर की वधु हो । तुम्हारी दृष्टि पड़ते ही खोए हुए मुख का पारा भी जाग उठा है ।

चाहे दिन हो या रात, रवि हो या शशि नज़रूल ने अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रकृति के प्रत्येक पक्ष पर अपनी दृष्टि जमाई है ।

ऋतु-विषयक गीतों की ओर दृष्टिपात करें तो यह ज्ञात होता है कि नज़रुल ने प्रत्येक ऋतु के नूतन दृश्यों की सृष्टि की है । चैत की हवा, बैसाख की तूफानी हवा, शिशिरपूर्ण शरत, या फिर विपन्न शीत, प्रत्येक ऋतु का समावेश नज़रुल की रचनाओं में है ।

शीत-ऋतु का मनमोहक चित्रण देंखे --

'पउष एलोगो
पउष एलो अश्रु पाथार-हिम पाराबार पाराये ।
ऐ जे एलो गो
कुन्जटिकार धोमटा पर दिगन्तेर दाँडाए ।
से एलो तार पाताय पाताय हाय,
विदाय व्यथा जाय गो केंदे जाय ।'[22]

पौष ऋतु का मनोहारी वर्णन करते हुए नज़रुल कहते हैं कि पौष-ऋतु ने हिम पारावार को पार करते हुए घूँघट ओढ कर खड़ा है । इसी प्रकार शीत ऋतु का एक और मनोहारी चित्र कवि के एक और गीत में प्रापत होता है --

'सबूज शोभाय ढेऊ खेले जाय
ढेऊ खेले जाय
नवीन आमन धानेरे खेते ।

हेमन्तरे ऐ शिशिर नाउया हिमेल हाउया

सेई नाचेने उठलो मेते ।'[23]

अर्थात हरी-भरी शोभा के मध्य लहरे खाती हुई, नवीन धान के खेत के बीच से होती हुई शीत ऋतु हिमाद्र हवा के रूप में नाच उठती है ।

नज़रुल के मनोमष्तिष्क में शरत ऋतु परिपूर्णता की प्रतीक है । उनकी दृष्टि में शरत काल रिक्तता तथा उदासीन छाया लेकर आती है --

'सई पातालो कि शरते आजिके स्निग्ध आकाश धरनी

नीलिमा बाहिया सौगात निया नामितेछे मेघेर तरनी ।

आकाश एनेछे कुयाशा उड्नी आसमानी नील काँचूलि

तारकार टीप, बिजलीर हार, द्वितीया चाँदेर हाँसली ।'[24]

अर्थात शरत ऋतु में आकाश एवं धरा स्निग्ध प्रतीत होती है । मेघों की तरणी नीलिमा को पार करते हुए सौगात लेकर आती हुई प्रतीत होती है । आकाश कुहासे की आसमानी नीले रंग की ओढ़नी ओढ़े हुए प्रतीत होता है और तारों की बिन्दी, बिजली की हँसी तथा द्वितीया चाँद की हँसी लेकर शरत मानों एक युवती स्वरूप सामने आ खड़ी होती है । शीत की तरह नज़रुल ने वर्षा ऋतु का भी चित्रण किया है । उनके लिए वर्षा विरह की ऋतु है । उनकी 'वरषा' 'बादलदिने', 'माताल हाओआ' आदि रचनाओं में वर्षा ऋतु के पटभूमि में विरह का भाव जीवित होता हुआ प्रतीत होता है । उनकी 'वर्षा-विदाय' नामक रचना इसका सजीव उदाहरण है जिसमें उन्होंने प्रकृति के रूपान्तर का चित्रण किया है --

'आगो बादलेर परी !

जाबे कोनदूरे घाटे बाँधा तब केतकी पातार तरी ।

तोमार कपाले परश ना पेये पान्तुर केया रेन

तोमारे स्मरिया भादरेर भरा नदी तटे काँदे बेनू,

कूमारीर भीरू वेदना विधुर प्रनय अश्रु मम

झरिछे शिशिरसिक्त रोकाली निशि भोरे अनूपम

ओगो जूलेर देशेर कन्या ! तब ओ विदाय वथे

कानने कानने कदमकेशर झरिछे प्रभात हते।

तोमार आदरे मूकूलिता हये उठिल जे बल्लरी,

तरूर कन्ठ जड़ाइया तारा काँदे दिवानिशि भीरी ।'

नज़रुल की रचनाओं का मूल्यांकन करते हुए मोबाश्वेर अलि जी लिखते हैं --'वर्षार मध्ये तिनि विरह भाव लक्ष्य करेछेन.... शरते समग्र प्रकृतिर मध्ये जे मिलनोत्सव ओ आन्नदोद्वेगे एरई चित्र अंकित हयेछे । 'सबूज शोभार ढेऊ खेले जाय' कविताय हेमन्ते भेजा माठ नवीन धानेर खेते पलक शिहरनेर एवं 'अध्रानेर सौगाते' प्रकृतिर अकृपन बरे उत्फुल्ल ओ उत्साबमूखर मानव -मानवीर चित्र उद्घाटित हयेछे । एई सकल कविताय प्रकृतिर जे ऋतु वर्नना, एते एकप्रकार शिल्प चातुर्येरई परिचय पाउया जाय .....'[25]

अर्थात वर्षा के मध्य उन्होंने विरहभाव लक्ष्य किया है । कभी-कभी नज़रुल प्रकृति को आत्मभाव के प्रतीक के रूप में देखते हैं। उनकी दृष्टि में सागर कभी विरही बनता है तो कभी विद्रोही । समुद्र विराट, विपुल और महीयान है फिर भी उसके मध्य एक अपार करुणा एवं वेदन भाव अवगुंठित है । इसी कारण समुद्र के अश्रांत कल्लोल के मध्य भी हमें एक अविराम आर्तनाद सुनाई देता है --

'बल बन्धु बल जय वेदनार जय ।

जे विरहे कूले कूले नाहि परिचय

केबल अनन्त जल अनन्त विच्छेद

हृदय केबलि हाने हृदये निसेध,

जे विरहे ग्रह तारा शून्य निशिदिन,

घूरे मरे ; गृह्वासी हये उदासीन ।'

नज़रुल समाज-जीवन असंगति, विकृति, असाम्य इत्यादि के लिए व्यथित होने के कारण प्राकृतिक सौन्दर्य की ओर अधिक आकृष्ट नहीं हुए । प्रकृति को कहीं न कहीं उन्होने मानवमन से जोड़कर ही देखा है । समाज की समस्या ही नज़रुल की लेखनी का केन्द्रीय विषय था । इसी कारण वे गम्भीर रूप से प्रकृति का अवगाहन नहीं कर पाए । फिर भी उपरोक्त विवेचन से इस बात को नकारा नहीं जा सकता कि नज़रुल ने अपनी लेखनी से प्राकृतिक सुषमा के विभिन्न पक्षो को उकेरा है ।

सारांशतः, निराला और नज़रुल दोनो के गीतों मे प्रकृति की संस्कृतिगत विशेषताएँ देखी जा सकती है। नज़रुल ने जहॉ प्रकृति को विषाद रूप मे प्रकट किया है वहीं निराला प्रकृति को एक कोमल श्रृंगार करती हुई युवती के रूप मे पेश करते हैं । दोनो की कविताओ मे प्रकृति का कोमल एवं भीषण रूप है ।

निराला के गीतों में भक्ति भाव

निराला ने अपने रचना काल के आरम्भ से ही भक्ति-गीतो की रचना प्रारम्भ कर दी थी । उन्होंने सरस्वती, शंकर, कृष्ण, दुर्गा, राधा आदि पर अनेक भक्ति गीत लिखे हैं । इन गीतो मे कुछ गीत हैं --

'दे मैं करूँ वरण जननि, दुख हरण पद-राग रंजित मरण, अनगिनित आ गये शरण मे, वर दे वीणावादिनी वद दे, भारती जय विजय करे, प्रात तव द्वार पर, दलित जन

पर करो करूणा, वरद हुई शारदा जी हमारी, जिधर देखिए श्याम विराजे, नील जलधि जल, भग्न तन रूग्ण मन जीवन विषन्न, माँ अपने आलोक निखारो हे जननि, तुम तपश्चरिता, भजन कर हरि के चरण मन, दूरित दूर करो नाथ आदि गीत ।

निराला ने अपने आरम्भिक रचना काल से अंत तक जिस प्रकार भक्ति और विनयपूर्ण गीतों की रचना की, उस प्रकार किसी भी छायावादी कवि ने नहीं की है । यह कथन रामस्वरूप चतुर्वेदी जी के प्रस्तुत वक्तव्य से सिद्ध होता है --'स्मरणीय है कि छायावाद के किसी कवि ने भक्ति-गीतों की ऐसी श्रृंखला नहीं लिखी जैसी निराला ने आदि से अंत तक लिखी है ।'[26] निराला के अधिकतर गीतों में भक्ति-भावना कूट-कूट कर भरी है। उनके गीत संग्रह अर्चना, आराधना, गीत-गुंज गीतिका, आदि में ईश-वन्दना की अनुपम छँटा देखने को मिलती है ।

गीतिका की भूमिका में जयशंकर प्रसाद जी लिखते हैं -- 'निराला जी, हिन्दी कविता की नवीन धारा के कवि हैं, और साथ ही भारती-मन्दिर के गायक भी हैं ।'[27]

जिस प्रकार नज़रुल ने अजस्र भक्ति गीतों का सृजन किया है उसी प्रकार निराला ने भी अपने गीतों में प्रभु को पाने का भरसक प्रयत्न किया है ।

मानव जब जीवन के कठिनतम क्षणों को जीने में अक्षम हो जाता है तो वह प्रभु के शरण में जाने की चेष्टा करता है । निराला और नज़रुल दोनों ही जीवन के भीषण प्रहारों को झेल चुके थे । बुलबुल की मृत्यु के उपरान्त नज़रुल और सरोज की मृत्यु के उपरान्त निराला मानसिक रूप से अस्थिर हो गए थे । अतः उन्होंने प्रभु-मार्ग का चयन किया ।

निराला ने अपने भक्ति-गीतों में प्रार्थनापरक चित्रण के साथ कहीं-कहीं पर वस्तुपरक चित्रण भी किया है । इस संदर्भ में गीतिका की समीक्षा करते हुए श्री नन्ददुलारे

वाजपेयी जी मानते हैं -- 'तुम्हीं गाती हो अपना गान, व्यर्थ मैं पाता हूँ सम्मान' में शुद्ध के भी ज्योति-चित्र उपस्थित किये हैं । ऐसे गीतों में प्रार्थनापरक और वस्तुपरक चित्रण है । कहीं शुद्ध अमूर्त प्रकाशमात्र और कहीं मूर्त कामिनी आदि रूप है ।' ....'प्रिय यामिनी जागी जैसे पदों में इस युग के कवि के द्वारा भक्तों की श्री राधा की ही अवतारणा हुई है ।'[28]

निराला के तीन सौ से अधिक गीतों में अधिकांश भक्ति गीत हैं । 'गीतगुंज' में वे कृष्ण के भक्ति में ओत-प्रोत हो उठते हैं तथा हर तरफ उनकी ही छवि देखते हैं --

'जिधर देखिए, श्याम विराजे
श्याम कुञ्ज, वन यमुना श्यामा,
श्याम गगन, घन-वारिद गाजे ।'[29]

ऐसा प्रतीत होता है निराला श्याम-भक्ति-सभा में गोते लगा रहे हों ।

कभी तो निराला दीन रूप में ईश्वर को पुकारते हैं तो कभी देवी के सौन्दर्य का बखान करते हैं । कभी वे विनय-भाव से ईश्वर के चरणों में शरण माँगते हैं --

'उन चरणों में मुझे दो शरण ।
इस जीवन को करो हे मरण ।
बोलूँ अल्प, न करूँ जल्पना,
सत्य रहे, मिट जाय कल्पना,
मोह निशा की स्नेह गोद पर
सोये मेरा भरा जागरण ।'[30]

गीतिका के एक और गीत में निराला का विनय भाव मुखरित होता हुआ दिखाई देता है ।

'तुम्हीं गाती हो अपना गान

व्यर्थ में पाता हूँ सम्मान,

मेरा पतझड़ - हरा हृदय हर

पत्रों के मर्मर के सुखकर

तुम्ही सुनाती हो नूतन स्वर

भर देती हो प्राण ।'[31]

अर्थात 'हे ईश्वर तुम अपना कार्य करते हो किन्तु व्यर्थ में ही लोग मुझे सम्मान देते हैं । मेरे इस पतझड़ स्वरूप हृदय में हे ईश्वर तुम्ही ने ही नूतन स्वर से नवीन प्राणों को भर दिया है ।'

ध्यातव्य है कि निराला के प्रस्तुत गीत में बंगाल के श्यामा-संगीत की झलक प्राप्त होती हे --

'तोमार कर्म तुमि करो माँ

लोके बले करि अमि ।'

अर्थात 'हे माँ तुम अपना कर्म स्वयं करती हो पर लोग कहते हैं कि वह कर्म मैं कर रहा हूँ।' कहना न होगा कि महिषादल में रहते हुए निराला ने बंग्ला साहित्य का अध्ययन किया था । इसी कारण उनके गीतों पर बांग्ला साहित्य के गीतों की स्पष्ट छाप मुखरित हो उठती है और यहीं उनके गीत बांग्ला गीतों से एक अद्‌भुत कृतिसाम्य उपस्थित कर देते हैं ।

निराला ने प्रार्थना-परक गीतों में उर्दू शब्दावलियों का मिश्रण कर नए-नए प्रयोग किए हैं । 'अणिमा' का यह गीत इस बात की पुष्टि करता है ।

'जन-जन के जीवन के सुन्दर

हे चरणों पर

भाव-वरण भर

दूँ तन-मन-धन न्योछावर कर,

दाग-दगा की

आग लगा दी

तुमने जो जन-जन की भड़की,

करूँ आरती मैं जल जल कर ।'[32]

अणिमा के गीतों के विषय में डॉ. शशि प्रभा सिन्हा लिखती हैं --'अणिमा में एक ओर विषाद और निराशा के भाव चित्रित हैं तो दूसरी ओर रहस्य आलोक और भक्ति की भावधारा लहरा रही है ।'[33] निराला के प्रार्थनापरक गीतों में दैन्य दशा के साथ-साथ वैयक्तिक वेदना का भी प्रकाश मिलता है । आत्मनिष्ठ भक्तिधारा में भी उन्होंने जनकल्याण की भावना का प्रकाशन किया है ।

कभी-कभी निराला के विनय गीतों में हमें चुनौती का भाव भी प्राप्त होता है । उनकी विनय जीवन-संघर्ष में जूझने के लिए शक्तिसंचय के उद्देश्य से है । सरस्वती की वन्दना करते हुए भी वह यह वरदान माँगते है कि वे नव भारत में स्वतंत्र रव का अमृतमंत्र भर दे --

'वर दे, वीणावादिनी वर दे

प्रिय स्वतंत्र रव अमृत मन्त्र नव भारत में भर दे।'

इसी प्रकार 'अर्चना' के एक और गीत में वे कहते हैं --

'माँ अपने आलोक निखारो,

नर को नरक त्रास से वारो ।

विपुल दिशावधि शून्य वर्गजन,

व्याधि-शयन जर्जर मानवमन
ज्ञान-गगन से निर्जर जीवन
करुणा करो उतारो, तारो ।'[34]

यहाँ भी निराला अपने विनय भाव के अंतर्गत मानव के मुक्ति की कामना करते हैं ।

निराला के अधिकतर गीतों में विषाद की गहरी छाया प्राप्त होती है । मानों जीवन रण हार कर वे ईश चरण के शरण में जाना चाहते हो --

'दूरित दूर करो नाथ,
अशरण हूँ, गाहो हाथ ।
हार गया जीवन-रण,
छोड़ गये साथी-जन ।'[35]

रामविलास शर्मा के अनुसार - 'तुलसीदास के बाद ऐसे मर्मवेधी विषाद के स्वर केवल निराला के गीतों में सुनाई देते हैं ।'[36] अपने भक्ति गीतों में निराला कहीं-कहीं सीधे-सपाट सरल रूप में हरि का भजन करते हैं --

'भजन कर हरि के चरण, मन !
पार कर मायावरण, मन !
कलुष के कर से गिरे हैं
देह-क्रम तेरे फिरे हैं,
विपथ के रथ से उतरकर,
बन शरण का उपकरण, मन !'[37]

निराला मूलतः निराकार-ज्योतिस्वरूप ब्रह्म के उपासक हैं, पर उपासना की प्रक्रिया को सुगम बनाने के उद्देश्य से वे, राम, कृष्ण, शिव, शक्ति, गंगा, सरस्वती आदि की स्तुति

करते हैं । उनके राम, कृष्ण, शिव उसी ब्रह्म के प्रतिरूप है --

'पूछा जग ने यह कौन राम
बोली विशुद्धि जो रही मौन,
वह , जिनके दून न ड्योढ़-पौन,
जो वेदों में है सत्य साम ।'[38]

दास्य भाव की भक्ति उनके 'राम की शक्तिपूजा' नामक काव्य में प्राप्त होती है । आराधना के गीतों में हमें कीर्तन शैली के भक्ति गीत प्राप्त होते हैं जैसे --

'कामरूप हरो काम, जपूं नाम राम-राम ।'[39]

या

'कृष्ण-कृष्ण राम-राम, जपे हैं हजार नाम ।'[40]

निराला के भक्ति गीत भले ही आत्मोद्धार के लिए रचे गए हों परन्तु इन प्रार्थनाओं के मूल में विश्वमंगल की भावना का समायोजन हुआ है ।

नज़रुल संगीत में भक्ति भाव

बांग्ला संगीतधारा में नज़रुल इस्लाम ने विपुल भावों पर काव्यगीतों की रचना की है । देशात्मबोधक, गज़ल, प्रेम संबंधी गीत, आधुनिकगीत या फिर लोकसंगीत, नज़रुल की लेखनी ने इन सभी विषयों पर आधिपत्य जमाया है । किन्तु भक्ति संगीत की रचना करने पर उनको जितनी ख्याति प्राप्त हुई उतना शायद ही किसी विषय के गीतों की रचना करने पर मिली होगी ।

अपनी लेखनी को नज़रुल ने मूलतः दो प्रकार के भक्तिपरक गीतों पर घुमाया है । इसी कारण उनकी गीत रचना को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है ।

1. प्रथम धारा के अंतर्गत हिन्दू धर्म संबंधी भक्ति-गीत, और महापुरुष या अवतारों के प्रशक्तिमूलक गीत हैं ।

2. द्वितीय धारा के अंतर्गत इस्लाम धर्म संबंधी गीत प्राप्त होते हैं ।

इस प्रकार प्रथम धारा को हिन्दू भक्ति गीत एवं द्वितीय को इस्लामी भक्ति गीत के नाम से अभिहित किया जाता है ।

प्रथम धारा अर्थात हिन्दू भक्ति गीत धारा के अंतर्गत नज़रुल इस्लाम ने निराकार ईश्वर वन्दना के साथ काली, दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, विष्णु, शिव, कृष्ण, राधा, राम, सीता, गौरांग, रामकृष्ण, विवेकानन्द आदि प्रमुख देवदेवियों तथा महापुरुषों की प्रशस्तिमूलक गीतों की रचना की है । उन्होंने विभिन्न शक्तिदेवियों के विषय में भी संगीत रचना की है। नित्यकाली भद्रकाली, महाकाली, श्मशानकाली आदि महाकालीरूपिणियों की वर्णना के साथ ही उन्होंने देवी दुर्गा के चन्डी, कौशिकी, भ्रामरी, शांकरी, सती, गौरी, दशमहाविद्यारूपी का भी अभूतपूर्व वर्णन किया है । नज़रुल भक्तिसंगीत में विष्णुकथा का भी वर्णन विभिन्न रूपों में प्राप्त होता है । जिस प्रकार कृष्ण की ब्रजलीला उनके गीतों में विद्यमान है उसी प्रकार शंखचक्रगदापद्मधारी विष्णु भी उनके काव्य संगीत की अन्यतम प्रेरणा है ।

शाक्त और वैष्णवों के विभिन्न पौराणिक कथाओं का विवरण भी नज़रुल संगीत में प्राप्त होता है । किसी भी अन्य संगीत रचयिता ने पौराणिक कथाओं का ऐसा विपुल घटना संस्थापन नहीं किया है । क्योंकि पौराणिक साहित्य की गम्भीर व्युत्पत्ति के विषय में इस प्रकार भक्ति भावपूर्ण संगीत की रचना करना कठिन कार्य है ।

नज़रुल के हिन्दु भक्तिगीतों को निम्न श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है ।

1. ईश्वरवन्दना मूलक संगीत

2. श्यामा संगीत

3. दुर्गाविषयक संगीत

4. आगमनी संगीत

5. भजन

6. अन्य संगीत

ईश्वरवन्दना मूलक भक्ति संगीत के अंतर्गत नज़रुल ने परमेश्वर की वन्दना की है । उनके लिए ईश्वर अविभाज्य एवं अखंड है । नज़रुल के ऐसे गीतों में ब्रह्मसंगीत की छाया दिखाई पड़ती है । इन गीतों पर दृष्टिपात करने पर यह पता चलता है कि भाव भाषा की दृष्टि से नज़रुल की संगीतिक प्रतिभा कितने उच्चस्तर की थी । उन्होंने अनेक ईश्वरवन्दनामूलक गीतों की सृष्टि की है । उनमें से कुछ गीत इस प्रकार है --

'अनादिकाल हते अनन्तलोग'; अन्तरे तूमि आछ चिरदिन; आमादेर भालोकर हे भगवान ; अमि बाँधन जत खूलिते चाई; आहारदिबेन तिनि रे मन ; एई देहेरी रंग महलाय ओगों पूजार थालाय आछे आमार ; कोथा तुई खूँजिस भगवान ; कोन कुसुमे तोमाय आमि खेलिछो ए विश्वलये ; गम्भीर आरती नृत्येर छन्दे, गाछे आकाश पवन निखिल भूवन ; तूमि दिले दुःख अभाव ; तूमि दियेछो दुःख शोक वेदना ; तूमि दुःखेर वेषे एले बले, तूमि साराजीवन दुःख दिले; तोमाय आमार एई विराट; तोमाय देउआ व्यथा; तोमार महाविश्वे विधु; तोमाय कि दिये पूजी भगवान; थाक एई गृहे घेरिया सदा कल्यान; दाओ शैर्य दाओ धैर्य; नाम जपेर गुणे फसल फलल; प्रभु तोमाय खूँजिया मरी; विश्व व्यापिया आछ तूमि जेने; मधुर आरतितव; मन बले तूमि आछ भगवन; मौन आरती तब; जत नाहि पाई देवता आमार; जदि आमि तोमार हाराई; युग-युग धरि लोके-लोके; शोक दियेछो नाथ ; सकाल साँझे प्रभु

सकल काजे; संसारेरई सेनार शिकल; हे चिरसुंदर विश्वचराचर; हे विधाता; हे महामौनी- इत्यादि संगीत नज़रुल के ईश्वरवन्दना गीतों के अंतर्गत आते हैं ।

भक्ति-गीतों में श्यामासंगीत नज़रुल इस्लाम का उल्लेखनीय अवदान है । इन गीतों का मूल विषय शक्तिदेवी काली की उपासना ही है । ध्रुवकुमार मुखोपाध्याय का उनके भक्ति गीतों के विषय में यह मानना है कि -- 'भावगौरव, चित्रकल्प और सुरमाधुर्य उनके भक्तिगीति में उत्कर्ष चरम स्तर में उन्नत हुआ है -- यथा 'भावगौरव, चित्रकल्प ओ सुरमाधुर्य तार भक्तिगीति उत्कर्षेर चरम स्तरे उन्नीत हए ।'[41]

'कवि एवं सुरस्रष्टा के रूप में महत् प्रतिभा के अधिकारी नज़रुल इस्लाम की अनेक श्यामासंगीत ने गौरव लाभ किया है ।'[42] इन गीतों में प्रमुख हैं -- 'बलरे जबा बल, महाकालेर कोले एसे, आय नेचे आ ए बूके, आमार मानसबने फूटेछे रे, श्यामा नामे लागलो आगून, मातृनामेर होमेर शिखा, उमा, तोर चरने कि कफूल दिले, रांगा जबाय काज कि, ओमा ! खड़ग निये मातिस रने, के परालो मुनडमाला आमार श्यामा मायेर गले, नाचेरे मोइ कालो मेरो, श्मशान काली रूप देखे जा आदि ।

इन गीतों में नज़रुल ने कुछ में तो श्यामा के रौद्री रूप का वर्णन किया है किन्तु कुछ में देशात्मबोधकता भी झलकती है। श्याम के रौद्र रूप वर्णन की एक स्मरणीय रचना है --

'माताल गगन-अंगने एई आमार रन रंगिनी मा
सेई मातने उब्ल दूले भूलोक दूलोक गगन सीमा ।
आँधार असूर यक्षापाने अरून आलोर खड्ग हाने -'[43]

अर्थात माताल गगन के आंगन में यह हमारी रण रंगिनी माँ है और इसी क्रम में भूलोक, गगन आदि भी डोल जाते है .... ।'

इसी प्रकार नज़रुल के कुछ श्यामासंगीतों में देशात्मबोधक प्रेरणा, जनजागरण आदि रूप प्रकाशित होते हैं । ऐसा ही एक गीत उल्लेखनीय है --

'जागो श्यामा जागो श्यामा आबार रनचन्डीसाजे ।
तूई जदि न जागिस मागो छेलेरा तोर जागबे ना जे ।
चाई मा आलो मुक्त वायु, प्रान चाई, चाई परमानू
मोह निद्रा त्याग कर मा शिव जागा तुई सबेर माझे ।'

अर्थात हे श्यामा तुम पुनः जागो क्यों कि तुम्हारे जागे बिना तुम्हारे पुत्र नहीं जागेंगे (अर्थात उनका मस्तिष्क सदा गुलामी के अंधकार तम में रहेगा) माँ हमें मुक्त वायु, प्राण, परमाणु चाहिए । इसी कारण मोह निद्रा त्याग कर सभी इंसानों के मध्य शिव (पवित्रता) का संचार करो । नज़रुल ने देवी दुर्गा की महात्ता का वर्णन भी किया है । पुराण में उल्लखित दुर्गा की कहानी को विभिन्न रूपों में उन्होंने प्रस्तुत किया है ।कभी तो वे दुर्गा की वन्दना करते हैं, कभी उनकी दशप्रहरिणी रूप की वर्णना करते हैं तो भी उनके गीतों में देशात्मक बोध भी पाया जाता है । दुर्गा विषयक गीतों के उदाहरण इस प्रकार हैं --

'एलो रे एलो ओई रण रंगिनी श्रीचन्डी, तापसिनी गौरी काँदे, सतीमा ऐल, जय रक्ताम्बरा रक्तवर्ण, निपीड़िता पृथ्वी ठाके, खड़ेर प्रतिमा पूजिस तोरा आदि ।

नज़रुल ने अपने जिन गीतों में दुर्गा के उमा' रूप का वर्णन किया है वे गीत आगमनी के नाम से जाने जाते हैं । इन गीतों में 'उमा' के पितृगृह में प्रवेश करने की घटनाओं का वर्णन है । यहाँ देवी को नज़रुल ने मानवी रूप में प्रस्तुत किया है । इन गीतों के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है - 'आमार आनन्दीनी उमा आजो, के साजालो आमार माके, केनो मोने जागे उदासीनी गौरीर स्मृति, ज्योर्तिमयी माँ एसेछे आँधा आँगिनाए आदि ।

नज़रुल ने शिव विषयक गीतों की भी रचना की है । उन्होंने इन गीतों का

मूल आधार ध्रुपद या खयाल रखा है । यद्यपि इनके शिवविषयक गीतों की संख्या अधिक नहीं है तथापि ये गीत नज़रुल के शिल्प पक्ष के उत्कर्ष को दर्शाती है । उदारणस्वरूप --

'गरजे गम्भीर गगने, के शिव सुन्दर शरत चाँद, नृत्यकालीर संगे, भगवान शिव जागो जागो, सृजनछन्दे आनन्दे, इत्यादि ।

शिव विषयक गीतों की संख्या नज़रुल संगीत में भले ही कम हो परन्तु कृष्ण भक्ति गीतों की संख्या विपुल मात्रा में उपलब्ध है । इन गीतों को दो भागो में विभक्त किया जा सकता है --

1. नारायण भक्ति संबंधी गीत
2. ब्रजवासी कृष्ण भक्ति गीत

कृष्ण नारायण महिमावर्णित गीतों में उल्लेख्य है --

'कारा-पाषाण भेदी जागो नारायन, जागो शंखचक्रगदापद्मधारी,

जय नारायण अनंत रूप धारी तिमिर विदारी अलख विहारी, आदि ।

नज़रुल द्वारा वर्णित कृष्ण के ब्रजलीलाओं का वर्णन देखकर सूरदास वर्णित कृष्णकाव्य आँखो के समक्ष सभास्यमान हो उठता है । कृष्ण की लीलाभूमि, झूलन उत्सव इत्यादि का सजीव वर्णन इनके गीतो में मिलते हैं । कृष्ण भक्ति गीत के कुछ उदाहरण इस प्रकार है -

'अमार नयने कृष्ण, आमार हृदये मन्दिरे घूमाय, आमि गिरिधारी साथे मिलिते चाई, एल नन्देर नन्दन नवघनश्याम, एस सुन्दर घनश्याम गिरिधारीलाल कृष्ण गोपाल, घनश्याम किशोर, चम्पाबने बेनू बाजे, तूमि आनन्द घनश्याम, आमार कालो रूपे जान ना डूबे, दोले निति नब रूपेर ढेऊ, नबघनश्याम मूरति मनोहर सुकोमल लाबनी तब श्याम, बाजिये बाँशी मनेर बने, बाहिर दूयार मोर बन्ध हे प्रिय, माधव बंधीधारी, श्रीकृष्ण नाम जप अविरराम,

श्रीकृष्ण नाम मोर जपमाला, श्रीकृष्ण नामेर तरीते, श्रीकृष्ण रूपेर ध्यान कर अनुक्षन, झूलन दोलाय दोले, झूलने झलिछे श्याम राय, झूलनेर हिन्दोले दोले, मग मनभबने झूलन दोलना ।'

नज़रुल के कृष्ण संबंधित अनेक भजनों में हिन्दुस्तानी भजन का प्रभाव भी ध्यातव्य है । इस प्रकार के गीतों को नज़रुल के भजन रूप में ही जाने जाते हैं । इनमें -- 'नन्ददूलाल नाचे छन्दताले, खेलो न तार आमार निये, तोमार आमार एई विरह, नाचो श्यामनटवर, नीलजमूना सलिल कान्ति चिकन घनश्याम, किशोर ब्रजगोपी चितचोर, ब्रजकूमार गिरिधारी श्याम, ब्रज गोपाल श्यामसुन्दर, भेङो ना भेङो न ध्यान, हे चिर सुन्दर विश्वराचर' इत्यादि ।

नज़रुल ने सूर्य, सरस्वती, राम, सीता आदि के विषय में भी भक्ति गीतों की रचना की हैं । सूर्य विषयक गीतों के अंतर्गत-'जवाकुसुम संकारा ऐ उदार एवं जवाकुसुम-सन्काश राजा अरूनरवि' आदि गीत हैं । सरस्वती भक्ति गीतों के अंतर्गत 'जय बानी बिद्यादायिनी, जय भारती श्वेतदलवासिनी, जय मर्त्येर अमृतवादिनी, नमस्ते वीना पुस्तक हस्ते देवी वीनापानी' आदि गीत पाए जाते हैं । राम भक्ति गीतों के अंतर्गत - नवदुर्बादल श्याम, मनजप नाम श्रीरघुपति राम, रघुकुलपति रामचन्द्र, श्रीरघुकुलपति राम आदि हैं । इनमें से एक उदाहरण है --

'मनजप नाम
श्रीरघुपति राम
नवदुर्बादल श्याम
नयन अभिराम ।'[45]

स्पष्ट है नज़रुल राम नाम को जपते हुए अपनी भक्ति भावना को सम्पुष्ट करते हैं । यहाँ

यह ध्यातव्य है कि निराला ने भी 'राम की शक्तिपूजा' नामक अपनी कालजयी कृति में राम का स्मरण किया है । यह गीत न होकर एक दीर्घ काव्य है । दोनों ही रचनाकारों ने राम नाम का स्मरण अपने-अपने ढंग से किया है । और यहाँ दोनों के भावों का साम्यगत रूप हमारे समक्ष प्रकट होता है ।

नज़रुल की भाँति निराला भी 'वर दे वीणा वादिनी में सरस्वती को स्मरण करते हुए पाए जाते है । इस प्रकार दोनों कवियों में भाव के साम्य धरातल लक्षित होते हैं ।

नज़रुल ने राम के साथ-साथ अपने गीतों में सीता का भी स्मरण किया है --

'कमलारूपिनी शक्तिस्वरूपिनी ।'

इस प्रकार बांग्ला भक्ति संगीत की धारा में नज़रुल ने व्यापक रूप से अनन्य गीतों की रचना की है । धर्मस्पृक्त ऐसे भक्ति गीतों का रूपायन अन्यत्र दुर्लभ है । वे ऐसे एक स्मरणीय व्यक्तित्व हैं जिनको अस्वीकार नहीं किया जा सकता ।

नज़रुल ने अपने भक्तिगीतों की धारा में इस्लाम संबंधी गीतों को भी स्थान दिया है। इन्हें - 'इस्लाम गान' या 'इस्लामी धर्मसंगीत' के नाम से अभिहित किया जाता है । अल्लाह, हजरत मुहम्मद, धर्मीय अनुष्ठान, विधिविधान, उपासना, उपासनालय आदि विभिन्न विषयों में नज़रूल ने इन गीतों का अवलम्बन किया है ।

अल्लाह के प्रशस्तिमूलक गीतों के अंतर्गत 'आल्लार नाम जनित भाई दिवस ओ राते, 'कारो भरसा करिसने तुई एक अल्लार भरसा कर , तोमार नाम नियेे खोदा आमि जे काज करि, तोमारि प्रकाश महान, देशे देशे गेये बेड़ाई तोमार नामेर गान इत्यादि गीत आते हैं । इनमें एक गीत प्रसिद्ध है --

'भोर होलो उठ जाग मुसाफिर

आल्लार बोल बोल ।'

अर्थात 'सुबह की पहली आभा भोर के रूप में प्रकाशमान हो चुकी है । इसलिए ओ मुसाफिर अल्लाह का नाम जप लो ।'

नज़रुल के ईद विषयक गीतों में -- 'आजि ईद ईद खूशीर ईद एल, ईदजोहार चाँद हासे, उकि इदेर चाँद मो, उरे ओ नतून ईदेर चाँद, नतून चाँदेर तकबीर शोनो इत्यादि प्रसिद्ध हैं ।

अन्होंने आजान एवं नमाज पर भी गीत लिखे हैं जो इस प्रकार है --

आँधार मनेर मिनारे मोर हे मूयाज्जिन दाऊँ आजान, दूर आजानेर मधूर धवनि, निखिल घूमे अचेतन सहसा सूनिलू आजान' ।

शोक के त्योहार मुहर्रम पर भी नज़रुल ने अनेक गीतों की रचना की है --

'एल शोकेर सेई महररम, बहिछे साहाराय शोकेरई लू हाओया, मोहररमेर चाँद एल एई कॉदाते फेर दुनियाय इत्यादि ।

अरब, मक्का, मदीना पर नज़रूल ने जिन गीतों की रचना की है वे इस प्रकार है --

'आमि जदि आरब हमाम मदिनारई पथे, आल्ला नामेर नाये पड़े जाब मदिनाय के जाबि मदिनाय आय, दूर आरबेर स्वप्न देखि बांग्लादेशेर कूटिर हते' इत्यादि ।

नज़रुल के इस्लामी गीतों का वैशिष्टय है, वाणी और सुर का आवेग, माधुर्य व सरलता । इन गीतों के अंतर्गत उनके लोकसंगीत की झलक भी प्रापत होती है । उनके द्वारा रचित इस्लामी गीत ऐतिहासिक महत्व के हैं क्योंकि इन्ही गीतों द्वारा वे काव्यगीति की धारा में इस्लामी भक्ति गीतों का प्रवर्तन करते हैं --

इस विषय में करूणामय गोस्वामी का मानाना है कि --

'बहु शताब्दी धरे परिवर्धित ओ बहु शाखायित हिन्दु धर्मसंगीतेर पाशापाशी परिशीलित इस्लामी धर्म संगीतेर क्षेत्रे जे शून्यता विराजित छिल ता तिनि दूर करेन ।'[46] अर्थात अनेक शताब्दियों से परिवर्धित एवं बहु शाखायित हिन्दु धर्म संगीत के पार्श्वती इस्लामी धर्म संगीत में जो शून्यता विद्यमान थी वह उन्होंने दूर किया ।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि निराला और नज़रुल के भक्ति गीतों में पर्याप्त साम्य हैं । कुछेक स्थानों को छोड़कर दोनों के भक्ति गीत एकही भाव के उद्‌गार को दर्शाते हैं । हॉलाकि यह बात ध्यान देने योग्य है कि जिस प्रकार नज़रुल ने हिन्दु एवं इस्लाम धर्म दोनों के भक्ति गीत लिखे हैं वहाँ निराला ने मात्र हिन्दु धर्म संबंधी गीत लिखे हैं परन्तु फिर भी दोनों ही कवि हमें भक्ति-भावना में ओत-प्रोत दिखाई देते हैं । चाहे वह सरस्वती वन्दना हो या फिर कृष्ण प्रशस्ति सभी क्षेत्रों में भक्ति - भाव का सम्पुन्ज उमड़ कर आता हुआ प्रतीत होता है । भाव और भक्ति के बहाव में दोनों ही कवि इस प्रकार बहते हुए प्रतीत होते हैं मानों वे भक्तिकाल के कवि सूरदास और तुलसीदास हों । दोनों ही के भक्ति भाव का मूल स्वर विश्वमंगल की भावना है ।

व्यक्तिपरक भाव

प्रत्येक मानव अपने हृदय के अंतर्ग्रथित भावों का प्रकाशन करना चाहता है । इनमें कुछ भाव समाज के विभिन्न पक्षों से जुड़े होते हैं तो कुछ अत्यंत निजी भाव । इन निजी भावों को हम व्यक्तिपरक भावों के अंतर्गत समायोजित करते हैं । इन भावों में वेदना, प्रेम, नैराश्यपूरित आदि भाव आते है ।

निराला की वेदनानुभूति एवं प्रणयानुभूति

वेदना या वेदन के कई अर्थ शब्दकोशों में प्राप्त हैं । विभिन्न संदर्भों में ये अर्थ

अपनी उपयोगिता प्रतिपादित करते हैं । वृहत हिन्दी-कोश में वेदना का अर्थ ज्ञान, अनुभूति, पीड़ा, दु:ख, प्राप्ति, सम्पत्ति, विवाह, उपहार, शूद्रा का उच्चतर वर्ण के पुरूष से विवाह, जताना है । वेदनी का अर्थ त्वचा और वेदक का जानने वाला, होश में लाने वाला है । इसी प्रकार वेदनीय का अर्थ पीड़ा, कष्ट देने वाला, जानने योग्य है । प्रस्तुत संदर्भ में वेदना का अर्थ पीड़ा है ।

पाश्चात्य कवि शेली के अनुसार 'Our sweetest songs are those, that tell us of saddest thought' वेदना शरीरिक हो या मानसिक सभी का सम्बन्ध मस्तिष्क से होता है । मस्तिष्क की वेदना शक्ति ही वेदना अनुभूति करती है । इस चेतना शक्ति के कारण ही जीवन के उत्थान-पतन और विकास प्रक्रिया का महत्व है । इसी कारण मनुष्य अपनी वेदना, कार्य-कलाप एवं दूसरों की वेदना और व्यवहार का अनुभव करता है ।

निराला का जीवन विपुल संघर्षों का आश्रयस्थल होने के कारण उनके काव्य में अनुभूत वेदना के प्रखर और मार्मिक चित्र विद्यमान है । जब कवि अपने निजी शारीरिक या मानसिक दु:खों को अपने काव्य में स्थान देता है तो यह वेदना उसकी व्यक्तिगत वेदना होती है । वास्तव में जो कवि अपनी रचना के माध्यम से समाज को शिक्षा प्रदान कर सके वही सही मायने में कवि के रूप में खरा उतरता है । निराला की सरोज-स्मृति इसी कोटि की रचना है जहाँ निराला ने स्वयं की वेदनानुभूति के माध्यम से समाज की विसंगतियों को उजागर किया है ।

अपनी रचनाओं के माध्यम से बार-बार अपनी वेदनानुभूति प्रकट करते हैं और जीवन के युद्ध को हार जाने की बात करते हैं --

'हो गया व्यर्थ जीवन

मैं रण मे गया हार ।'[47]

'परिमल' की रचनाओ से ही निराला के काव्य मे वेदना की सुस्पष्ट अनुभूति दृष्टिगत होती है --

'मैंने मैं शैली अपनायी,देखा दुखी एक निज भाई,

दुख की छाया पड़ी हृदय मे मेरे झट उमड़ वेदना आई ।[48]

'नयनो मे हेर प्रिये '[49] मे स्वर्गीया पत्नी का स्मरण, निशि-दिन तुम धूलि मे 'मलिन '[50] मे कवि अनुभव करता है कि अब तक जो कुछ भी उसने साहित्य तथासमाज को दिया, वह सब उसके भ्रमित मन की उपज थी, किन्तु दूसरे ही क्षण सावधान होकर सारे कृतित्व को वह अपने प्रिय के निमित्त अर्पित कर देता है ।

'हताश' मे कवि की वेदना का दिगन्तव्यापी रूप प्रकट हुआ है । निराला का अन्धकार सर्वत्र छाया हुआ है, प्रकाश की किरण का नाम नही । ऐसी दशा मे कवि उस निराशान्धकार को ही अपनी नियति स्वीकार करता है .... और अपने सारे प्रयत्नो को व्यर्थ उद्घोषित करता है --

'हो मेरी प्रार्थना विफल, हृदय-कमल मे जितने दल,

मुरझाएँ, जीवन हो म्लान, शून्य सृष्टि मे मेरे प्राण

प्राप्त करे शून्यता सृष्टि की मेरा जग को अन्तर्धान [51]

'सरोज-स्मृति' मे कवि-जीवन की सम्पूर्ण वेदना घनीभूत होकर हाहाकार करने लगती है । सरल भाषा मे अभिव्यक्त संघर्ष और जय-पराजय की जो स्रोतस्विनी इस कविता मे प्रवाहित हुई है, उससे मन के सारे कलुष धुल जाते हैं और करूणा के ऑसुओ से क्लिन्न होकर मन विलाप करने लगता है । सरोज की मृत्यु का स्मरण कर निराला अपनी असमर्थता के अह

प्रसंग उठाते है । और कहते है --

'तू गयी स्वर्ग क्या यह विचार जन पिता करेंगे मार्ग पार
यह अक्षम अति, तब मैं सक्षम तारूँगी कर गह दुस्तर तम ?[52]

अपनी पुत्री को पालने की अक्षमता व्यक्त करते हुए वे आगे लिखते हैं --

'धन्ये, मैं पिता निरर्थक था, कुछ भी तेरे हित कर न सका,
जाना तो अर्थागमोपाय, पर रहा सदा संकुचित काय,
लखकर अनर्थ आर्थिक पर पर हारता रहा मैं स्वार्थ समय,
शुचिते, पहनाकर चीनांशुक रख सका न तुझे अतः दधिमुख ।

निराला धनोपार्जन कर सकते थे, पर उनकी यही शर्त थी कि वे दुर्बलों का अधिकार न छीने---

'क्षीण का न छीना कभी अन्न, मैं लख न सका वे दृग विपन्न
अपने आँसुओं अतः बिम्बित देखे हैं अपने ही मुख-चित ।'

वेदना को रोकने के लिए ही कवि गीतों की सृष्टि करना चाहता है --

'गीत गाने दो मुझे तो वेदना को रोकने को
चोट खाकर राह चलते होश के भी होश छूटे,
हाथ जो पाथेय थे, ठग ठाकुरों ने रात लूटे,
कण्ठ रूकता जा रहा है, आ रहा है काल देखो ।'[53]

जीवन की पीड़ा को अनुभव करते हुए कवि उसकी सार्थकता को समाप्त घोषित करते हैं---

'दुखता रहता है जीवन,
पतझड़ का जैसा वन-उपवन।[54]

निराशा से जूझते हुए कवि को ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी सृजन-शक्ति कम हो रही है----

'बन्द हुई जब उर की भाषा,
समय-विजय की तब क्या आशा,
बढ़ी नित्य-प्रति और निराशा,
बिना डाल कलि क्या वन आती ।'[55]

मन की निराशा और अधिक घनीभूत हो उठती है जब वे अपनी प्रार्थना को भी व्यर्थ घोषित करते हैं --

'बादल रे, जी तड़पे ।
किये उपाय सैंकड़ों तन के
मन के चरण मिले सज्जन के,
व्यर्थ प्रार्थना जैसे अब है,
पंजर-पिंजर करके ।'[56]

मानों निराला का सम्पूर्ण जीवन विषाक्त हो उठा हो ---

'भग्न तन, रूग्ण मन
जीवन विषष्ण वन ।'[57]

मृत्यु से पूर्व निराला की मानसिक अवस्था की आकुलता प्रस्तुत काव्य में उद्धृत है--

'पत्रोत्कण्ठित जीवन का विष बुझा हुआ है,
आशा का प्रदीप जलता है हृदय-कुंज में,
अन्धकार-पथ एक रश्मि से सुझा हुआ है,
दिङ्निर्णय ध्रुव से जैसी नक्षत्र-पुंज में ।'[58]

आलोचकों ने निराला को पागल माना है । महापंडित राहुल सांकृत्यायन इस तथ्य का खण्डन करते हुए लिखते है -- 'उनके कुछ असंतुलित व्यवहारों के कारण कुछ लोगों ने उनहें पागल समझने का भ्रम किया है पर उन्हें पागल कहना उचित न होगा । यहाँ यह स्मरणीय है कि जीवन के अन्तिम क्षणों तक अपने परिचितों को पहचानते रहे हैं और अन्तिम वर्षों तक कविताएँ भी लिखते रहे हैं, अतः उनके कार्यों को निराला तो कहा जा सकता है, लेकिन उन्हें पागल नहीं माना जा सकता ।'[59]

निराला के प्रणयनुभूति में मुक्त-प्रेम की प्रधानता है । उनकी 'इस नवीन प्रेम-भावना में रीतिकालीन विलासिता तथा द्विवेदी कालीन जड़ता एवं नीरसता के प्रति तीव्र विद्रोह की भावना है । प्रेम का यह रूप कहीं तो मांसल एवं स्वस्थ है तथा कहीं वायवी और अतीन्द्रिय ।'[60]

निराला के मुक्त प्रेम में इतना आकर्षण है कि प्रसाद, पंत और निराला, 'तीनों कवियों में प्रसाद जी प्रेम की स्थूल से सूक्ष्म की ओर ले गये हैं, पन्त जी यथार्थ से कल्पना की ओर, और निराला में भी आलोक तत्त्व की कमी नहीं है, पर पन्त से प्रसाद का और प्रसाद से निराला का प्रणय निवेदन आकर्षक लगता है ।'[61] किन्तु निराला की प्रेमानुभूति ने कभी अपनी मर्यादा को टूटने नहीं दिया । निराला के तारूण्य की एक दूसरी बड़ी विशेषता उनका श्रृंगार है परन्तु उन्होंने उसे कहीं भी स्खलित नहीं होने दिया है । वे बराबर दिव्य श्रृंगार ही देते रहे है ।

'गीतगुंज में कुछ ऐसे विलक्षण प्रेमगीत हैं, जिन्हें निराला की उत्कष्ट सृजनात्मक प्रतिभा के उदाहरण के रूप में रखा जा सकता है । ऐसे ही श्रेष्ठ प्रेमगीत के रूप में हम निम्नलिखित पंक्तियों को कह सकते हैं --

'जी में न लगी जो विकल प्यास,

आँखों न देखने आना तुम ।
भरकर न रही जो छवि उदास
तो कभी न उस घर जाना तुम ।
x x x x
कलियों के हारों बहु प्रकार,
उर लहरे गंध, बहे ब्यार,
यदि मिला न तुमसे हृदय छंद,
तो एक गीत न गाना तुम ।'[62]

प्रस्तुत गीत में प्रेम के आधुनिक बोध के साथ-साथ निराला की काव्य भाषा की नवीनता भी विशेष रूप से द्रष्टव्य है । गीत के अंतिम चरण की तीसरी पंक्ति में 'हृदय-छंद' पद का जो प्रयोग निराला ने किया है, वह उनकी भाषिक-क्षमता का एक अद्भुत प्रमाण है । प्रेम के रागात्मक ऐक्य के लिए ''हृदय-छंद'' उद्भुत है और निराला की नई उद्भावना है । उनका प्रेम भोग की अपेक्षा त्याग के अधिक निकट है । उन्होंने शारीरिक आकर्षण को तुच्छ घोषित किया और लिखा --

'मन का जड़त्व था,
दुर्बल वह धारणा चेतन की
मूर्छित लिपटती थी जड़ों से बारम्बार
सब कुछ तो था असार
अस्तु, वह प्यार ।'[63]

निराला ने प्रेयसी के प्रेम का भी सहज-स्वभाविक वर्णन किया है । हँसती, भयभीत होती प्रेयसी का इतना सुगढ़ चित्रण अन्यत्र दुर्लभ है --

'स्पर्श से लाज लगी,

...... चुम्बन चकित चतुर्दिक चंचल,

हेरफेर मुख कर बहु सुख छल,

कभी हास फिर त्रास सांस बल

उर सरिता उमगी ।'[64]

इस प्रकार निराला अपने गीतों के माध्यम से प्रेम का सहज किन्तु प्रखर चित्रण करते हैं । जिस प्रकार उनकी वैयक्तिक वेदनानुभूति का स्वरूप प्रखर है उसी प्रकार उनके प्रणय का स्वरूप भी दिव्य है ।

नज़रुल की वेदनानुभूति एवं प्रणयानुभूति

प्रेम मानवजीवन की एक प्रबल एवं मौलिक अनुभूति है और यही कारण है मानव मन एवं जीवन को पहचानने वाले इस कवि ने प्रेम को अपनी रचनाओं मे स्थान दिया है । प्रेम के महिमामन्डित स्पर्श में ही मनुष्य स्वयं को खोजना है । प्रेम भिन्न-भिन्न रूपों मे प्रकाशित होता आया है । प्रेम एकान्त एवं व्यक्तिगत अनुभूति होने पर भी समाज के द्वारा यह व्यक्तिगत अनुभूति प्रभावित और रूपायित होता है । प्रेम देहनिर्भर और देहगत होने पर भी देह के पार ही इसकी यात्रा है । प्रेम मे ही मिलन का आनन्द और विरह की यन्त्रणा समाहित है ।

नज़रुल रोमान्टिक कवि है, इसी कारण उनके काव्य में वेदना विलास प्रबल है । उनके द्वारा रचित 'व्यथार दान' , 'रिक्तेर बेदन' और 'बॉधनहारा' इन तीनों रचनाओ में नज़रुल अभिमानी ओर दुःखविलासी प्रतीत होते हैं । नज़रुल के लिए वेदना महान चेतना स्वरूप है ।

'दोलनचाँपा' के अंतर्गत पथहारा, बरसा, वेदना, अभिमान, वेदना-मनि, बिबागिनी, पथिकप्रिया, बादलदिने, 'छायानट' का व्यथानिशिथे और चक्रवाक के अंतर्गत ओ गो चक्रवाकी तोमारे पड़िछे मने, बादलरातेर पाखी, स्तब्धराते, कर्नफूली, मिलनमोहनाय, तूमि मोरे भूलियाछ, हिंसातुर, आड़ाल, नदीपारेर मेये, चक्रवाक इत्यादि कविताओं में कवि के अन्तःस्थल का वेदना-विरह भाव ध्वनित होता है ।

कवि अपनी विरह भावना को कभी कोयल तो कभी सूखे पुष्प के माध्यम से दर्शाते हैं --

'आजो काँदे कानने कोयेलिया ।
चम्पा कुन्जे आजो गुन्जे भ्रमरा, कूहरिहे पापिया ।।
प्रेम-कुसुम सूकाइया गेल हाय
प्रान प्रदीप मोर हेर गो निभे जाय ।'[65]

अर्थात आज भी बगीचे का कोयल रोता है, आज भी चम्पा कुन्ज में भ्रमर गुन्जन करता है । प्रेम कुसुम सूख गया है और प्राण प्रदीप भी बुझ गया है ।

नज़रुल अपने गीतों के माध्यम से अपनी वेदना को प्रकट करते हुए कहते हैं कि 'मेरी कथा तो मेरे गीतों के भीतर समाहित है ; उस व्यथा को जानने के लिए कौन आ खड़ा हुआ है । मेरे शून्य मन का कोई भी साथी नहीं है । इसी कारण गीत गाकर दिन-रात व्यतीत करता हूँ --

'आमार कथा लूकिये थाके
आमर गानेर आड़ाले ।
सेई कथाटि जानार लागि ।
के गो एसे दाड़ाले

शून्य मनेर नाई केह मोर साथी

गान गेये ताई काटछे दिबाराति ।'[66]

इसी वेदना से अभीभूत हो उठे नज़रूल कहते हैं कि अपनी गीतों की माला मैं किसे दान करूँ । क्योंकि इनमें मेरा करूण अभिमान समाहित है ...... मेरी बातों में शूलों की वेदना है........

'आमार गानेर माला अमि करबो कारे दान ।

मालार फूले जड़िये आछे करूण अभिमान ।।

चोखे मलिन काजल लेखा, कन्ठे काँदे कुहेलिका ।

कथाय आमार काँटार वेदन........... ।[67]

और इसी वेदना का घनीभूत स्वरूप तब लक्ष्य होता है जब कवि स्वयं को चन्द्रमा घोषित न कर अभिश्राप घोषित करते हैं और शून्य गगन में निराशा मन के साथ करूण विलाप करते हैं ----

'आमि चॉद नहि, चाँद नहि अभिशाप ।

शून्य गगने आजो निराशाय आकाशे करि विलाप ।'[68]

निराला की भाँति नज़रुल ने भी अपने चार वर्षीय पुत्र को खोया था । सही समय पर इलाज न मिल पाने पर बुलबुल ने अपना प्राण त्याग दिया था । नज़रुल बुलबुल को एक बार फिर अपने समक्ष देखना चाहते थे । पुत्र को पुनः अपने जीवन में पाने के लिए एक पिता का हृदय आर्तनाद कर उठा --

'फिरे आय ओरे फिरे आय

शून्य ए बूके फिरे आय ।

सन्ध्या घनाय तूई कथाय

ओरे पाखी मोर नीड़े आय ।।

व्यथार पाथारे कॉदी पथहारा,

तोरे जे हरिल नियो

से हरिरे शून्य ए मन्दिरे आय ।।'[69]

यहॉ नज़रुल बुलबुल को एक पक्षी शावक मानते हैं और स्वयं के घर को उसका नीड़ । वे अपने मृत पुत्र से याचना करते हैं कि लौट आओ, तुम लौट आओ, इस शून्य हृदय मे लौट आओ । सन्ध्या हो चुकी है, तुम कहॉ हो । ओ पक्षी मेरे घोसले मे लौट आओ । ओ ध्रुवतारा तुम्हे खोकर मैंने स्वयं का पथ खो दिया है । इसलिए इस शून्य मंदिर मे पुनः लौट आओ । इन पंक्तियो मे वेदनानुभूति अपने चर्मोत्कर्ष पर है ।

नज़रुल जानते थे कि यह सृष्टि नश्वर है । कुछ समय उपरान्त लोग सभी को भूल जाते है । इसी कारण वे लिखते हैं ---

'आमि जे दिन रईब ना गो लइब चिर-बिदाय

चिरतरे स्मृति अमार जानि मूछे जाबे हाय ।।

x x x x

एई धरनीर खेला-हारे मने राखे के कारे ।[70]

अर्थात जब मैं नहीं रहूँगा और हमेशा के लिये विदा ले लूँगा तब मेरी स्मृति भी मिट जाएगी........ यह इस धरणी का ही खेल है - कौन किसे याद रखता है ?

प्रेम परक कविताओ का वैशिष्ट्य अतृप्ति और वेदना होती है और यह तथ्य नज़रुल के कविताओ मे प्रकाशमान है । उनकी कविताओ मे प्रेम का आवेग जितना है, उतना प्रेम का तत्व या दर्शनचिन्त नहीं है । नायक-नायिका के प्रेम मे नज़रुल के लिए हृदय सर्वस्व है । नज़रूल के लिए प्रेम आत्मदान और आत्मत्याग है । नज़रुल की दृष्टि मे अक्ष्य एवं अमर

है । प्रेम का स्मृतिचिन्ह प्रकाशित करते हुए नज़रुल लिखते हैं --

'मने पड़े सेदिन तूमि घूमिये छिले अघोर घूमे,

एई दिन कांगाल एसेछिल तोमार पायेर आंगुल चूमे ।'[71]

अर्थात मुझे वे दिन याद है जब तुम निद्रामग्न थीं और कंगाल रूपी मैंने तुम्हारे पैरो के *अंगुलियो को चूमा था ।*

प्रणय का इतना सहज सुंदर चित्रण अन्यत्र दुलर्भ है । नज़रुल ने विपुल प्रेमगीतो की रचना की है । इनमे वैयक्तिक प्रेमभाव को दर्शाती है यह काव्यगीति --

'मम मायामय स्वप्ने कार बॉसी बाजे गोपोने

विधुर मधुर सूरे के एल, के एलो सहसा ।

जेन स्निग्ध आनन्दित चन्द्रालोके

भरिल आकाश हासिल तमसा ।'[72]

अर्थात मेरे मायामय स्वप्न मे किसकी बॉसुरी बज उठी है विधुर मधुर स्वर मे कौन सहसा आ गया है । मानो स्निग्ध आनन्दित चन्द्रलोक से आकाश भर गया हो और तमस (रात्री) हॅसने लगी हो ।

रविन्द्रनाथ की तरह नज़रुल की प्रेमचेतना आदर्शाश्रित नही है । उनकी प्रेमकांक्षा साधारण मनुष्य को दर्शाती है । वहॉ ईर्ष्या है, व्यथा है । 'आलता स्मृति' कविता मे नज़रुल कठोर रूप से प्रणयिनी पर आक्रमण करते हैं --

'मर्ममूले हानले आमाय अविस्वाशेर तिक्ष्ण धूरि

से खून सखाय अर्ध्य दिले युगलचरण पद्मे पूरि ।

आमार प्राणेर रक्त कमल

निड्ड़े हलो लाल पतदल,

सेई सतदल दिये तोमार नतून राजाय वरेछिल-

आलता सेदिन परे छिल ।'[73]

नज़रूल अपनी प्रेमिका को अविस्वास रूपी तीक्ष्णचाकू मारने पर आरोपित करते हैं ।

नज़रुल की समाजचेतन कविसत्ता प्रेम के दिगन्त में होने पर भी भावप्रवण है । समग्र विश्व का प्रेम मानों उनकी कविताओं में झंकृत होता है । यही विजन्नता निःसंगता और वेदनाबोध ही उनकी काव्यगीति को विशिष्ट बनाती है ।

अपने हृदय भावों को अभिव्यक्त करने के लिए नज़रुल ने हिन्दी और उर्दू गज़लों का भी सहारा लिया है । एक प्रसिद्ध प्रेमगीत इस प्रकार है --

'मेरा दिल बेताब किया तेरे आब्रुये कमान

ज्वाला जाता है इश्क मे जान परेशान ।'[74]

निराला और नज़रुल दोनों ने जीवन के वेदनातप्त धरातलों एवं प्रेमविह्वल क्षणों का अनुभव किया था । इसी कारण दोनों की व्यक्तिगत अनुभूतियाँ बहुत कुछ समान प्रतीत होती है । दोनों ही अपने गीतों के माध्यम से यह कहते सुनाई पड़ते हैं कि जो वेदना वे लोगों के समक्ष व्यक्त न कर पाए उसकी गूँज उनके गीतों में विद्यमान है । प्रेम की परिभाषा भी दोनों समान धरातल पर देते हुए प्रतीत होते है । सहज, सरल प्रेम को अभिव्यक्त करते इन दोनों कवियों ने प्रेम के भोग पक्ष की अपेक्षा त्याग पक्ष पर अधिक बल दिया है । अतः कुछेक स्थलों को छोड़कर दोनों कवियों की व्यक्तिगत भावविह्वलता समान धरातलों को छूती प्रतीत होती है ।

लोक भावना

'लोक' शब्द संस्कृत के 'लोक दर्शने' धातु से 'धञ' प्रत्यय करने पर निष्पन्न हुआ है । इस धातु का अर्थ है देखना । अतः लोक शब्द का अर्थ 'देखने वाला' होता है ।

इस प्रकार वह समस्त जन-समुदाय जो इस कार्य को करता है 'लोक' कहा जा सकता है । 'लोक' शब्द से ही हिन्दी के 'लोग' शब्द की व्युत्पत्ति मानी जाती है । जिसका तात्पर्य है सर्वसाधारण जनता । अतः 'लोक' शब्द का अभिप्राय उस समस्त जनसमूह से है जो किसी देश में निवास करता है । डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय 'लोक साहित्य की भूमिका' नामक पुस्तक में ऋगवेद के पुरूष सूक्त का उद्धरण देते हुए इस शब्द की प्राचीनता पर बल देते हैं --

'नाभ्या जसींदतरिक्षं शीर्ष्णो द्यौ समवर्तत ।

पद्भ्याँ भूमिर्दिदशः श्रोत्रात्तयालाकां अकल्पयन ।।'[75]

यहाँ 'लोक' शब्द स्थान वाचक संज्ञाभिधान धारण करता है । उपयुक्त संदर्भ में 'तथालोकान अकल्पयन' का अर्थ है 'इस तरह से लोकों की कल्पना की हे ।' इस प्रकार यह स्पष्ट है कि 'लोक' शब्द का प्रयोग वेदों के काल से होता चला आया है ।

'लोक शब्द का एक अर्थ अवैदिक भी है । अवैदिक इस अर्थ में कि परम्परा से चला आता आचरण - व्यवहार, रीति, नीति, जो लोक विहित नहीं है, किन्तु वेद ने जिसका विरोध भी नहीं किया है, का अंतर्भाव लोक में हुआ है ।'[76]

'संस्कृत कोश वाचस्पत्यम के अनुसार लोक-भुवन, दर्शन, जन तथा भाव इत्यादि को प्रकट करता है ।'[77]

'लोक' शब्द को विभिन्न विद्वानों ने कई रूपों में व्याख्यायित किया है ।

डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार, ''लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है जिसमें भूत, भविष्य और वर्तमान संचित है ।''[78]

डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय के अनुसार - 'आधुनिक सभ्यता से दूर, अपने प्राकृतिक परिवेश में निवास करनेवाली तथाकथित अशिक्षित एवं असंस्कृत जनता को लोक कहते हैं

जिनका आचार-विचार एवं जीवन परम्परायुक्त नियमों से नियन्त्रित होता है ।[79]

वस्तुतः इस प्रकार के उदाहरण से 'लोक' की सटीक अवधारणा भ्रमित होती प्रतीत होती है । 'लोक' गॉवारपन मूर्खता, पुरानापन, अनपढ़ या अज्ञान का सूचक न होकर सहजता, मौलिकता, सच्चाई एवं वास्तविकता का सूचक होता है । लोक किसी 'डर' से बंधा नहीं है बल्कि उन्मुक्तता का सूचक है ।

'लोक चिन्तन की वह अवस्था है जो औपचारिक वाह्यावृत व्यवहार से मुक्त होकर मूल अथवा मौलिक अथवा प्राकृतिक अवस्था से अपने को सम्पृक्त करता है ।' 'मौखिकता लोक का स्वाभाविक एवं आवश्यक तत्त्व है । इसका आधार व्यक्ति की सतत् प्रवाहमान चिन्ताधारा है जिसमें निरन्तर परिवर्धन परिवर्तन होता रहता है ।'[80]

लोक में मौलिकता और निजत्व का होना अनिवार्य है क्योंकि निजत्व कभी पुराना नहीं होता । लोक वास्तविकता की खोज है, व्यवधानों, संकोचों और निषेधों के खिलाफ है । लोक विराट है । लौकिकता में व्यक्ति केन्द्र होता है जबकि लोक में सामुहिक शक्ति का सन्निवेश होता है । लोक में औपचारिकता नहीं होती बल्कि चेतना की आनन्दात्मकता का उन्मेष होता है । यह निरन्तर विकासशील है । इसमें रूचि, मूल्य परम्परा, मान्यता आदि का सन्निवेश होता है । लोक प्रगतिशील होता है ।

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार -- 'लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम से न लेकर नगरों एवं गाँवों में फैली उस समूची जनता से लिया जाता है जो परिष्कृत, रूचिसम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन की अभ्यस्त होती है ।'[81]

निराला और नज़रुल दोनो ही लोक कवि थे लोक की भावनाओं रीति-रिवाज, लोक संस्कृति को जितना इन दोनों कवियों ने परखा था उतना ही लोक जीवन के मध्य

स्वयं भी जिया था ।

नज़रुल तो बचपन से ही 'लेटो नाचदल' के साथ लोक समूहो के मध्य भिन्न-भिन्न स्थानो मे जाते रहे थे । निराला ने भी मेदिनीपुर ओर उत्तरप्रदेश के लोक समूह को भलीभॉति परखा था । इसी कारण उनकी रचनाओ मे लोकजीवन सजीव हो उठा है ।

निराला के गीतिकाव्यों में लोकभाव

निराला ने अपने गीतो मे लोक जीवन के महत्वपूर्ण पक्षो को उजागर किया । सीधी-सादी लोकभाषा का प्रयोग कर वे लोक जीवन पर पाठक के समक्ष सहज रूप मे प्रकट करते हैं । निराला द्वारा प्रयुक्त लोकभाषा की जो मिठास है वह देखते ही बनती है--

'धिक मंद, गरजे बदरवा,
चमक बिजुली डरपावे,
सुहावे सघन झर, नखा,
कगरवा - कगरवा ।'[82]

ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रजभाषा मे रचे हुए इस संगीत मे 'नखा' कहीं गढाकोला के आस-पास से लहराता हुआ पहुॅच गया है ।

इसी प्रकार का एक प्रयोग गीतगुंज के 25 वे गीत मे है --

'धिक मनस्सब, मान गरजे बदरवा ।
झूले झिले, गान सरजे बदरवा ।
चीर के धनुष के तीर छूटे छटे,
बूॅद के वारि के वसन बूटे बटे,

गले के चले गायन, चरायन पटे,

पेड़ के तल, अतल, लरजे बदरवा ।'[83]

'बेला' के गीत भी लोकजीवन में रचे बसे हैं । इनकी भाषिक संरचना भी लोकगीतों की तरह ही है । वस्तुतः भाषा का यह रूप अणिमा के गीतों से ही प्रारम्भ हो जाता है । 'छाये आकाश में' इसी प्रकार का एक उदाहरण है --

'छाये आकाश में काले-काले बादल देखे,

झोंके खाते हवा में सरसी के कमल देखे ।

कानों में बातें बेला ओर जुही करती थीं,

नाचते मोर, झूमते हुए पीपल देखे ।'[84]

कहीं-कहीं निराला अपनी बात को कहने के लिए उर्दू बहरों का भी प्रयोग करते है --

'अपने को दूसरा न देख, दूसरे को अपना न कह ।

सपने को कल्पना न मान, कल्पना को सपना न कह ।'[85]

बेला के सहज, सरल आत्मीय गीत एक ओर 'लोक' परम्परा की सुगंध को बिखेरते हैं तो दूसरी ओर समाज की विडम्बनापूर्ण स्थिति पर कटाक्ष करते हैं --

'जल्द-जल्द पैर बढ़ाओ, आओ, आओ

आज अमीरों की हवेली

किसानों की होगी पाठशाला,

धोबी, पासी, चमार, तेली

खोलेंगे आँधेरे का ताला,

एक पाठ पढ़ेंगे, टाट बिछाओं ।'[86]

इस गीत में सामाजिक मानस को अत्यंत सहज, सरल भाषा में प्रस्तुत किया गया है ।

इसी कारण यह गीत लोकगीतों की भूमि से दूर नहीं प्रतीत होता ।

इसी प्रकार गीतिका के एक गीत में वे होली का चित्रण करते हुए नायिका की स्थिति का वर्णन करते हैं --

'नयनों के डोरे लाल गुलाल-भरे, खेली होली ।'[87]

लोकगीतों के धुनों को भी निराला ने खूब रखा, पहचाना था । जहाँ एक ओर वे इन गीतों में ठेठ देसी शब्दों का जमकर प्रयोग करते हैं वहीं दूसरी ओर लोकगीतों के ढाँचे का सुगढ़ प्रयोग करते हैं । टेक और अन्तरे का विधिवत निर्वाह भी करते हैं ।'नए पत्ते' में प्रकाशित 'गर्म पकौड़ी' ऐसा ही एक गीत है --

'गर्म पकौड़ी-
ए गर्म पकौड़ी
तेल की भुनी,
नमक मिर्च की मिली,
ए गर्म पकौड़ी ।'[88]

यह गीत बहुत कुछ उन गीतों की तरह है जो विशेष अवसरों पर उत्तर प्रदेश में गाया जाता है । लोकगीतों पर आधारित एक और रचना है 'खून की होली' । इस रचना में लोक धुन स्पष्टतः नज़र आता है --

'रंग गये जैसे पलाश,
कुसुम किंशुक के, सुहाये,
कोकनद के पाये प्राण,
खून की होली जो खेली ।
निकले क्या कोंपल लाल,

फाग की आग लगी है,

फागुन की टेढ़ी तान,

खून की होली जो खेली ।'[89]

'अर्चना' के अधिकतर गीत लोकभूमि पर ही रचित है । इनमे कई छंद सीधे लोकजीवन ओर लोकगीतों के बीच से उठाकर लाये गये हैं --

'तुम ही हुए रखवाल

तो उसका कौन न होगा ?

फूली-फली तरु-डाल

तो उसका कोन न होगा ?

कान पड़ी है खटाई

तो उसकी कौन मिताई

और हिये जयमाल

तो उसका कौन न होगा ?'[90]

प्रस्तुत पंक्तियों में अवध और भोजपुरी के पश्चिम क्षेत्र के बीच गाए जाने वाली एक प्रचलित लोकधुन का स्पष्ट आभास प्राप्त होता है । लोकधुन की पूरी सजीवता इन पंक्तियों में दिखाई पड़ती है - चाले लय विधान हो या फिर कथन भंगिमा ।

कुछ गीतों में निराला के लोक धुन के साथ लोक प्रचलित मुहावरों का भी प्रयोग करते हैं जो ग्राम्य लोक जीवन और जन बोली की याद दिलाते हैं --

'खेलूँगी कभी न होली

उससे जो नही हम जोली ।

x x x x

जिनसे होगा कुछ नाता,
उनसे रह लेगा माथा
उनसे है जोड़-जॉता
मैं मोल दूसरे मोली ।'[91]

अर्चना में ऐसे अनेक गीत हैं जिनमें लोक धुन पर आधारित लय, छंद का प्रयोग किया गया है --

'छोड़ दो न छेड़ो टेढ़े
कब बसे तुम्हारे खेड़े ?
यह राह तुम्हारी कब की,
जिसको समझे हम सबकी ?
गम खा जाते हैं अब की,
तुम खबर करो इस ढब की
हम नहीं हाथ के पेड़े ।'[92]

यही नही, निराला ने लोक-गीतों में पाए जाने वाले प्रेम की सरसता और टटकेपन को भी व्यक्त किया है । लोकगीतों का बाहरी प्रभाव ही नहीं अपितु उसमें अंतर्भुक्त आत्मा को पकड़ने की कोशिश करते हैं । इसी कारण उनके गीतों में लोकजीवन के तत्त्व घुले-मिले जान पड़ते हैं ---

'प्रिय के हाथ लगाये जागी,
ऐसी मैं सो गयी अभागी ।
हर सिंगार के फूल झर गये,

कनक-रश्मि से द्वार भर गये ।
चिड़ियों के कल कण्ठ मर गये,
भस्म रमाकर चला विरागी ।'[93]

यहाँ 'भस्म रमाकर चला विरागी' जैसे प्रयोग लोकजीवन में परम्परा से चली आ रही है । 'अर्चना' का एक प्रसिद्ध गीत है 'बाँधो न नाव इस ठाँव' । इस गीत में बंगाल के भटियाली गीत की छाया दृष्टिगत होती है 'बंधु' बंगाल में मित्र और प्रिय के रूप में भी किया जाता है और निराला ने अपने गीत में इस प्रकार के आंचलिक प्रयोग को बाखूबी निभाया है--

'बाँधो न नाव इस ठाव, बंधु ।
पूछेगा सारा गॉव, बंधु ।
यह घाट वही जिस पर हँसकर,
वह कभी नहाती थी धँसकर,
आँखे रह जाती थी फँसकर,
काँपते थे दोनों, पाँव बंधु ।'[94]

दूधनाथ सिंह मानते है -- 'कविता को पारम्परिकता से मुक्त करने के लिए निराला ने उसे स्थानीयता और भोलेपन के ताजे रंगों के कई-कई 'कोट्स' चढ़ा दिए हैं ।'[95]

डॉ. रामविलास शर्मा उनके विषय में लिखते हैं-- 'जब वह गाते नहीं थे, बुदबुदाते थे, दूसरों से अंग्रेजी में बातें करते थे, तब उनके मन में लोक धुने गूँजती रहती थी ।'[96]

निराला के लोकगीत भाव की गहनता और गीतात्मकता कला की उत्कृष्टता का श्रेष्ठ उदाहरण है । लोकजीवन के कथानक रूढ़ियों का इस्तेमाल करते हुए वे कभी-कभी दुरूहता का परिचय देते हैं पर उनके गीतों की प्रवाहमयता 'लोक' को हमारे नेत्रों में

साक्षात प्रस्तुत कर देते हैं । डॉ. रामविलास शर्मा इस विषय मे लिखते हैं --

'यद्यपि निराला दुरूह शब्द-शिल्पी माने जाते हैं, फिर भी छायावादी कवियो मे लोकगीतो का सबसे अधिक प्रवाह उन्ही पर है ।.......... निराला लोकगीतो का अनुकरण नही करते; उनकी धुन, चित्रण का ढंग, शब्दयोजना, वातावरण अपनाते हुए, उन्हे अपने साहित्य के कलात्मक स्तर तक उठा ले आते हैं ।'[97]

नज़रुल की लोकभावना

नज़रुल गीति का प्रधान-तत्त्व रागसंगीत होने पर भी उन्होने 'लोक' को ध्यान मे रखते हुए भी अनेक रचनाएँ की हैं । उनके द्वारा रचित दो विख्यात लोकगीत है -- 'पद्मार ढेउरे'; जो कि भटियाली सुर मे रचित है एवं 'चोख गेल चोख गेल केन डाकिस रे' ;जो झूमुर सुर मे रचित है ।

नज़रुल ने लोकगीतो मे झूमुर, भाटियाली, बाउल इत्यादि सुरो का समायोजन किया है ।

झूमुर सुर मे रचित गीतो मे -- 'एलो खोपाय परिये दे, उ दूखेर बन्धूरे छेड़े कोथाय गेली, कन्यार पायेर नूपुर बाजेरे, झूमुर नाचे डूमुर बेधे डूमुर गाछे घूँघुर बेधे पाय लो, नाचेर नेशाय घोर लेगे छे, बॉशी के बाजाय बने, मादल बाजिए एलो बादला मेघ इत्यादि हैं ।

बांग्ला लोक संगीत की धारा मे भाटियाली और बाउल सुरो पर तो अनेक रचनाएँ की गई है परन्तु झूमुर का उल्लेखनीय व्यवहार नज़रुल के गीतो मे ही पाया जाता है । नज़रुल स्वंय इसी प्रकार के अंचल के वासी थे । इसी कारण उन्होने स्वतःस्फूर्त रूप

से कई झूमुर लोकगीतो की रचना की । एक उदाहरण दृष्टव्य है --

'राडा माटीर पथे लो, मादल बाजे
बाजे बॉशेर बॉसी ।
बॉसी बाजे बूकेर माझे लो,
मन लागे ना काजे लो ।।'[98]

अर्थात रंगीन मिट्टी के पथ पर ढोल बॉसुरी बज रहे हैं । इससे हृदय मे भी बॅसी बजने लगी है जिससे मन किसी काम मे नही लग रहा है । यहॉ 'लो' शब्द के प्रयोग से लोक भाषा का मिठास उभर आया है । झूमुर गीतो मे एक प्रकार का आनन्द विद्यमान रहता है; एक प्रकार का ताल रहता है जो मन को अचानक झुलायमान कर देता है । यह संगीत टुकड़ो मे रचित होता है । इसमे ऐसा संगीत रहता है जिसे सुनकर मन नृत्य करने को उद्वेलित हो उठता है । नज़रुल ने कोयले के खानो का जीवन, मानव-मानवी का प्रेम, राधाकृष्ण प्रेम कथा, प्राकृतिक शोभा जैसे अनेक विषयो मे झूमुर लोकगीतो को स्थान दिया है ।

नज़रुल ने अपने लोकगीतो मे बाऊल संगीत को भी स्थान दिया है । इस प्रकार के गीतो मे एक अनिःशेष विच्छेद बोध, परम प्रिया के साथ मिलन का एक तीव्र आवेग विद्यमान रहता है । भक्ति, वैराग्य, आत्मनिवेदन विच्छिन्नताबोध आदि इस गीत के मूल तत्व है ।

काज़ी नज़रुल इस्लाम ने इस प्रकार के अनेक गीतो की रचना की । इसके अंतर्गत ---

'असीम आकाश हातड़े फिरे खूजिस रे तुई काके,
आमि जूरि-छेड़ा घूड़िर मतन चलछि उड़े प्रान सई,

आमि बाऊल हलाम घूलिर पथे लय तोमार नाम, ओहे राखाल राज ! कि साजे साजालो आमाय आज आदि अनेक रचनाएँ है । एक उदाहरण दृष्टव्य है --

'आमि बाऊल ह'लाम धूलिर पथे लये तोमार नाम ।
आमार एकताराते बाजे शूधू तोमारई गान, श्याम ।।
निभिये एलाम हारेर बाति/ एखन तूमि साथेर साथी,
आमि जेखने जाई सेई से एखन आमार ब्रजधाम ।।'[99]

अर्थात मैं धूल युक्त पथ में तुम्हारा नाम लेकर बाऊल बना हूँ और मेरे इकतारा में सिर्फ तुम्हारा ही गान बजता है, हे श्याम । घर की बत्ती को मैं बुझा कर आया हूँ । अब तुम्ही मेरे साथी हो । मैं जहाँ भी जाता हूँ, वही मेरा ब्रजधाम बन जाता है ।

नज़रुल ने भटियाली सुर पर आश्रित कई गीतों की रचना की है । इनके अंतर्गत --'आमार भाङा नायेर बैठा ठेले, उजान बाओयार गान गो एबार गासने भाटियाली, आमार गहीन जलेर नदी, आमार साम्पान यात्री ना लय, एकूल भाङे ओकूल गड़े, एइतो नदीर खेला, ओरे माझी भाई, नदी एई मिनति तोमार काछे इत्यादि गीत हैं । इनमें सिराजुद्दौला नाटक में व्यवहत 'एकूल भाङे ओ कूल गढ़े' गीत ने अत्यधिक जनप्रियता हासिल की ।

'ए कूल भाङे ओ कूल गड़
एई तो नदीर खेला
(रे भाई) एई तो विधिर खेला
सकाल बेला आमिर रे भाई
फकीर सन्धयाबेला ।।'[100]

अर्थात एक नदी का पार (तट) टूटता है तो दूसरा बनता है ; यही नदी का खेल है, यही

विधि का खेल है । सुबह यदि कोई अमीर होता है तो सन्ध्या के समय फकीर हो जाता है ।

नज़रुल ने लगभग 150 लोकगीतों की रचना की है । बांग्ला लोकसंगीत की प्रायः समग्र व्यंजना नज़रूल के लोकगीतों में प्राप्त हो जाती है । लोकगीतों को प्रकृत रूप प्रदान करने के लिए नज़रूल ने लोक शब्दों का सुन्दर प्रयोग किया है --

'आकाशेर आर्शिते भाई पड़राछे मोर मनेर छाया ।'[101]

यहाँ 'पड़राछे' शब्द से इस गीत में लोकगीति स्वरूप मिठास की जो छाया उभर आई है वह किसी और शब्द से नहीं उभर पाती ।

नज़रुल ने अपने लोकगीतों में लोक पर्व और त्योहारों को भी विशेष स्थान प्रदान किया है । होली का वर्णन करते हुए प्रस्तुत गीत में लोक की छाया स्पष्टतः दृष्टिगोचर है --

'आजि दोल फागूनेर दोल लेगेछे
आमेर बोले दोनल-चाँपाय ।
मौमाछिरा झेलाश भरे
पलाश फूलेर मऊ पिये जाय ।।'[102]

अर्थात आज फागुन के होली के अवसर पर मन दुलायमान हो उठा है ; आम्र मंजरी और दोलन चाँपा फूल भी दुलायमान है । मधुमक्खियाँ गिलास भर कर पलाश फूल का मधु पान कर रहे हैं ।

एक वन-गीति में नज़रुल लोक प्रचलि 'चोख गेलो' स्वर में आवाज़ करने वाली पक्षी का सुंदर प्रयोग करते हैं --

'ओ झूमरो, तीर धनूक निये बलना कोथाय जास ?

पाखी यदि मारिष तबे आमार माथा खास ।

एई शोन 'चोख गेल' पाखी जामेर डाले उठल डाकि,

शूनिस नाकि, महूल बने उठाछे दीरघ श्वास ।'[103]

अर्थात ओ 'झूमरो' तीर धनुष लेकर बोलो कहॉ जा रहे हो ! पक्षी यदि मारोगे तो मेरा ही सिर खाना । सुनो, 'चोख गेल' पक्षी जामुन की डाली पर बोल रही है । क्या तुम महुआ के वन मे उठने वाले दीर्घ श्वास को नहीं सुन पाते ।

इस प्रकार की रचनाओ के द्वारा लोक के इस कवि ने लोक को अपने गीतो मे साकार किया और सही मायनो मे लोककवि बन गए ।

निष्कर्ष रूप मे यह कहा जा सकता है कि निराला और नज़रुल जनमन एवं जनजीवन के कवि थे । 'लोक' जीवन का सहज, सरल रूप दोनो की रचनाओ मे विद्यमान है । जहॉ नज़रुल बंगाल के संथाल और बाउल जैसे लोकजीवन की झॉकी प्रस्तुत करते हैं वही निराला उत्तर प्रदेश के अवधी और भोजपुरी लोकगीतो का मनोरम दृश्य प्रस्तुत करते है । दोनो ने ही 'भटियाली' लोकगीत को अपनी रचना मे स्थान दिया हे । चाहे लोक के देशी, ठेठ शब्द हो या मन को रमाती लोकधुन, या फिर लोकगीतो का अनोखा ढॉचा, सभी पक्षो का समायोजन करते हुए इन दोनो कवियो ने अनेक गीतो की रचना की और जनमन के कवि बन गए ।

संदर्भ :

1. बृहत्त हिन्दी शब्दकोश - पृ सं. 841
2. नाट्यशास्त्रम् - भारतमुनि
3. बृहत्त हिन्दी शब्दकोश - पृ सं. 716
4. मानक हिन्दी कोश - सं. रामचन्द्र वर्मा, पृ. 590 - संस्करण - 1964
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र, पृ. 550
6. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र, पृ. 49
7. निराला - डॉ. रामविलास शर्मा
8. नि. र. भाग - 2, पृ. 370
9. निराला आत्महन्ता आस्था - पृ. 203 - दूधनाथ सिंह (ऋतु कविताओं की दृष्टि से निराला का सर्वाधिक आकर्षण वर्षा ऋतु के प्रति दिखाई देता है ।)
10. निराला आत्महन्ता आस्था - दूधनाथ सिंह - पृ. 202
11. निराला आत्महन्ता आस्था - पृ. 208
12. निराला आत्महन्ता आस्था - पृ. 211
13. निराला आत्महन्ता आस्था - पृ. 223
14. नज़रुल संगीते ऋतु चेतना - आताउर रहमान - पृ. 55
15. नज़रुल संगीते ऋतु चेतना - आताउर रहमान - पृ. 81-82
16. नज़रुल संगीते ऋतु चेतना - आताउर रहमान - पृ. 83
17. नज़रुल संगीते ऋतु चेतना - आताउर रहमान - पृ. 82
18. नज़रुल - चरितमानस - डॉ. सुशील कुमार गुप्त - पृ. 315
19. नज़रुल काव्य समीक्षा- अताउर रहमान
20. 1929 ई. में नज़रुल इस्लाम को चट्टग्राम बुलबुल सोसाइटी प्रदत्त मानपत्र का प्रत्याभिभाषण ।
21. नज़रुल इस्लाम - कविमानस ओ कविता - ध्रुवकमार मुखोपाध्याय- पृ. 124
22. नज़रुल इस्लाम - कविमानस ओ कविता - ध्रुवकमार मुखोपाध्याय- पृ. 124
23. नज़रुल इस्लाम - कविमानस ओ कविता - पृ. 125
24. नज़रुल इस्लाम - कविमानस ओ कविता - पृ. 125
25. नज़रुल इस्लाम - कविमानस ओ कविता - पृ. 125
26. नज़रुल प्रतिभा - मोबाश्वेर अलि
27. प्रसाद, निराला, अज्ञेय - रामस्वरूप चतुर्वेदी - पृ. 73
28. गीतिका - भूमिका - जयशंकर प्रसाद
29. 'गीतिका की' - समीक्षा - नन्ददुलारे वाजपेयी - पृ. 27

30. गीतगुंज - पृ. 15
31. गीतिका - चतुर्थ गीत
32. गीतिका - 44वाँ गीत - पृ. 77
33. अणिमा- तीसरा गीत
34. निराला के काव्य प्रतिमान - पृ. 32 - डॉ. शशिप्रभा सिन्हा
35. राग विराग - पृ. 181
36. राग विराग - पृ. 181
37. राग विराग - भूमिका - पृ. 25
38. राग विराग - पृ. 182
39. आराधना - पृ. 20
39. आराधना - पृ. 14
40. आराधना - पृ. 12
41. नज़रुल इस्लाम - ध्रुवकुमार मुखोपाध्याय - पृ. 170
कवि ओ कविमानस
42. नज़रुल इस्लाम - ध्रुवकुमार मुखोपाध्याय - पृ. 170
कवि ओ कविमानस
43. *बांग्ला काव्यगीति और नज़रुल इस्लाम* - पृ. *171*
44. बांग्ला काव्यगीति और नज़रुल इस्लाम - पृ. 171
45. नज़रुल रचना संभार - भक्ति गीति
46. बांग्ला काव्यगीतिर धाराय काज़ी नज़रुल इस्लामेर स्थान - करुणामय गोस्वामी
47. निराला : अनामिका (वन-बेला) पृ. 86
48. निराला - परिमल (अनामिका) पृ.117-118
49. गीतिका - पृ. 7
50. गीतिका - पृ. 53
51. अनामिका : हताश पृ. 84
52. निराला सरोज-स्मृति, पृ. 122
53. निराला - अर्चना, पृ. 75
54. निराला - आराधना, पृ. 22
55. आराधना - पृ. 43
56. गीतगुंज - पृ. 72
57. आराधना - पृ. 62
58. संध्य काक्ली - पृ. 87

59. डॉ. दुर्गाशकंर मिश्र : महाकवि निराला का काव्य : एक विश्लेषण, पृ.9
60. श्री राजनाथ शर्मा - निराला पृ. 44
61. श्री विश्वम्भर मानव - काव्य का देवता निराला, पृ. 70
62. डॉ. रामरतन भटनागर निराला, नव मूल्यांकन , पृ. 91
63. नि. र. भाग 2, पृ.452
64. अनामिका : रेखा, पृ. 76
65. गीतिका, पृ. 53
66. नज़रुल गीति अखण्ड, पृ. 173
67. नज़रुल गीति अखण्ड, पृ. 13
68. नज़रुल गीति अखण्ड, पृ. 14
69. नज़रुल गीति अखण्ड, पृ. 19
70. नज़रुल गीति अखण्ड, पृ. 106
71. नज़रुल गीति अखण्ड, पृ. 21
72. कविमानस ओ कविता - ध्रुवकुमार मोखोपाध्याय , पृ. 116
73. नज़रुल गीति अखण्ड, पृ. 132
74. कविमानस ओ कविता, पृ. 116
75. नज़रुल गीति अखण्ड, पृ. 515
76. ऋग्वेद - 10-90-24
77. गंगा माटी का गीत - डॉ. हीरालाल तिवारी, पृ. 1
78. वाचश्पत्यम, भाग - 6, पृ. 4833
79. लोकगीतों के संदर्भ और आयाम - डॉ. शान्ति जैन, पृ. 1
80. लोकसाहित्य की भूमिका, पृ. 1
81. लोक की अवधारणा - डॉ. माधवेन्द्र प्रसाद पाण्डेय
82. लोकगीतों के संदर्भ और आयाम - डॉ. शान्ति जैन, पृ. 1
83. राग-विराग - भूमिका, पृ. 37
84. गीतगुंज - 25 वाँ गीत
85. नि. र. भाग 2, पृ. 147
86. नि. र. भाग 2, पृ. 148
87. नि. र. भाग 2, पृ. 162
88. गीतिका , पृ. 74
89. नये पत्ते , पृ. 44
90. नये पत्ते , पृ. 104-5

91. नि. र. भाग 2, पृ. 356
92. नि. र. भाग 2, पृ. 343
93. निराला : आत्महन्ता आस्था, प् 56
94. निराला की साहित्य साधना, पृ. 444
95. निराला की साहित्य साधना, पृ. 440
96. नि. र. भाग 2, पृ. 551-52
97. नि. र. भाग 2, पृ. 371-72
98. नि. र. भाग 2, पृ. 372
99. नज़रुल गति अखण्ड, पृ. 399
100. नज़रुल गति अखण्ड, पृ. 396
101. नज़रुल गति अखण्ड, पृ. 398
102. नज़रुल गति अखण्ड, पृ. 394
103. नज़रुल गति अखण्ड, पृ. 394
104. नज़रुल गति अखण्ड, पृ. 400

चतुर्थ अध्याय

निराला और नज़रुल के गीतिकाव्यों का वैचारिक पक्ष

चतुर्थ अध्याय

निराला और नज़रुल के गीतिकाव्यों का वैचारिक पक्ष

विचार वस्तुतः वह मानसिक शक्ति है जो बुद्धि द्वारा संचालित होता है और तार्किक ढंग से अपने पक्ष को किसी विशेष संदर्भ अथवा अनुभूति से जोड़कर प्रस्तुत करता है । विचार में विषय की वस्तुनिष्ठता के साथ-साथ यथार्थ पक्ष पर अधिक बल होता है । वस्तुतः विचार मानव की वह उपलब्धि है जिसमें उसे सत्-असत्, उचित-अनुचित या अच्छे-बुरे की पहचान कराई । मनुष्य जब से सचेत हुआ तब से यह प्रकिया प्रारंभ हुई और आज तक निरंतर प्रवहमान है । समय-समय पर विद्वानों ने विभिन्न विचारों को व्यक्त किया है, उन विचारों का आलोड़न-विलोड़न किया है और उन विचारों को निर्धारित किया है । विचार को परिभाषित करते हुए उसे 'निर्णय, 'तत्त्व-परीक्षा', किसी विषय पर गंभीरता के साथ सोचना' आदि माना गया है । अतः विचार का अभीष्टार्थ है -- एक प्रकार का निर्णायक सोच ।

जहाँ भाव का संबंध हृदय से अधिक होता है वहीं विचार का संबंध बुद्धि से होता है । भावों को अभिव्यक्त करते हुए मनुष्य अपने विवेक की अपेक्षा हृदय का अधिक प्रयोग करता है । जबकि किसी विचार को अभिव्यक्त करते हुए मानव अपने हृदय की अपेक्षा अपने मस्तिष्क का अधिक प्रयोग करता है । अतः भाव हृदय के आवेगों में बह जाने पर उत्पन्न होते हैं जबकि विचार मस्तिष्क के निर्दिष्ट सोच-विचार की प्रणाली पर आधारित होते हैं ।

निराला और नज़रुल का आध्यात्मिक, दार्शनिक, रहस्यवादी विचार

प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति में वेदों और उपनिषदों के माध्यम से

आध्यात्मिक एवं दार्शनिक विचार प्रतिपादित होता आया है । इन विचारों का प्रभाव हिन्दी एवं बांग्ला साहित्य के कवियों पर भी स्पष्ट रूप से द्रष्टव्य है ।

आध्यात्म, दर्शन एवं रहस्य का सम्बन्ध कमोबेश समान तत्वों पर ही आधारित है । वृहत् हिन्दी शब्द कोश में 'आध्यात्मिक' का अर्थ -- 'परमात्मा या आत्मा से संबंध रखने वाला'[1] माना गया है । दर्शन शब्द का अर्थ प्रतिपादित करते हुए यह माना गया है कि दर्शन 'वह शास्त्र' है 'जिसमें आत्मा, अनात्मा, जीव, ब्रह्म, प्रकृति, पुरुष, जगत, धर्म, मोक्ष मानव-जीवन के उद्देश्य आदि का निरूपण हो ।'[2] इसी प्रकार रहस्यवाद का अर्थ -- 'चिंतन, मनन द्वारा ईश्वर से प्रत्यक्ष संपर्क-स्थापना की प्रवृत्ति ; आत्मा, परमात्मा के अभेद की अनुभूति और अव्यक्त के प्रति आत्मनिवेदन'[3] माना गया है । तीनों परिभाषाओं पर दृष्टि डालने पर यह ज्ञात होता है कि आध्यात्म, दर्शन और रहस्यवाद के मूल में परमात्मा, आत्मा, ब्रह्म, जीव आदि है ।

वस्तुतः भारतीय साधना पद्धति में रहस्यवाद की अपेक्षा आध्यात्मवाद को अधिक महत्व प्रदान किया गया है और आध्यात्मवाद का संबंध सदा ही भीतरी अनुभूतियों और मनोवृत्तियों से रहा है । इस रहस्यवाद का मूल भारतीय दर्शन में ही विद्यमान रहा है । यहाँ 'अज्ञात के प्रति जिज्ञासा' ही 'रहस्य' है और इस जिज्ञासा का विश्वास बन जाना ही आध्यात्मिक जड़ता है ।

प्राचीन काल में ब्रह्म और बह्माण्ड के संबंध, मध्यकाल में आत्मा-परमात्मा के संबंध तथा आधुनिक काल में आत्मा और प्रकृति के संबंध का अध्ययन होता आया है । उपनिषदों में भी ब्रह्म के प्रति जिज्ञासा ही प्रमुख विषय है । जगत् के निमित्त और उपादान कारणों पर विचार; विश्व की बनावट, क्रिया और घटना, मानव और चेतना, नीति, ज्ञान और कर्म तथा आत्मा-परमात्मा के संबंध में विचार उपनिषदों की मूल आत्मा है । 'उपनिषद

वह रहस्य है जो तात्विक विवेचन का विषय है ।'[4] अतः उपनिषद् को रहस्य के अर्थ में भी लिया जा सकता है ।

निराला और नज़रुल के गीतों में भी इस रहस्य की छाया स्पष्ट दिखाई देती है । हाँलाकि 'निराला में रहस्य की गूढ़ताएँ उतनी नहीं , जितनी दर्शन की विवृति और उनकी दार्शनिकता मुख्यतः भक्तिपरक तथा वेदान्ती प्रभावों से युक्त है ।'[5] निराला काव्य के सम्पूर्ण स्वरूप में पदार्थों की साम्य स्थिति का चित्र सर्वत्र प्राप्त होता है । अपने परवर्ती रचनाओं में वे तर्काश्रित रहस्य की भूमि से उतरकर तर्कातीत आस्था की भूमि पर पदार्पण करते हैं । जिज्ञासा के जिस बिन्दु से उनकी आध्यात्म-यात्रा का प्रारम्भ हुआ था, वह अविछिन्न न रह सकी और कवि की यह जिज्ञासा निरन्तर विश्वास में परिवर्तित होती गयी, जहाँ उन्हें विभिन्न वर्ण श्याम या नील वर्ण रूप में दिखायी देते हैं और उसमें इष्टदेव की छाया आभासित होने के कारण सब कुछ ब्रह्ममय जान पड़ने लगता है -- जैसे 'राम की शक्ति पूजा' का मूल वर्ण श्याम ही है । 'रवि हुआ अस्त' से जो 'श्यामता' अवतरित होती है वह राम के कंधों से होती हुई अमानिशा, श्यामा मूर्ति, इत्यादि से विकसित होती है और नीलोत्पल की साधना में सम्पन्न होती है ।

निराला के संस्कारों में वेदान्ती प्रभावों और मध्यकालीन भक्त कवियों की आस्थामयी भावनाओं का मिश्रण है । इस कारण वे कहीं दार्शनिक चिन्तन में विराट शक्ति की ओर संकेत करते हैं, कहीं उनके प्रति जिज्ञासु प्रतीत होते हैं और कहीं जिज्ञासा विश्वास में बदल जाती है और अन्त में इस सम्बन्ध की सारी प्रार्थनाएँ उन्हें व्यर्थ प्रतीत होने लगती है ।

आध्यात्म सम्बन्धी धारणा में निराला रामकृष्ण-विवेकानन्द परम्परा के वेदान्त-दर्शन से प्रभावित थे । उन्होंने प्राचीन दर्शन संबन्धी ग्रंथों को नहीं पढ़ा था परन्तु

रामकृष्ण मिशन से सम्बन्धित होने के कारण उन्होंने स्वामी शारदानन्द जी और प्रेमानन्द जी जैसे विद्वानों से भारतीय संस्कृति के सर्वोच्च लक्ष्य 'वसुधैव कुटुम्बकम' का पाठ ग्रहण किया था । 'समन्वय' पत्रिका में कार्यरत होते हुए उन्होंने रामकृष्ण की तरह दर्शन के जटिल रूप को लोकोन्मुखी बनाया, और समस्त विश्व को एक ही आत्मा का प्रकाश माना ।

परिमल के एक मंगलाचरण में वे माया आवरण को हटाकर शक्ति से याचना करते हैं कि इस सम्पूर्ण जगत् को अपने प्रत्यक्ष प्रकाश'-ज्ञान से भर दे ।

'जग को ज्योतिर्मय कर दो ।'[6]

'प्रार्थना' कविता में कवि शक्ति से यह प्रार्थना करते हैं कि वह उसे ईश्वर-भक्ति में मज्जित कर दे और प्रकाश-पुंज फैलाकर प्रिय के मार्ग को आलोकित करे --

'मेरे गगन-मगन मे अभि किरणमयी, विचरो ।'[7]

इसी प्रकार व्यापक सम्बन्धों पर आधृत आध्यात्मिक कविता 'तुम और मैं' में कवि आत्मा-परमात्मा के स्वरूप को प्राकृतिक प्रतीकों के माध्यम से प्रकट करते हैं --

'तुम दिनकर के खर किरण-जाल
मैं सरसिज की मुस्कान ।'[8]

'भर देते हो' में प्रकृति के माध्यम से कवि अपने उत्तप्त जीवन को शीतल बना देने की घटना का वर्णन करते हैं --

'भर देते हो
बार-बार प्रिय, करुणा, की किरणों से
क्षुब्ध हृदय पुलकित कर देते हो ।'[9]

'तुलसीदास' और 'राम की शक्ति पूजा' जैसी रचनाओं में निराला ने दार्शनिक और आध्यात्मिक चिन्तन को विशिष्ट स्थान प्रदान किया है ।

निराला-काव्य की पृष्ठभूमि में औपनिवेशिक दासता, व्यक्तिगत और समष्टिगत संघर्ष, अहंमन्यता है जिसके कारण अपनी वैयक्तिक प्रपत्ति-रचनाओं में भी लोक-मन के साथ भोगता हुआ दिखाई देता है --

'तिमिर दारण मिहिर दरसो ।
ज्योति के कर अन्धकार-
गार जग का सजग परसो ।'[10]

यहाँ वे वर्गाश्रित आस्था के गीत गाकर अपनी दार्शनिकता का परिचय देते है ।

अपने रचनाकाल के प्रारम्भ से ही निराला के जीवन में आध्यात्मिकता का दर्शन होने लगता है और रचना-काल के अन्त तक एक सूक्ष्म विकास का तार अनुस्यूत होता हुआ दिखाई देता है । सही अर्थों में यही उनके जीवन की नियमबद्धता है । प्रारम्भिक रचनाओं में प्रभु के प्रति उनकी अभिव्यक्ति क्षीण है, किन्तु बाद की 'आराधना', 'अर्चना', 'गीत-गुन्ज' और 'सांध्य-काकली' रचनाओं में प्रपत्ति के लगभग सौ गीतों में उनके जीवन के अनेक आध्यात्मिक रूपों के दर्शन होते हैं ।

निराला ने वेदों में निरूपित परमात्मा का भी विवेचन अपने गीतों में किया है । परब्रह्म के अनिर्वचनीय स्वरूप को समझ पाने में खेद व्यक्त करते हुए कवि लिखते हैं--

'तुम हो अखिल विश्व में
या यह अखिल विश्व है तुम में,
अथवा अखिल विश्व तुम एक-
सुलझी नहीं ग्रंथि मेरी, कुछ मिटा न खेद।'[11]

इस अखिल विश्व को निराला माया का जाल मानते हैं और परमतत्व को पाने में माया को बाधक मानते हैं । इसी माया के कारण सांसारिक प्राणी मोह बंधन में बँधा रहता है । निराला प्रभु से वीनति करते हैं कि इस माया रूपी अंधकार को वे भेद दे --

'जगज्जाल छाया
माया ही माया
सूझता नहीं है पथ
अन्धकार आया
तिमिर-भेद शर दो ।'[12]

विवेकानन्द की तरह निराला भी मानव को ब्रह्म का ही रूप मानते हैं । उनके अनुसार बह्म सदा ही महान है और इस विश्व का वैभव उनके पैरों की धूल के समान भी नहीं हो सकता--

'तुम हो महान, तुम सदा हो महान्
है नश्वर यह दीन भाव,
कायता, कामपरता ।
ब्रह्म हो तुम
पदरज भर भी नहीं पूरा यह विश्वभर ।'[13]

निराला ने अपने गीतों के माध्यम से परमतत्व को गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन किया है । ऐसा ही एक गीत गीतिका में है जहाँ रहस्यवाद का सुंदर दर्शन है --

'सुंदर हे, सुन्दर !
दर्शन से जीवन पर
बरसे अनिश्वर स्वर ।

परसे ज्यों प्राण

फूट पड़ा सहज गान,

तान-सुरसरिता वही

तुम्हारे मंड्गल-पद छू कर ।

उठी है तरड्ग

बहा जीवन निस्सड्ग

चला तुमसे मिलन को

खिलने को फिर फिर भर भर ।'[14]

'गीतिका' के कई गीतों में जीवन-जगत् के बीच उत्पन्न संघर्षों को 'प्रभु' के स्मरण में भूलने का प्रयास किया गया है । लोगों से स्नेह सहानुभूति न पाकर कवि प्रभु से पूछता है--

'मुझे स्नेह क्या मिल न सकेगा ?

स्तब्ध, दग्ध, मेरे मरू का तरू

क्या करूणाकर, खिल न सकेगा ?[15]

निराला के काव्य की मुख्य भूमि दर्शन है, इसलिए उनका सारा काव्य इसके पावन स्पर्श से पुलकित है --

'प्रलय किसे कहते हैं,

मन बुद्धि और अहंकार का लय-प्रलय है ।'[16]

'निराला जी जान में उद्‌बोधक कवि और अनजान में सनत थे । उनकी रहस्य-प्रतीति में निर्गुण सन्तों की साधना और सगुण भक्तों के प्रेम का युगान्तरकारी सामंजस्य है । रवीन्द्र की पिच्छल भावुकता, प्रसाद की प्रबल बौद्धिकता और महादेवी की द्वैतवादी वेदना इनमें नहीं है । ये कवि दार्शनिक नहीं, किन्तु दार्शनिक महाकवि है ।'[17]

निराला के आध्यात्मिक जीवन का एक रूप वह है, जहाँ वे अखण्ड आत्मविश्वास के साथ प्रभु के अमर गान में प्रवृत होते हैं और वहाँ उन्हें सर्वत्र आशा, आह्लाद, चेतना, निर्माण और मुक्ति के सम्पूर्ण साधन दिखाई पड़ते हैं --

'मोहन-पतन में भी तो रहते हैं हम तम-कण चूम,
फिर ऐसी ही क्यों न रहेगी यौवन-धूम ?'[18]

या

'प्रति पल तुम ढाल रहे सुधा-मधुर-ज्योतिधार
मेरे जीवन पर, प्रिय, यौवन-वन के बहार ।'[19]

'गीतिका' में इस आशय के अनेक गीत भरे पड़े हैं -- फिर संवार सितार लो और 'उक्ति' में सांसारिक असफलता को प्रभु के समक्ष, नकार दिया गया है ।

इसके अतिरिक्त अणिमा के कुछ गीतों में भी प्रभु के प्रति अमर विश्वास प्रकट किया गया है । 'मैं बैठा था पथ पर, तुम आये, स्नेह-मन तुम्हारे नयन बसे, तुम्हीं हो शक्ति समुदाय की, घेर लिया जीवों को नाम था प्रभात ज्ञान का साथी आदि इसी श्रेणी की रचनाएँ हैं ।

'बेला' की - 'शुभ्र आनन्द आकाश पर छा गया, रूप की धारा के उस पार, ऑखे वे देखी हैं जब से, स्वर के सुमेरु हैं झर-झरकर, कैसे गाते हो, बीन की झंकार कैसे बस गई मन में हमारे, नाथ तुमने गहा हाथ खिला कमल, अशब्द हो गयी वीणा, जग के जय के जीवन, माया की गोढ खेलता है चराचर तेरा आदि रचनाओं में आत्मविश्वास का यही भाव अभिव्यक्त हुआ है ।

इसी प्रकार आराधना, गीतगुंज और सांध्य काकली में प्रकाशित गीतों में भी मध्यकालीन भक्त कवियों की तन्मयता और आवेश का स्फुरण है ।

निराला मृत्यु-निर्माण और प्राण-नश्वरता के तथ्य से सहमत थे इसी कारण वे लिखते हैं---

'मृत्यु-निर्माण प्राण-नश्वर, कौन देता प्याला भर-भर ।'[20]

छायावादी कविताओं में निराला का दार्शनिक मन अधिक सक्रिय रहा, किन्तु उत्तरकालीन रचनाओं में वे तर्कातीत आस्था में उतर आये हैं और प्रभु के चरणों में स्वयं को भुलाने का प्रयास करते हैं --

'विपद भय-निवारण करेगा वही सुन
उसी का ज्ञान है, ध्यान है, मान गुन ।'[21]

किन्तु दूसरी ओर निराला फिर तर्काश्रित अनास्था की ओर लौट आते हैं जहाँ वे प्रार्थना की व्यर्थता का प्रतिपादन करते हुए दिखायी देते हैं --

'हो मेरी प्रार्थना विफल, हृदय-कमल के जितने दल
मुरझाये, जीवन हो म्लान, शून्य दृष्टि में मेरे प्राण
प्राप्त करें शून्यता सृष्टि की, मेरा जग हो अन्तर्धान ।'[22]

निराला के दार्शनिक चिंतन में परस्पर विरोधी विचार प्राप्त होते हैं । इसका कारण यह है कि 'निराला दार्शनिक कवि हैं । कुछ दर्शन शास्त्र उन्होंने किताबों में पढ़ा था, कुछ रामकृष्ण मिशन के साधुओं के साथ रहते हुए सुना था, बहुत कुछ अपने जीवन के विषाक्त अनुभवों में स्वयं देखा था । अनुभवों में जो देखा था, वह पढ़े और सुने हुए दर्शन शास्त्र से हमेशा मेल न खाता था । इसलिए उनके काव्य में सुव्यवस्थित दार्शनिक चिन्तन की जगह परस्पर विरोधी विचार मिलेंगे जिनमें एक तरह के विचारों का स्रोत है पढ़ा और सुना हुआ दर्शन शास्त्र और दूसरी तरह के विचारों का स्रोत है उनका अपना अनुभव-जन्य ज्ञान । चाहते वह यही हैं कि चारों ओर उन्हें ब्रह्म का आनन्दमय प्रकाश दिखाई दे ।'[23]

निराला की भाँति काज़ी नज़रुल इस्लाम के दार्शनिक विचारों में भी पर्याप्त भिन्नता लक्षित होती है । कभी वे ईश्वर की सत्ता को स्वीकारते हुए कृष्ण और अल्लाह के भक्ति गीतों की झड़ी लगा देते हैं तो कभी ब्रह्म के अगोचर, अलख रूप का वर्णन करते हैं ।कभी वे क्षुब्ध होकर ईश्वर का अपमान भी करते है और यहीं वे निराला से कृतिवैषम्य उपस्थित करते हैं । निराला ने भी जीवन के भीषण प्रहारों को झेला था परन्तु उनके काव्य में ईश्वर अपमानित नहीं होते जबकि नज़रुल अपने विद्रोही स्वरूप के कारण ईश्वर को भी नकार कर नास्तिकता का प्रमाण देते हैं --

'ऐ बामन विधि से आमारे धरिते

बाड़ियेछिल रे हात

मम अग्नि-दाहिने ज्वले पुड़े

ताइ टूटो से जगन्नाथ ।'[24]

अर्थात ईश्वर ने वामन अवतार की तरह मुझे पकड़ने के लिए हाथ बढ़ाया तो मेरी भयंकर ज्वाला से उनके हाथ जल गए, इसीलिए जगन्नाथ के हाथ नहीं हैं ।

यही नहीं वे स्वेच्छचारी ब्रह्म का सीना चीर देने की बात भी कहते हैं --

'खोदार आसान 'आराश छेदिया',

उठियाछि चिरविस्मय आमि........

आमि खेयाली बिधिर बक्ष करिण भिन्न ।'[25]

ईश्वर के लिए ऐसे कठोर शब्दावलियों का प्रयोग अन्यत्र दुर्लभ है । पर नज़रुल हमेशा ऐसे विक्षुब्ध नहीं रहते थे । उन्होंने ऐसे भक्ति गीतों का सम्पुन्ज भी तैयार किया था जिसके आवेग में बहकर भक्त स्वयं को भूल कर प्रभुमय हो उठता था ।

अधिकाशं मनुष्यों की भाँति नज़रुल भी जीवन-मृत्यु, विश्व जगत इत्यादि विषयों के प्रति प्रश्न एवं कौतुहल प्रकट करते थे ।

नज़रुल ने जीवन और जगत के मूल में सत्य-सुन्दर शक्ति की कलपना की थी और इस सत्ता को 'आमार सुन्दर' रूप में अभिहित किया था । उन्होंने कहा था --

'असुन्दर की साधना मेरा लक्ष्य नहीं है, मेरे अल्लाह परम सुन्दर हैं । वो मेरे लिए नित्य, प्रियघन सुन्दर, प्रेमघन सुन्दर रसघन सुन्दर, आनन्दघन सुन्दर हैं ।........ मैं उनका विरह एक मुहूर्त के लिए नहीं सह सकता ।'[26]

नज़रुल ने मन्दिर-मस्जिद, मठ में तपस्यारत भक्त जनों का एक ही उद्देश्य बताया था --

'के तुमि खूँजिछ जगदीश भाई आकाश पताल जूड़े
के तुमि फिरिछ बने जंगले, के तूमि पाहाड़ चूड़े
हाय ऋषि दरवेश,
बूकेर मानिके बूके धरे तूमि खोज तारे देश-देश ।
सृष्टि रयेछे तोमा 'पाने चेये, तूमि आछो चोख बूजे '
स्रष्टारे खोजो-आपनारे तूमि आपनि फिरिछ, खूँजि ।'[27]

अर्थात यह है कि 'तुम जिसे चारों तरफ ढूँढ रहे हो वह तुम्हारे ही हृदय में बसा हुआ है ।

नज़रूल ने साधारण लोकधर्म की अभिव्यक्ति को अपनी रचनाओं में स्थान दिया है । उनके गीतों में वैष्णव और सूफी मत का प्रभाव स्पष्ट दिखता है । इस विषय में आताउर रहमान का मानना है --

'कवि अपने कविताओं में बार-बार वृन्दावन, बंसी, राधा, कदमकुन्ज, यमुना, गोकुल जैसे संकेतों का व्यवहार करते हैं । .... उनका मूलभाव वैष्णवीय मधुर रस

स्मरण कर देता है । शराब, साकी, प्याला जैसे रूपकों के प्रयोग के मध्य सूफियों की तात्विकता का प्रकाश मिलता है ।'[28]

नज़रुल की रचनाओं में परमसुन्दर के संग प्रेमालाप, विरह, मिलन, अनुराग-विराग का प्रत्यक्ष दर्शन होता है ।

अपने जीवन के परवर्ती काल में नज़रुल ने अनेक ऐसी रचनाएँ की जिनमें वैष्णव और शक्तिदर्शन का प्रभाव पाया जाता है । उनके आराध्य परमसुन्दर कभी शक्तिरूपिणी राधा, कभी पार्वती, और कभी वृन्दावन के बंसीधारी श्रीकृष्ण बन जाते है 1 ऐसी एक रचना है 'चिरजनमेर प्रिया' --

'हे आमार चिरसज्जित बधु, हेरगो बासर धरे,
प्रतीक्षारत निशि जेगे अछि सेकथा शोनार तरे ।
X X X X
तोमार चरने देखेछि जे वेदगानेर नुपुर परा
कत काँटा धूलि ओ पंके पृथिवीर पथ भरा,
ताई शिव सम हे शक्ति मम् तब पथे पड़े थाकि,
ताई साध जाय, गंगार मत जटाय लूकाये राखि ।
आपन मायार परम श्रीमती चेन नाको आपनारे,
कहिले ना कथा, नामाये आमार प्रेम-यमुनार पारे ।'[29]

भवार्थ यह है कि नज़रुल ब्रह्म रूपी प्रिया के लिए प्रतीक्षारत है और इस कठिन धरा के कठिनाइयों से जूझते हुए उन्हें भाँति-भाँति से स्मरण करते हैं । परमशक्ति को वास्तविकाता के धरातल पर लाकर उनके संग मिलन के लिए व्याकुल होने की पद्धति सूफी-संतों में भी प्रचलित है । सूफियों के ध्यान की पद्धति, उनकी प्रेमानुभूति परमतत्व के साथ एकात्मबोध

की परिणति लाभ करता है । बाउल सम्प्रदाय के मध्य प्रचलित जो हृदयानुभूति, आवेग चांचल्य विरह व्याकुलता और विह्वलता है वह भी प्रकृति-पुरूष के मिलन को दर्शाता है । यही तत्त्व सूफी धर्मावलंबियों में प्राप्त होता है जिसे 'इस्लामीय मरमियावाद' अथवा 'अतीन्द्रियावाद' के नाम से अभिहित किया जाता है । इनका मूल उद्देश्य अल्लाह या ब्रह्म के प्रति समर्पित प्रेम ही रहा है ।

नज़रुल की सम्पूर्ण रचनाओं में इस 'मरमियावाद' का प्रकाशन प्राप्त होता है । इनमें कुछ मुख्य रचनाएँ हैं -- 'से जे आमि', 'अभेदम', 'केन जागाइलि तोरा', 'आर कतदिन', 'आल्ला प्रियतम मोर' और 'चिर निर्भर' । 'से जे आमि' और 'अभेदम' में वैष्णव लीलावाद का स्पष्ट छाप प्राप्त होता है ।वैष्णव मतावलंबी ईश्वर को प्रिय और भक्त की प्रिया रूप में परिकल्पित करते हैं । 'अभेदम' में ब्रह्म के निश्चल रूप का प्रकाश है --

'देखियाछ सेई रूपेर कुमारे गड़िछे जे एई रूप ?
रूपे रूपे हये रूपायित जिनि निश्चल निश्चूप !
सेई बहुरूपी परम एकाकी एई सृष्टिर माझे,
निष्काम हये किरूपे सतत रत अनंत काजे ।'

अर्थात हे परमतत्व तुम प्रत्येक रूप में रूपायित होकर निश्चल और चुप हो । इस सृष्टि मध्य बहुरूप धारण कर तुम सतत् अपने कार्य में लगे हुए हो ।

नज़रुल ने अल्लाह को परम प्रियतम माना है । 'अल्लाह परम प्रियतम मोर' नामक रचना में अल्लाह की प्रशस्ति गाते हुए भी वे उन्हें प्रिय मानते है --

'आल्लार परम प्रियतम मोर, आल्ला त दूरे नय,
नित्य आमारे जड़ाइया थाके परम से प्रेममय ?
पूर्ण परम सुन्दर सेई आमार परम पति,

मोर ध्यान ज्ञान तनु-मन-प्राण, अमार परम गति ।'[30]

अर्थात अल्लाह मेरे परम प्रियतम हैं और वे मुझसे दूर नहीं है । वे नित्य ही मुझे आलिंगनबद्ध किये रहते हैं । वह पूर्ण परम सुन्दर ही मेरे परम पति है । वे ही मेरा ध्यान, ज्ञान, तन, मन, प्राण और परम गति हैं ।

नज़रुल ने वैष्णवों की भाँति राधा-कृष्ण के प्रेम द्वारा भी परम तत्त्व के प्रेम को दर्शाने की कोशिश कि है --

'यमुनार तीरे बाजिया उठिल आबार बिरही बेनु ।
आँधार कदम-कुंजे हेरिनु राधार चरण रेनु ।
योगसमाधित मग्न आधिनु, भग्न हइल ध्यान,
आमार शून्य आकाशे आसिल स्वर्ण ज्योर्तिवान ।'[31]

अर्थात यमुना के तीर पर पुनः विरही वेणु बज उठा है । कदम कुंज में राधा के चरणों की ध्वनि सुनाई देती है । योगसाधना में निरत योगी का ध्यान भग्न हो चुका है और इस प्रकार मेरे शून्य आकाश में स्वर्ण-ज्योति के बाण का प्रवेश हुआ है ।

नज़रुल ने परमतत्त्व का वास देह में ही माना है । उनके अनुसार वह परम तत्व देह मध्य ही लीला रचते हैं और जिस प्रकार वर-वधू एक ही घर में होने पर भी एक दूसरे से मिल नहीं पाते उसी प्रकार मानव मन, परमतत्त्व को ढूँढते हुए भी उससे मिल नहीं पाता -

'मोर लीलामय लीला करे आमार देहेर आंगिनाते ।
रसेर लूकोचूरि खेला नित्य आमार तारि साथे ।।
x x x x
जेन बर-कोने एक बासर घरे/ अनस्तकाल बिराज करे,

तबू तादेर दय ना देखा, दय न मिलन हाते हाते ।।'[32]

निराला की तरह नज़रुल ने भी सम्पूर्ण जगत-जीव को ब्रह्मतत्व से आलोकित माना है और उनके अनुसार उनका ही प्रकाश महान है, उनके ही ज्योति से ज्योतिर्मय है यह दुनिया, जमीन और आसमानों --

'तोमारि प्रकाश महान

ऐ निखिल दुनिया जाहान ।

तोमारि ज्योति ते रोशन

निशिदिन जमीन ओ आसमान ।'[33]

सूफी संतों के अतिरिक्त नज़रुल कहीं-कहीं ज्ञानमार्गी संतों छाया से भी प्रभावित प्रतीत होते हैं --

'एइ देहेरइ रंग महलाय

खेलिछेन लीला-बिहारी

खुजिस तारे ठाकुर-पूजाय, उपासनाय नमाज़ रोजाय ।'

चालिये बेड़ाए मन-आंगीनाय ।'[34]

अर्थात इस देहरूपी रंगमहल में लीलाबिहारी प्रभु खेलते हैं...... लोग उसे पूजा, उपासना, नमाज़-रोज़ा आदि द्वारा पाना चाहते हैं । पर वह तो मन के आंगन में ही विद्यमान हैं ।

उनके अनुसार परब्रह्म इस विश्व को लेकर खेल रहा है, प्रलय सृष्टि उनके लिए गुड़ियों का खेल है । इस आकाश के शून्य में वह लीला-विलास में मग्न हैं और क्षण-क्षण नीतियों को तोड़ते - गढ़ते रहता है --

'खेलिछ ए विश्व लये विराट शिशु, आनमने ।

प्रलय सृष्टि तब पुतूल खेला निरजने/प्रभु निरजने ।

शून्य महा आकाशे (तूमि) मग्न लीला विलासे ।

भांगिछ गड़िछ निति क्षणे क्षणे ।'[35]

चाहे नज़रुल ने वैष्णव दर्शन को गृहित किया हो या सूफी दर्शन को, उनका मुख्य ध्येय सृष्टि के साथ प्रेम का सम्पर्क स्थापित करना ही रहा है । भले ही उनके विचारों में एकरूपता का अभाव है किन्तु सरल, सुगम और रोचक तत्वों से परिपूरित होने के कारण वह लोक में बहुचर्चित, आलोच्य एवं स्मरणीय है ।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि निराला के अद्वैत दर्शन एवं नज़रुल के दार्शनिक विचारों में समानता तो है किन्तु नज़रुल किसी एक दर्शन में विश्वास नहीं रखते थे । वे समाज की विविधता के अनुकूल दर्शन में भी व्यवहारिकता की दृष्टि से सबके समन्वय के पक्षधर थे । उनके दर्शन में दैन्य भाव के अतिरिक्त विद्रोह भी है और यही तथ्य उन्हें निराला के दार्शनिक विचारों से भिन्नत्व प्रदान करता है ।

निराला और नज़रुल के सामाजिक विचार

मानव समूह में जीता आया है । समूहों में जीते हुए उसने समाज की सृष्टि की, समाज के कुछ नियम बनाए और समाज के विचारों को स्थापित किया । साहित्य-निर्माण में समाज का अभिन्न संबंध रहा है । समाज की विचारधारा विकसित एवं परिवर्तित साहित्य के कारण ही होता है । साहित्य समाज का नियन्ता है इसी कारण संकीर्णता का विरोध करना सदैव इसका ध्येय रहा है ।

निराला और नज़रुल ने अपनी रचनाओं में समाज के विभिन्न पक्षों को उजागर

किया है । कभी वे समाज के दलितों का चित्रण करते हैं, कभी समाज के नारी वर्ग का, कभी जंजीरों में जकड़े हुए गुलाम समाज का ; कभी समाज की कुरीतियों का खुलकर विरोध करते हैं और कभी समाज के उत्सवों का मस्त होकर चित्रण करते हैं ।

निराला जानते थे कि संकीर्णता से समाज की प्रगति रुक जाती है । इसी कारण उन्होंने संकीर्ण मनोवृत्ति को कभी स्वीकार नहीं किया । वे व्यक्ति की तुलना में सम्पूर्ण समाज के कल्याण की भावना को ही प्रधानता देते हैं ।

'शिवाजी के पत्र' में कवि शूद्रों की सोचनीय स्थिति के प्रति संकेत करते हुए ऊँच-नीच के भेद को दूर करने की बात कहते हैं --

'जारी रहेगी यदि
इसी तरह आपस में
उच्च जातियों की घृणा
द्वन्द्व, कलह, वैमनस्य-
x x x
निश्चय है
वेग उन तरंगों का
और घट जाएगा-
क्षुद्र से क्षुद्रतर होकर मिट जाएँगी,
चंचलता शान्त होगी,
स्वप्न स्व विलीन हो जायेगा अस्तित्व सब,
दूसरी ही तरंग कोई फिर फैलेगी ।'[36]

'तुलसीदास' में भी उन्होंने शूद्रों की दीन-दशा का सारा उत्तरदायित्व द्विजों पर दिया है ।

निराला ने साधारण जन के खिलाफ हो रहे शोषण का खुलकर विरोध किया है, दीन-दलितों की दारुण दशा का मर्मभेदी चित्र उपस्थित किया है और साथ ही स्वार्थी पूँजीपतियों का पर्दाफाश किया है । अपने एक गज़ल में उन्होंने वर्तमान सामाजिक शोषण का चित्र खींचते हुए पूँजीपतियों को ललकारा है --

'भेद कुल खुल जाय वह सूरत हमारे दिल में है ।
देश को मिल जाय जो पूँजी तुम्हारी मिल में है ।'

अपने गीतों में वे ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वे इन दीन-दलितों का उद्धार करे --

'दलित जन पर करो करुणा ।
दीनता पर उतर आये प्रभु तुम्हारी शक्ति अरुणा ।
हरे तन-मन-भीति पावन मधुर हो सुख मनोभावना,
सहज चितवन पर तरंगित, हो तुम्हारी किरण तरुणा ।'[37]

जितनी तीक्ष्ण भाषा में निराला समाज में हो रहे अत्याचार का चित्रण करते हैं उतनी ही सरलता, सहजता और उल्लास के साथ समाज के नाना पर्वों-उत्सवों का चित्रण करते हैं--

बालाओं की क्रीड़ाओं के मंगलमय आगमन का चित्र उकेरते हुए कवि लिखते हैं--

'फागुन का फाग मचे फिर गावें अलि-गुंजन होली
हँसती नव हास रहें घिर, बालाएँ डालें रोरी ।'[38]

भारतीय समाज के असंख्य कुरीतियों पर निराला ने जमकर प्रहार किया । सदियों की गुलामी और गरीबी से समाज में कुरीतियों ने अपनी जड़े जमा ली थी । 'अणिमा' में एक ऐसे कुसंस्कार पर निराला ने व्यंग्य किया है, जो निचले वर्ग में अपनी गहरी जड़ जमा चुका था । यहाँ दुखिया अपनी अपधृता पत्नी सुखिया पर व्यंग्य करता है --

'दुखिया बोला मन में 'ठहर अभी सास की,

मास खिलाता हूँ मैं तुझे, अभी रास की

चोरी है याद मुझे, बात कौन घास की

बैठा ली क्या जाने व्याही का प्यार ?'[39]

समाज के निम्न वर्ग से गृहित यह सरल सहज भाषा निराला को लोक मन के समीप ला देती है । भारतीय समाज के एक और रूढ़ि पर दृष्टिपात करते हुए वे ब्राह्मणों की भोजन-भट्टता और मष्ठान-प्रियता का चित्रण करते हैं --

'एक से दूसरे ने कहा, रसगुल्ले आ रहे हैं,

अभी कहाँ जाते हैं ?

कटु हुई है जिह्वा, मीठी कर लीजिए ।'[40]

निराला के गीतों में वर्तमान समाज में निजी विषाद की विडम्बनापूर्ण स्थिति तथा सामाजिक शक्तियों के रूप में घटित होने वाले परिवर्तन का आभास और आह्वान है --

'बाहर मैं कर दिया गया हूँ ।

भीतर, पर, भर दिया गया हूँ ।

ऊपर यह बर्फ गली है, नीचे यह नदी चली है ;

सख्त तने के ऊपर नर्म कली है ;

इसी तरह हर दिया गया हूँ ।'[41]

सामाजिक परिवर्तन की ओर इंगित करते हुए वे लिखते हैं --

'आज अमीरों की हवेली

किसानों की होगी पाठशाला,

धोबी, पासी चमार, तेली

खोलेंगे अँधेरे का ताला,

एक पाठ पढ़ेंगे, टाट बिछाओ ।'[42]

निराला मनुष्य-मनुष्य में धन के आधार पर हुए भेदों को मिटाने की बात करते हुए अमीरों को गरीबों के मार्ग की बाधा बनने से रोकते हैं --

'छोड़ दो जीवन यों न मलो ।

ऐंठ अकड़ उसके पथ से तुम

रथ पर यो न चलो ।'[43]

कवि प्राकृतिक उपमानों के माध्यम से भी इस वैषम्य को उजागर करते हैं । सरोवर में सहस्रदल कमल सारे अमंगल को नष्ट कर खिलता और शोभ-सम्पन्नता बिखेर देता है--

'जग के गौरव के सहस्र दल

दुर्बल नालों पर ही प्रति पल

खिलते किरणज्ज्वल चल-अधपल,

सकल अमंगल खो ।'[44]

सामाजिक जीवन को उन्नत करने के लिए निराला ने सामाजिक वैषम्य पर तीव्र व्यंग्य किया है । 'कुकुरमुत्ता' में वे ऐसे ही पूँजीपतियों पर व्यंग्य बाणों की वर्षा करते हैं । बादल राग में वे ऐसे ही शोषकवर्षा का ध्वंस चाहते हैं जो महलों में बैठकर शोषण की योजनाएँ बनाते हैं और विद्रोह का नाम सुनते ही काँप उठते हैं --

'अट्टालिका नहीं है रे आतंक-भवन,

रुद्र कोष है, क्षुब्ध तोष, अंगना, अंग से लिपटे भी

आतंक-अंक पर काँप रहे हैं धनी, वज्रोगर्जन से बादल ।

त्रस्त नयन-मुख ढाँप रहे हैं ।'[45]

ऐसी दशा मे बादल को कृषक अधीर होकर पुकारते हैं --

'जीर्ण बाहु है, शीर्ण शरीर, तुझे बुलाता कृषक अधीर,

ऐ विप्लव के वीर !

चूस लिया है उसका सार,

हाड़-मॉस ही है आधार, ऐ जीवन के पारावार ।'[46]

समाज का एक अभिन्न अंश है नारी । सदियो से रूढिवादी विचारधाराओ के कारण भारतीय नारियो की स्थिति दयनीय हो गई है । 'किसानो और मज़दूरो के बाद भारतीय समाज का एक बृहत् शोषित समूह है । भारतीय स्त्रियॉ दुहरा शोषण और पददलन सहती है, एक ओर तो वे सामन्ती और पूँजीवादी आर्थिक परिस्थितियो के कारण शोषित वर्गो के पुरुषो के साथ ही शोषण का शिकार बनती है और अपने परिवार के पुरुषो-पिता, भाई और पति के द्वारा अतिरिक्त रूप से शोषित या पददलित की जाती हैं ।'[47]

निराला ने अपने काव्य मे नारी को अनेक रूपो मे चित्रित किया है । कभी तो वह शालीन सुशील रूप मे हमारे समक्ष आती है, तो कभी कठोर परिश्रम करती 'तोड़ती पत्थर' के रूप मे ; कभी 'किसान की नयी बहू की ऑखो के रूप मे, तो कभी दुःखी 'विधवा' के रूप मे । उच्च वर्ग की गौरांग महिला का सुन्दर चित्रण प्रस्तुत करते हुए निराला लिखते हैं कि वह ऐसी नारी है जो जीवन को प्रसन्नता से बिताती हैं --

'कौन तुम शुभ्र-किरण-किरण-वसना

सीखा केवल हॅसना केवल हॅसना -

x x x x

मन्द मलय भर अंग-गन्ध-मृदु

बादल अलकावलि कुंचित ऋतु

सुकृत-पुंज-अशना ।'[48]

उच्च वर्गीय नारी का इतना सुन्दर चित्रण अन्यत्र दुर्लभ है । यहाँ निराला नारी सौन्दर्य का अंकन तो करते ही हैं साथ ही समाज के उच्च वर्ग के ऐशोआराम की भी एक झलक दिखा देते हैं ।

निराला ने 'विधवा' के माध्यम से सदियों से चली आ रही भारतीय समाज की रूढ़ियों को स्पष्टतः उकेरा है । भारत को माता का दर्जा देने वाले भारतीयों ने ही नारी को पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ रखा था । समाज में बाल-विवाह, कन्या-हत्या, सती प्रथा और विधवाओं के प्रति अत्याचारों की कथा से निराला अनजान नहीं थे । पति की मृत्यु के पश्चात 'विधवा' बना दी जाने वाली स्त्री की दुर्गति का चित्रण हमारे हृदय में करुण आभा का संचार कर देती है--

'वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा-सी,

वह दीप-शिखा-सी शान्त, भाव में लीन,

वह क्रूर काल-ताण्डव की स्मृति रेखा-सी,

वह टूटे तरु की कुटी लता-सी दीन-

दलित भारत की ही विधवा है ।'[49]

वस्तुतः नारी की इसी दुर्गति के कारण भारतीय समाज का पतन हुआ है --

'ओस-कण सा पल्लवों से झर गया,

जो अश्रु, भारत का उसी से सर गया ।'[50]

इस विषय में डॉ. जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव का मानना है 'भारतीय समाज में विधवाओं की दयनीय स्थिति, जातिवाद और रूढ़िग्रस्तता, आडम्बर प्रधान नवीन सभ्यता, नव युवकों की

कुरुचि, निम्न वर्ग के प्रति उच्च वर्ग की अभिचार-वृत्ति आदि पतनशीलता के विविध पक्ष उन्होंने उद्घाटित किए ।'[51]

निराला ने 'वे किसान की नई बहू की आँखे' में निम्न वर्गीय नारी की वास्तविक स्थिति का चित्रण भी किया है जहाँ नई नवेली दुल्हन होने के बावजूद वह कठोर परिश्रम करती है और समाज के भय से पति से मिलन की आशा भी नहीं रख पाती है --

'नहीं जानती जो अपने को खिली हुई
विश्व-विभव से मिली हुई,
नहीं जानतीं साम्राज्ञी अपने को,
वे किसान की नई बहू की आँखे
x x x x
भीरु पकड़ जाने को है दुनिया के कर से
बढ़े क्यों न वह पुलकित हो कैसे भी वर से ।'[52]

किसान की बहू के चित्रण के साथ ही निराला ने श्रमिक वर्ग की एक महिला का हृदय विदारक चित्र प्रस्तुत किया है । 'तोड़ती पत्थर' में एक श्रमिक महिला आकाश के नीचे कठोर पत्थरों को एक बड़े हथौड़े से तोड़ने का प्रयास करती है । ग्रीष्म ऋतु के लू भरे वातावरण में भी वह निरंतर कार्यरत है । प्रश्न भरी निगाहों से वह कवि की ओर देखती है पर पुनः अपने काम में मग्न हो जाती है मानों कहना चाहती हो कि मेरी नियति यही है--

'सजा सहज सितार
सुनी मैंने वह नही जो थी सुनी झंकार ।
एक क्षण के बाद वह काँपी सुघर,
ढलक माथे से गिरे सीकर,

लीन होते कर्म मे फिर ज्यों कहा

मैं तोड़ती पत्थर ।'[53]

तत्कालीन समाज के शोषण और बंधन की मुक्ति के लिए निराला नारी वर्ग को प्रेरित करते हैं कि वे शोषण व्यवस्था को जड़ से उखाड़ फेके --

'तोड़ो, तोड़ो तोड़ो कारा

पत्थर की निकली फिर गंगा जल धारा !

गृह-गृह की पार्वती !

पुनः सत्य-सुन्दर-शिव को संवारती

उर-उर की बनी आरती ।

भ्रान्तों की निश्चल ध्रुवतारा-

तोड़ो, तोड़ो, तोड़ो कारा ।'[54]

निराला यह जानते थे की एक उन्नतशील समाज के लिए समाज मे पुरुष और नारी वर्ग दोनों का सचेत होना आवश्यक है । अंग्रेजी मे एक कहावत है - **'If you educate a boy, you educate a person, if you educate a girl you educate a family'.**

एक नारी के सचेत होने से सम्पूर्ण परिवार की दिशा बदल जाती है । इसीलिए निराला नारी मुक्ति के पक्षधर थे । वे चाहते थे कि नारी पार्वती के समान सत्य, शिव और सुन्दर को चरितार्थ कर समाज के भ्रांत लोगो का दिशानिर्देशन करे । इसी कारण वे जहॉ एक ओर महादेवी वर्मा और विजयलक्ष्मी पंडित जी जैसी तत्कालीन समाज की सशक्त महिलाओं की प्रशस्तियॉ लिखते हैं, वही दूसरी ओर नारी के ज्ञानमयी रूप सरस्वती की वन्दना करते हुए भारत को स्वतंत्रता की ओर अग्रसर करने का आग्रह करते हैं --

'वर दे वीणावादिनी वरदे

प्रिय स्वतंत्र-रव-अमृत-मन्त्र नव

भारत में भर दे '[55]

श्री नरेन्द्र मानवत की उक्ति निराला की नारी भावना को सटीक रूप से उजागर करती है-

'छायावादी कवियों ने नारी के मन की सूक्ष्म गहराइयों की थाह ली । निराला ने नारी के शक्ति रूप की उपासना की । वह उनकी दृष्टि में अबला न रहकर सबला होकर समादृत हुई । नारी की दीनता, निराशा और असहायता का चित्रण करते हुए भी निराला ने उसे प्रेरणा और स्रोत के रूप में देखा । वह वासना का विष न होकर साधना का अमृत हैं ।'[56]

निराला ने जिस प्रकार समाज के विविध पक्षों का चित्रण किया था उसी प्रकार नज़रुल ने भी समाज के दलितों, शोषितों, नारी, उत्सवों, कुरीतियों का यथार्थवादी चित्रण प्रस्तुत किया है । देश की उत्पीड़ित जनता का चित्रण करते हुए उन्होंने उन्हें शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठाने के लिए प्रेरित किया ।

कालमार्क्स ने मानव समाज को दो श्रेणियों में विभाजित किया था -- धनी एवं निर्धन तथा मालिक और श्रमिक । वास्तव में समाज के इसी वैषम्य के कारण मानव प्रगति पथ पर अग्रसर होने से बाधित हो रहा था । पूँजीपति वर्ग शोषण करता जा रहा था और शोषक वर्ग उनकी उत्पीड़नाओं को सहता जा रहा था । धार्मिक वैमन्स्य मानव को मानव से अलग करता जा रहा था । मनुष्य के इस रूप को देखकर नज़रुल का हृदय आर्तनाद कर उठा और उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से साम्यवादी विचारधाराओं का प्रतिपादन किया । उन्होंने 1925 ई. के 25 दिसम्बर को 'लांगल' पत्रिका में लिखा --

'गाहि साम्येर गान-

जेखाने आसिया एक हय गेछे सब बाधा-व्यवधान

जेखाने मिशेछे हिन्दु-बौद्ध मुस्लिम क्रिसचन ।

गाहि साम्येर गान ।'[57]

अपने काव्य में ही नहीं अपने व्यक्तिगत जीवन में भी नज़रुल इसी प्रकार की विचारधारा के पक्षधर थे । अनवर हुसैन को 1 मार्च 1926 को उन्होंने एक पत्र में लिखा था '' 'मेरे लेखनी की उद्दामता कम होती जा रही है...... क्या आपने मेरा साम्यवादी पढ़ा है ?....... मैं अपने मन के कुन्ज में बसे वंशीवादक की विदाय पदध्वनि आज भी नहीं सुना पाया । पर उसके नवीनतर सुर को सुना है । उसी सुर का आभास 'साम्यवादी' में है ।'[58]

नज़रुल के 'साम्यवादी' और 'सर्वहारा' काव्यों को पढ़ने पर ज्ञात होता है कि वे साम्यवाद और मानवतावाद के कितने बड़े उपासक थे । उनके लिए मनुष्य जाति से बड़ा कोई धर्म, कोई व्यवस्था और कोई नीति नहीं था । उनके द्वारा रचित श्रमिकेर गान, साम्यवादी, मानूस, पाप, बाराङ्ना, नारी, कूलि-मजूर, फरियाद आदि काव्यों के मध्य सामाजिक वैषम्य की कथा स्पष्ट दृष्टिगत होती है --

'गाहि साम्येर गान -

मानूसेर चेये बड़ किछु नाई, नहे किछु महीयान

नाई देशकाल पात्रेर भेद, अभेद धर्मजाति,

स्वदेशे सबकाले धरे धरे तिनि मानूसेर ज्ञाति ।

x x x x

साम्येर गान गाई !

जत पापी तापी सब मोर बोन, सब हय मोर भाई ।'[59]

अर्थात मैं साम्य का गीत गाता हूँ । मनुष्य से बड़ा और महान कुछ भी नहीं है । देशकाल, पात्रभेद, धर्म जाति में कोई भी भेद नहीं है । अभी काल और घर घर में सिर्फ मानव ज्ञान ही विद्यमान रहता है ।

नज़रुल द्वारा रची गई 'श्रमिकेर गान, धीवरदेर गान, कृसानेर गान, राजा-प्रजा, चोर-डाकात, कुलि-मजूर, फरियाद आदि रचनाएँ सामाजिक व्यवस्था के आर्थिक असाम्यता को ही दर्शाते हैं । इसके अतिरिक्त असंख्य कविताओं, गीतों और गद्य रचनाओं में भी उन्होंने समाज में व्याप्त दुर्दशा का चित्रण किया है । अपनी 'कृसानेर गान' नामक रचना में नज़रुल ने शोषक वर्ग के अत्याचारों का उल्लेख करते हुए लिखा है --

'(आज) चार दिक हते धनिक बनिक शोसनकारीर जात,
(ओभाई) जोंकेर मतन शूसछे रक्त काड़छे थालार भात ।
(मोर) बूकेर काछे मरछे खोका, नाइक आमार हात ।
(आज) सती मेयेर बसन केड़े खेलछे खेला खल ।।'[60]

अर्थात चारों ओर धनी व्यापारियों के रूप में शोषक वर्ग विद्यमान है जो जोंक की तरह शोषितों का रक्त चूसते हैं और थाली के चावल को छीन लेते है । शोषित के हृदय के पास ही उसका बेटा मर रहा है और वह कुछ नहीं कर सकता । शोषक वर्ग सती नारी का वस्त्र छीन कर खेल खेलता है ।

इसी प्रकार 'श्रमिकेर गान' में भी नज़रुल श्रमिक की दुर्दशा का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि श्रमिक हाथों में हथौड़ा और कंधे पर हल लेकर बोझा ढोते हैं और राजा मजे से बैठे हुए हैं --

'जत श्रमिक शूसे निङ्ड़े प्रजा
राजा उजिर मारछे माजा,

आमरा मरि बये तादेर बोझारे ।

सबार जूजूर दल ऐ हूजुर दले

दलबी रे आय मजूर दल ।

धर हातूड़ि, तोल काँधे श्राबल ।'[61]

मार्क्स की दृष्टि में पूँजीवादी व्यवस्था 'naked, shameless, direct, brutal, exploitation है और नज़रुल ने अपनी रचनाओं में इसी अत्याचारी व्यवस्था पर कुठाराघात किया है ।

समाज में व्याप्त जातिप्रथा पर व्यंग्य करते हुए नज़रुल कहते हैं कि जात के नाम पर सब बदजाति करते हैं, जात के नाम पर जुआ खेलते हैं । किसी के छूँने से तुम्हारी जाति चली जाती है, जाति किसी बच्चे के हाथ का खेल नहीं है -- शास्त्र से सत्य बड़ा होता है .... क्या तुम भगवान के जात का निर्धारण कर सकते हो ?--

'जातेर नामे बज्जाति सब जात-जालियात खेलछ जूआ ।

छूँलेई तोर जात जाबे ? जात छेलेर हातेर नयतो मोया ।

x x x x

ओरे मूर्ख ओरे जड़, शास्त्र चेये सत्य बड़ ।

x x x x

बलते पारिस विश्व-पिता भगवानेर कोन से जात ।'[62]

उनके अनुसार यदि इसी प्रकार हम जाति को लेकर लड़ते रहेंगे तो हमारे दुःख का अन्त नहीं होगा ।

भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश है । परन्तु इतिहास गवाह है कि धार्मिक साम्प्रदायिकता के तमान्धकार में घिरकर लोगों ने आपसी वैमनस्य के भाव को जन्म दिया

है । यहाँ के लोगों को विदेशियों ने 'incorrigibly religious' माना है--- 'in India more than any other country we have always to notice those movements which spring directly out of the religious spirit of the people. One writer has even said that Indians are 'in corrigibly religious.'[63] धर्मान्ध मनुष्य समाज को विपरीत दिशा में ले जा सकता है । इसी कारण नज़रुल ने समय-समय पर धार्मिक मनोवृत्ति पर आघात किया है और धर्म की उदार व्याख्या कर लोकमानस को आलोकित किया है ।

कार्ल मार्क्स की दृष्टि में धर्म सामाजिक प्रगति के मार्ग में बाधक होता है । नज़रुल ने भी धर्म को प्रगति के मार्ग में बाधक मानते हुए लिखा ---

'काटाये उठेछि धर्म-आफिम नेशा
ध्वंस करेछि धर्म-याजकी पेशा,
भांगी मन्दिर, भांगि मस्जिद,
भाँगिया गिर्जा गाही संगीत -
एक मानबेर एकई रक्तमेशा ।
के सूनिबे आर भजनालयेर ह्रेसा ।'[64]

अर्थात धर्म के अफ़ीमी नशे को मैंने काट दिया है , धर्म के पेशेवरों को ध्वंस कर दिया है, मंदिर, मस्जिद, गिरजाघरों को तोड़कर मैं गीत गाने लगा हूँ -- प्रत्येक मानव का रक्त तो एक ही तरह का है । अब कौन भजनालय के गीत को सुनेगा ।

इसी प्रकार हिन्दू और मुसलमानों में एकत्व की भावना को जागृत करते हुए नज़रुल कहते हैं कि हिन्दु-मुस्लिम दो सहोदर भाई है, एक ही वृन्द के दो कुसुम है ; दोनों ही भारतवासी हैं --

'मुसलिम आर हिन्दू, मोरा दूई सहोदर भाई ।
एक वृन्ते दूटी कुसुम एक भारते ठॉई ।।
मुस्लिम जार सृष्टि रे भाई हिन्दु सृष्टि तॉरि ।
x x x x
बाइरे शुधू रंगेर तफात भितरे भेद नाई ।।'[65]

अर्थात मुसलमान एवं हिन्दु दो सहोदर भाई हैं । भारत उनका ठाँव है और वे एक ही वृन्द के दो फूल हैं । मुसलमान जिनकी सृष्टि है, हिन्दु भी उसी की सृष्टि है । उनमें बाहरी फर्क मात्र रंग का है परन्तु भीतरी मन से उनमें कोई भेद नहीं है ।

नज़रुल ने 'उठ रे चासी' और 'कृसकेर ईद' के माध्यम से शोषित कृसकश्रेणी के दु:सह जीवन की छवि अंकित की है --

'चासी रे ! तोर मुखेर हासि कई ?
तोर गो-राखा राखालेर हाते बॉसे बाँसी कई ?'[66]

नज़रुल जब यह कहते हैं कि कृषक के मुख की हँसी लुप्त हो गई है ; उनके गाय को चराने वाले राखाल की बॅसी खो गई है तो स्पष्ट रूप से वे शोषण की पीड़ा को दर्शाते हैं । यहॉ तक कि ईद के पवित्र उत्सव के अवसर पर भी जब कृषक दुर्दशाग्रस्त मर्मांतक अवस्था में ईदगाह की ओर प्रस्थान करते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि प्रेत-कंकालों का समूह चल रहा हो । ऐसा लगता है मानो दुर्बल गायों का समूह कसाईखाने की ओर बढ़ रहा हो । वे अश्रु-सलिल के मध्य रोज़ा इफ़त्यार करते हैं और अजान देते वक्त उनका कण्ठ बाधित हो जाता है --

'हेर ईदगाहे चलिछे कृसक जेन, प्रेत-कन्काल
कशाईखानाय जाइते देखेछ शीर्ण गरूर पाल ?

रोज़ा एफतार करेछे कृसक अश्रु-सलिले, हाय

बेलाल ! तोमार कन्ठे बूझि गो आजान थामिया जाय ?'[67]

इतना मर्मभेदी चित्रण मात्र वही कर सकता है जिसने स्वयं ऐसे दुःख को सहा हो । नज़रुल ने स्वयं भी गरीबी के भीषण रूप को देखा था । इसी कारण वे शोषित कृषकों की पीड़ा को भली-भाँति समझ पाए थे ।

नज़रुल ने अपने काव्य में सामाजिक उत्सवों का भी सुंदर चित्रण प्रस्तुत किया है । एक ओर वे रंगो के त्योहार होली का चित्रण करते हैं तो दूसरी ओर मेलमिलाप के त्योहार ईद का--

'ईद मोबारक, ईद मोबारक ।

दोस्त दुस्मन पर ओ आपन । सबार महले आजी हउक रौनक ।

x x x x

मिलिया फकीर सहंसाहे ए इदगाहे माहूक इयाहक ।।

एनेछि शीरीन प्रेम पियालाय । एस हे मोमिन करहे एफतार ।'[68]

अर्थात सभी को ईद मुबारक । दोस्त दुश्मन सभी आज अपने है और सभी के महल में रौनक हो । आज फकीर और सहंशाह मिलकर ईदगाह में गीत गाए और प्रेम प्याले में शीरीन का इफ़त्यार करे ।

नज़रुल ने समाज के सभी पक्षों को अपने काव्य के माध्यम से उकेरा है । चाहे उत्सवों को मनाते प्रफुल्लित लोगों का चित्रण हो, चाहे कृषक वर्ग का, चाहे श्रमिकों का चित्रण हो या फिर मछली पकड़ते हुए धींवरों का । इन धीवरों के दुःख को अभिव्यक्त करते हुए कवि विद्रोही हो उठते हैं और यह कहते हैं कि जो मछुआरे गहरे पानी से अब तक विभिन्न मछलियों को पकड़कर लाते थे, वे अब ज़मीन के दैत्यों को पकड़ेंगे --

'आमरा अतल जलेर तलार थेके
रोहित मृगेल आनी छेंके रे
एबार दैत्य दानव धरब रे भाई
डांगाते जाल फेले ।'[69]

इस प्रकार नज़रुल समाज के वैषम्य, का यथार्थवादी एवं मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करते हैं । समाज की अभिन्न अंश नारी को नज़रुल ने अपने गीतों में उच्च स्थान प्रदान किया है । उनके गीतों में नारी कभी विरह विधुरा प्रिया, कभी चारु-हासिनी, विजन-वासिनी, मधु-भासिनी, उदासिनी, कभी स्निग्ध-श्याम वेणी वर्णा और कभी श्यामा तन्वी-मेघवरना है । इसके साथ ही वे नारी के महिमामंडित कल्याणमयी रूप का भी वर्णन करते हैं ।

'जागो नारी जागो वह्निशिखा
जागो स्वाहा सीमन्ते रक्त टिका ।
दिके दिके मेलि तब लेलिहान बासना
नेचे चल उन्मादिनी दिगवसना
जागो हतभागिनी घर्सिता नागिनी
विश्व दाहन तेजे जागो दाहिका ।'[70]

अर्थात 'अग्निशिखा स्वरूप नारी जागो, रक्त बिन्दु के टीका को पहनने वाली नारी जागो । उन्मादिनी, दिगवसना तुम नाचते हुए दिग-दिगन्त में मिल जाओ । हे हतभागिनी घर्सिता नागिनी स्वरूप नारी विश्व दहन करने के लिए तुम जागो ।'

यह एक आश्चर्यजनक तेजमय संगीत है । 'इसके शक्तिदीप्त पौराणिक, पूर्वोल्लेख, वेगवान शब्दमाला के साथ परिपूरक ख्याल, सुर योजना के भीतर से एक

सुगम्भीर आह्वान ध्वनित हुआ है । यही सर्वाधिक प्रचलित बांग्ला नारी जागरणमूलक गीत है ।'[71]

कवि नज़रुल के साहित्यकार्य में नारी का प्रभाव सर्वाधिक है । नज़रुल ने अपने हृदय के गम्भीर आवेग से नारी को कहानियों, नाटकों, उपन्यासों, काव्यों आदि में उपस्थित किया है ।

नारी के माता स्वरूप का दर्शन उनकी 'माँ' रचना में प्राप्त होता है ---

'जे खानेते देखी जाहा
मा-एक मौतोन आहा
एकटि कथाय एतो सुधा मेशानाई
माएर मतन एतो आदर सोहाग सेतो
आर कोन खाने पाइबे ना भाई ।'[72]

अर्थात जिधर भी देखता हूँ 'माँ' के समान सुधा-मिश्रित शब्द, ममत्व और कहीं भी नहीं पाता हूँ ।

समाज में हो रहे नारी के प्रति दुर्व्यवहार का वास्तविक चित्र उपस्थित करते हुए नज़रुल लिखते हैं --

'चोखे चोखे आज चाहिते पारेना
माथार घोमटा छूँडे फेल नारी,
भेंगे फेलओ शिकल
जे घोमटा तोमा करियाछे भीरू
उड़ाओ से आबरन ।'[73]

हाते रूलि, पाये मल

अर्थात आज नारी किसी से नज़रे नहीं मिला सकती है ; अपने सिर के घूँघट को फेंक दो नारी, जंजीरों को तोड़ दो । जिस घूँघट ने तुम्हे भीरु स्वभाव का बना दिया है, उस आवरण को उड़ा दो । ऐसी स्पष्ट भाषा में विश्व के अन्य कवियों ने पुरुष रचित कारागार से नारी को मुक्त करने के लिए शायद कलम नहीं उठाया है । नज़रुल ने सभ्यता के निर्माणकारिणी के रूप में भी नारी का अभिनन्दन किया है और माना है कि नारी ने ही ज्ञान, सुषमा और रूप का संचार इस जगत में किया है --

'ज्ञानेर लक्खी
शस्य लक्खी नारी
सुषमा लक्खी नारीई दियेछे
रूपेर से संचारी ।'[74]

नारी को नज़रुल ने सर्वदा आलोकपथगामी बनाना चाहा । समाज में नारी के गुरुत्वपूर्ण भूमिका को अस्वीकार करते हुए पुरुष वर्ग ने अपने स्वार्थ के लिए जो हीन चेष्टा की है, नज़रुल ने कठोर भाषा में उसकी समालोचना की है । उनके अनुसार समाज और विश्व में नारी की भूमिका पुरुष के समान ही है --

'आमार चोखे पुरुष रमनी कोन भेदाभेद नाई ।
विश्वरे जा किछु महान सृष्टि चिर कल्याणकर,
अर्धेक तार करियाछे नारी, अर्धेक तार नर ।'[75]

अर्थात मेरी दृष्टि में नर-नारी में कोई भेद नहीं है । विश्व में जो भी महान एवं कल्याणकारी सृष्टि है उसका आधा कार्य नारी एवं आधा नर कर रहे हैं ।

1931 में प्रकाशित 'चन्द्रबिन्दु' नामक गीतिग्रन्थ में भी ऐसे कुछ गीतों का समायोजन है । इस गीतग्रन्थ के एक गीत में नारी रूपा देवी का प्रशस्तिकीर्तन है--

'चिर शुद्धचारिनी चिर पवित्रा सूमंगला

चिर अवैध्व्य युता तूमि चिर पूज्य मा, नह अबला ।'[76]

अर्थात चिर शुद्ध चारिणी, चिर पवित्र सुमंगला, चिर अवैध्व्य युता नारी तुम अबला नही बल्कि पूज्य माँ के समान हो ।

इसके अतिरिक्त, 'आमि महाभारती शक्ति नारी', 'मेलि शत दिके शत लेलिहान रसना', 'चॉदेर कन्या चाँद सुल्ताना' जैसे गीत भी उल्लेख्य हैं । इन गीतों में नज़रूल ने नारी को परमशक्ति का अंश मानकर उनका वर्णन किया है ---

'आमि महाभारती शक्ति नारी

आमि कृश तनु-असिलता

स्वाहा आमि तेज-तखारी ।'[77]

अर्थात मैं महाभारती शक्ति, कृश तन-असि-लता और तेज तलवार के समान नारी हूँ । नारी के संबंध में समाज में व्याप्त दुर्बल, शक्तिहीन आदि धारणाओं को झूठा साबित करते हुए नज़रुल नारी को अग्निमय, शानित तलवार आदि उपमानों से विभूषित करते हैं --

'आमि आशा-दीप ज्योति -

आमि कल्याण, साम्य, प्रेम संहति

आमि भवने करूणा-कोमल

भूवनेर सर्व द्वन्द्व संहारी ।

आमि शान्त उदासीन मेघे आनी बर्सनबेग,

आमि तड़ित लता

पराजित पौरूसे जागाये तूली,

दूर करि निराशा दुर्बलता ।[78]

यहॉ नज़रुल नारी को आशा-दीप ज्योति, कल्याण प्रेम साम्य की मूर्ति, करुण-कोमल, द्वन्द्व संहारी, मेघो मे वर्षा लानेवाली, तड़ितलता पराजित पौरुष को जगाकर निराशा और दुर्बलता दूर करने वाली माना है ।

नज़रुल ने अपने विशाल साहित्यकर्म मे नारी जाति को जिस प्रकार सम्मानित, महिमामंडित किया, समान रूप से देखा, नारी को उसके प्राप्य सम्मान के लिए विद्रोह करना सिखाया, अन्य कवियो की रचनाओ मे वह विरल है ।

निष्कर्ष रूप मे यह कहा जा सकता है कि निराला और नज़रुल के समाजवादी विचारधारा के सिद्धांत की पृष्ठभूमि एक ही है । दोनो ही समाज के विविध पक्षो का सूक्ष्म निरीक्षण करते हैं तथा सामाजिक रूढ़ियो का विरोध करते हुए समाज को नूतन आलोक से प्रकाशित करते हैं । समाज के शोषित वर्ग को दोनो कवि जागृत करते हुए विप्लवी मार्ग की ओर प्रशस्त करते हैं । नारी का बहुविध चित्रण करते हुए दोनो कवि नारी को उच्च आसन मे आसीन करते हैं । समाज मे व्याप्त वैमनस्य को दूर करते हुए निराला और नज़रुल समानता, स्वतंत्रता और मानवतावाद के आदर्शो को स्थापित करते हैं ।

निराला और नज़रुल का राष्ट्रीय विचार

प्राचीन काल से भारत को एक राष्ट्र के रूप मे जाना जाता है । 'राष्ट्र' या 'नेशन' शब्द पर सर्वप्रथम यूरोप मे विचार अभिव्यक्त किये गये थे । राष्ट्र शब्द पर विचार करते हुए यह माना गया है कि 'किसी भूखण्ड के जन-समुदाय के एक सामान्य भाषा-साहित्य, रीति-नीति और भौगोलिक एकताके साथ चिन्तन की उचित-अनुचित समानता[79] को राष्ट्र कहा जाता है ।

रुपर्ट इमर्सन 'जन समुदाय की सांस्कृतिक और परम्परा के निरन्तर विकास को ही राष्ट्र'[80] मानते हैं । भारतीय विचारक उमाकान्त केशव आपटे के शब्दों में : 'निश्चित देश को अपना कहने वाले, उस पर परायों की ओर से आक्रमण होने पर परम्परागत आदर्शों का अखण्ड परिपालन करने हेतु अपनी सम्पूर्ण शक्ति को जुटाकर प्रयत्न करने वाले, अपनी संस्कृति और परम्परा का अभिमान रखने वाले तथा इस प्रकार एकात्मकता को प्रेम-रज्जु से आबद्ध होने के कारण, एक दूसरे के उत्कर्ष एवं सुख के हेतु सहकार्य की भावना से कार्य-प्रवृत होने वाले लोगों का समुदाय ही तो राष्ट्र है ।'[81] डॉ. सुधीन्द्र का मत है -- 'भूमि, भूमिवासी जन, और जन-संस्कृति, तीनों के सम्मिलन से राष्ट्र का स्वरूप बनता है ।'[82]

इस प्रकार वह जन-समुदाय जिसका एक सामान्य भाषा-साहित्य, सामान्य संस्कृति, एक जाति, विदेशियों से सहज पार्थक्य की भावना, आर्थिक जीवन-व्यवस्था, मनःसंरचनात्मक धारणा, एक शासन तन्त्र, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की आकांक्षा एक सामान्य धर्म और राजनीतिक रूप से संघटित एक भौमिक इकाई हो, राष्ट्र कहलाता है ।

जिस प्रकार राष्ट्र का सम्बन्ध जन-समुदाय और उसकी समान मानसिक प्रतिबद्धता से है, उसी प्रकार राष्ट्रीयता का सम्बन्ध पूर्ण रूप से मानसिक है ।

विद्वानों ने 'राष्ट्रीय' शब्द को भी व्याख्यायित करने का प्रयास किया है । जे. एच. हेज कार्ल्टन के अनुसार -- 'सामान्य और ऐतिहासिक परम्पराओं की एकता ही राष्ट्रीयता है ।'[83] डॉ. भीमराव अम्बेडकर के शब्दों में राष्ट्रीयता श्रेणीगत चेतना की एक अनुभूति है, जो एक ओर तो उन व्यक्तियों को, जिनमें यह इतनी प्रगाढ़ होती है कि आर्थिक संघर्ष या समाजगत उच्चता-नीचता के कारण उत्पन्न होने वाले भेद-भावों को

दबाकर एक सूत्र में बाँधे रखती है और दूसरी ओर उनको ऐसे लोगों से पृथक करती है, जो उस श्रेणी के नहीं हैं ।'[84] प्रोफेसर इचसेक 'राज्य के भीतर की पारस्परिक संवेगात्मक समरूपता को ही राष्ट्रीयता मानते हैं ।'[85]

इन परिभाषाओं के आधार पर राष्ट्रीयता के कुछ तत्व उभर कर हमारे समक्ष आते हैं । ये तत्व हैं -- भौगोलिक एकत्व, जातीय एकत्व, भाषागत एकत्व, धार्मिक एकत्व, आर्थिक आकांशा स्वरूप एकत्व, राजनीतिक एकत्व, इतिहास एवं लक्ष्य की समानता तथा सांस्कृतिक एकत्व ।

जिस वक्त निराला और नज़रुल ने देश में जन्मग्रहण लिया था उस वक्त देश गुलामी की जंजीरों में जकड़ा हुआ था । दोनों कवियों ने पराधीनता के भीषण प्रहारों को झेला था । इसी कारण दोनों का काव्य राष्ट्रीयता के स्वरूप का जीता जागता उदाहरण प्रस्तुत करता है ।

निराला अपने काल के सबसे अधिक जागरूक कवि थे । उन्होंने काव्य को ही छन्द से मुक्त नहीं किया अपितु देश की जनता में भी जागरण का शंख फूँका ।

'निराला की राष्ट्रीयता भारत की इस मिट्टी में उगती, पनपती है, परन्तु इसमें प्रफुल्लित एवं पल्लवित होती हुई बहुत दूर जाकर वह समस्त मानवता में अपने को समेट लेती है । इसलिए उनकी राष्ट्रीय कविता का धरातल बड़ा विस्तृत और बहुरंगी है ।'[86]

पश्चिम के पुनर्जागरण का प्रभाव भारत में भी पड़ा और भारतीय संस्कृति के स्वाभाविक गति और मार्ग में अराजकता आ गयी । निराला अपने गीतों में इसी विषय को चित्रित करते हुए लिखते है कि हमारे देश की दुर्गति का वास्तविक कारण यही है कि हमारे सहज स्वाभाविक पथ को मोड़कर हमें एक दूसरी दिशा की ओर प्रस्थान करने का मार्ग प्रशस्त किया जा रहा है --

'शत-शत वर्षों का मग

हुआ पार देश का, न हुए प्राण सार्थक जग ।'[87]

भारत की इस दशा पर लोगों में हाहाकार मच गया है । लोकमन शक्तिहीन और निश्चल हो गया है --

'उठा आज कोलाहल, गया लुट सकल संवल,

शक्तिहीन तन निश्चल, रहित रक्त से रग-रग ।'[88]

भारतीय शौर्य का बोध कराते हुए निराला देश की जनता को जगाने का आह्वान करते हैं--

'शेरों की मांद में आया है आज स्यार-

जागो फिर एक बार ।'[89]

मातृभूमि के भौगोलिक विस्तार को व्याख्यायित करते हुए निराला ने लिखा कि भारत के युगल चरण, लंका अमल कमल है, जिस पर प्रतिष्ठित होकर ये चरण पूजित हैं, महासमुद्र अर्घ्यदान से प्रक्षालन कर रहा है । पर्वतराज हिमालय इसका शुभ्र मुकुट है, हार गले में पड़कर वक्षःस्थल पर लहराता है । यहाँ पंजाब की सिन्धु आदि पाँच नदियों, गंगा, यमुना और ब्रह्मपुत्र का उद्गम हिमालय है, जहाँ से निकलकर भारत के भीतरी भागों में यह प्रस्रवित होती है, और अपने जल रूपी सौरभ से उसके निवासियों को आमोदित करती है । विन्ध्य-प्रदेश इसकी जाँघें है, जिन्हें सघन विन्ध्यावटी आच्छादित किये हैं । तीस करोड़ इसके निवासी हैं जो मधुर कण्ठ से इसकी अभ्यर्थना के गीत गाते हैं । समस्त तारागण, सूर्य और चन्द्रमा अपने चपल चरणों पर थिरकते हुए इसे रिझाने में व्यस्त हैं । महासमुद इसके चरणों को चूमते हुए अपने मधुर मन्त्र गर्जन से ताल दे रहा है --

'बन्धू तव अमल-कमल चिर सेवित चरण-युगल ।

मुकुट शुभ्र हिमागार हृदय बीच विमल हार
पंचसिन्धु, ब्रह्मपुत्र, रवितनया, गंगा
विन्ध्य-विपिन राजे घन घेरि युगल जंघा
त्रिदशः कोटि नर-समाज मधुर कण्ठ मुखर आज ।
चपल चरण-भंग नाच तारागण सूर्य-चन्द्र
चूम चरण, ताल भार गरज जलधि मधुर मन्द्र ।'[90]

इसी प्रकार गीतिका के एक गीत में निराला मातृभूमि की वन्दना करते हुए भारत के भौगोलिक विस्तार और सुषमा का चित्रण करते हैं --

'भारती, जय विजय करे ! कनक शस्य कमल धरे
लंका पदतल शतदल गर्जितोर्मि सागर-जल
धोता शुचि चरण-युगल स्तव कर बहु अर्थ-भेद
तरू-तृण वन लता-बसन, अंचर में खचित सुमन
गंगा-ज्योतिर्जल-कण धवल धार हार गले
मुकुट शुभ्र हिम तुषार, प्राण प्रणव ओंकार,
ध्वनित दिशायें उदार, शतमुख, शतरव मुखरैं ।'[91]

राष्ट्र के जन-समूह की अज्ञानता को दूर कर भारत को एक उन्नत राष्ट्र बनाने के लिए निराला ज्ञान की देवी सरस्वती की वन्दना करते हुए उनसे अनुरोध करते हैं कि वे अज्ञानता भरे हृदय के बन्धनों को काट दे और ज्ञानमय प्रपात प्रवाहित कर, अन्धकार का हरण कर सम्पूर्ण संसार में प्रकाश भर दे--

'वर दे वीणावादिनी वर दे !
प्रिय स्वतंत्र रव अमृत मन्त्र नव

भारत में भर दे !

काट अन्ध उर के बन्ध-स्तर

बहा जननि, ज्योतिर्मय निर्झर,

कलुष भेद, तुम हर, प्रकाश भर

जगमग जग कर दे !'[92]

भारत की राष्ट्रीयता को बरकरार रखने के लिए निराला जाति-भेद और शोषक-शोषित के भेद को मिटा देना चाहते हैं । शोषण-मुक्ति का आह्वान करते हुए उन दलित-शोषितों के हृदय की व्यथा को प्रकट करते हैं --

'सहज-सहज पग धर आओ उतर,

देखें वे भी तुम्हें पथ पर ।

वह जो सिर बोझ लिये आ रहा,

वह जो बछड़े को नहला रहा,

देखूँ वे तुम्हें देख जाते भी हैं ठही ?'[93]

वर्तमान राष्ट्र की परिस्थिति में मनुष्य मानव मात्र न रहकर धर्म-जाति, वर्ण भेद में बँट गया है । इस विडम्बना को प्रकट करते हुए निराला लिखते हैं --

'बदले हुए कुम्हार, नाई-धोबी-कहार,

ब्राह्मण क्षत्रिय-वैश्य, पासी-भंगी चमार,

परिया और कोल-भील, नहीं आज का यह हिन्दु

आज का यह मुसलमान, आज का ईसाई सिक्ख,

आज का यह मनोभाव, आज की यह रूप-रेखा ।

नहीं यह कल्पना सत्य है मनुष्य का

मनुष्यत्व के लिए, बन्द है जो दल अभी
किरण-सम्पात से खुल गये वे सभी ।'[94]

निराला की राष्ट्रीय कविताओं का काल भारत की दासता का काल रहा है । भारत को स्वतंत्र कराने में व्यस्त स्वाधीनता सेनानियों से अपनी स्वर धारा को मिलाते हुए निराला ने साहित्यिक नेतृत्व किया । 'अपने समकालीन कवियों के समान महाकवि निराला ने भी राष्ट्र-वन्दना के गीत गाये और अपनी निष्कपट भावनाओं की सरस अभिव्यंजना की है । निराला के वन्दना-गीतों में निरालापन भी है ।'[95]

निराला ने अपनी कई रचनाओं में नवीन भांगिमा द्वारा अपनी बात को प्रस्तुत किया है । 'बादल राग -1 में विदेशी शासन का कहीं भी नाम नहीं लिया गया है, किन्तु उसे उखाड़ फेंकने के लिए जिस क्रान्तिकारिता की सृष्टि की गई है, वह सामयिक महत्त्व की होती हुई भी निरवधिक महत्त्व रखती है --

'झूम-झूम मृदु गरज-गरज घन घोर ।
राग-अमर । अम्बर में भर निज रोर ।
झर-झर, झर निर्झर-गिरि सर में,
घर, मरू तरु-मर्मम, सागर में
सरित-तड़ित-गति-चलित पवन में
मन में विजन-गहन कानन में
आनन-आनन में रव घोर कठोर........'[96]

बादल विप्लव का प्रतीक है । अन्याय के विरुद्ध भैरव गर्जन कर वह अन्यायी को आतंकित करता है और परोपकारार्थ रसधार की वर्षा करता है । क्रांति का संकेत पाते ही निराला का हृदय नाच उठता है --

'देख देख नाचता हृदय

बहने को महा विकल-बेकल

इस मरोर से- इसी शोर-से

मुझे-गगन का दिखा सहान वह छोर ।'[97]

इसी क्रान्ति के वाहक और भी ऐसे गीत हैं जो मानव मन को झकझोर कर रख देता है । 'एक बार बस और नाच तू श्यामा' 'नाचे उस पर श्यामा', इत्यादि ऐसी ही कुछ रचनाएँ है ।

अपने समक्ष एकता की प्रबल भावना को उदित होता देख निराला स्वाधीन भारत की परिकल्पना करने लगते हैं जहाँ आजादी का सूर्य उदित हो चुका है और लोग विजय-गान कर रहे हैं --

'जागा दिशा-ज्ञान,

उगा रवि पूर्व गगन में, नव-यान

x x x x

हारे हुए सकल दैन्य दल मल चले,

जीते हुए लगे बीते हुए गले, बन्द वह विश्व में गूँजा विजय गान ।'[98]

निराला यह जानते थे कि देश को प्रगति के पथ पर अग्रसर करने के लिए उसका आर्थिक रूप से सशक्त होना अतिआवश्यक है । परन्तु विदेशियों के मायाजाल ने इस धरती को अर्थ-शून्य कर दिया था । निराला इस विपन्नता पर पश्चाताप करते हुए देशवासियों को कमर कसकर कर्म-मार्ग की ओर अग्रसर करने के लिए प्रेरित करते हैं --

'क्यों अकर्मण्य सोचना बैठ, गिनता समर्थ हो व्यर्थ लहर

आये कितने ले गये अर्थ, बढ़ विषम बाड़वानल-जलतर ।'[99]

कवि देशवासियों के अज्ञान-पटल को खोल देने के लिए माँ भारती से प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि यदि भारतवासी उत्थान कार्य में जुट जाय तो इस रत्नगर्भा धरती की प्रगति निश्चित है --

'जागो जीवन धनिके ! विश्व पुण्य-प्रिय वणिके !

दुःखभार भारत-तम केवल, वीर्य-सूर्य के ढके सकलदल

x x x x

भारति, भारत को फिर दो वर ज्ञान-विपणि खनिके ।

दिवस-मास-ऋतु-अयन-वर्ष भर अयुत वर्ण युग-योग निरन्तर

बहते शेष छोड़ सब तुम पर लव-निमेष-कणिके ।'[100]

निराला देश के प्रगति पथ पर जाति एवं वर्ण व्यवस्था को बाधक मानते थे । उनके अनुसार---

'शूद्र-शक्तियों से यथार्थ भारतीयता की किरणें

फूटेंगी । वे ही भविष्य के ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हैं

और ब्राह्मण-क्षत्रिय और दृप्त जातियाँ शूद्र ।'[101]

डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार -- 'निराला का रास्ता दूसरा था । द्विज और शूद्र का भेद मिटाओ, धार्मिक रूढ़ियों का विरोध करके हिन्दू मुसलमान को मिलाओ । कानून के सहारे स्वाधीनता-आन्दोलन न चलाओ, जमीन्दार के विरुद्ध किसानों का संघर्ष तेज करो । राष्ट्रीय एकता के लिए हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाओ, इस प्रसंग में किसका साहित्य अधिक समृद्ध है, किसका कम, यह सवाल मत उठाओ । राष्ट्रभाषा के नाम पर हिन्दी का जातीय रूप न बिगाड़ो, नेतृत्व कायम रखने के लिए पन्द्रह करोड़ की भाषा के साथ खिलवाड़ मत

करो, उसका सहज जातीय रूप ही राष्ट्रभाषा हो सकता है, उस रूप को विकसित होने दो ।'[102]

निराला के रचना-जीवन की शुरुआत से ही उनकी रचनाओ मे राष्ट्रीय उद्बोधन की शैली विद्यमान है । अपने राष्ट्रगीतो मे वे कातर प्रार्थना के स्थान पर पवित्र और भक्तिमय आत्म-समर्पण प्रस्तुत करते हुए भारत के भौगोलिक रेखाकन के साथ उसका सांस्कृतिक निरूपण करते हैं । अपने गीतो मे वे शुद्ध-भारतीय संस्कृति की चर्चा करते हैं ; धार्मिक और सांस्कृतिक मेलमिलाप को दर्शाते हैं और गुलामी के जंजीरो को तोड़ फेकने के लिए भारतीय जन-मानस को प्रेरित करते हैं ।

अपने गीतो मे वे प्रगतिवादी चेतना को स्थान देते हैं । देश की सोयी जनता को जगाने के लिए वे अपने गीतो के माध्यम से राष्ट्रवादी चेतना का संचार करते हैं --

'मॉ तू भारत की पृथ्वी पर
उतर रूपमय माय तनधर,
x x x
फिर उनके मानस-शतदल पर
खिला जगत तू अपनी छवि मे ।'[103]

बांग्ला राष्ट्रीय गीतो की धारा मे काज़ी नज़रुल इस्लाम एक महान युगस्रष्टा के रूप मे स्मरणीय हैं । नज़रुल ने संख्या एवं वैचित्र्य विचार की दृष्टि से सर्वाधिक राष्ट्रीय गीतो की रचना की है । उन्नसवी शताब्दी के अन्तिम वर्षो मे भारत मे ब्रिटिश शासन के विरूद्ध एक रक्तमयी संग्राम की उद्घोषणा हो चुकी थी । भारत के अनेक प्रदेशो मे इस आन्दोलन मे बंगाल का नाम अग्रगण्य था । 1908 ई. मे प्रफुल्ल चाकी और खुदीराम बसू के आत्मदान की कथा को कौन नहीं जानता । ऐसे ही एक वीर सेनानी नज़रुल भी थे जिन्होने अपने गीतो के माध्यम से सोयी हुई जनता को जगाया ।

नज़रुल ने अपनी पढाई छोड़कर 49 नं. बंगाली रेजिमेन्ट मे युद्धविद्या सीखी थी । यह कृत्य उनकी राष्ट्र-भक्ति को दर्शाता है । स्वाधीनता एवं समाज-परिवर्तन के संग्राम मे अभय होकर सम्पृक्त हुए । उनके सम्पूर्ण प्रयास की मूल चेतना मे विद्रोह ने अपना स्थान निर्धारित किया । एक ओर वे देश की पूर्ण स्वतंत्रता के पक्षधर थे तो दूसरी ओर देश को कुसंस्कार, साम्प्रदायिक वैमनष्य, और शोषण के खिलाफ आवाज़ उठाकर देश को जागृति-पथ पर आसीन करना चाहते थे ।

1921ई. के दिसम्बर महीने मे नज़रुल ने विद्रोही नामक काव्य की रचना की। इसकी अग्निमय भाषा, वीर्यवान सुर और तीक्ष्ण छन्दाघात ने देश की सुसुप्त जनता को ज्वालामुखी के समान झकझोर कर रख दिया । नज़रुल ने लिखा --

'महा विद्रोही रण-कान्त
आमि सेई दिन हब शान्त
जबे उत्पीड़ितेर क्रन्दन-रोल
आकाशे-बातासे धवनिवे ना
अत्याचारिर खड़ग कृपान भीम रण-भूमे रनिबेना-
विद्रोही रण-कलान्त
आमि सेई दिन हब शान्त ।'[104]

अर्थात मैं महाविद्रोही हूॅ जो रण-क्लान्त है । मैं तभी शान्त हूॅगा जब उत्पीड़ितो का क्रन्दन आकाश-वायु में ध्वनित नहीं होगा, अत्याचारियो का खड्ग रण-भूमि में नहीं रहेगा । मैं रणकलान्त विद्रोही हूॅ और मैं तभी शान्त हूॅगा ।

अत्याचारियो के विरुद्ध किसी भी बंगाली ने ऐसी ओजमय भाषा मे काव्य-रचना नहीं की है । 'भांडार गान' में भी अत्याचारियो और शत्रु पक्ष के विरुद्ध दृप्त-आह्वान करते

हुए नज़रुल लिखते हैं --

'कारर ओई लौह कपाट
भेङे फेल ; कर रे लोपाट
शिकल पूजोर पासान-बेदी !
ओरे ओ तरूण ईशान !
राजा तोर प्रलय-बिसान
ध्वन्स-निशान
उड़ूक प्राचीर प्राचीर भेदि ।'[105]

नज़रुल देश की जनता से कहते हैं कि कारागार के लौह कपाट को तोड़कर चूर-चूर कर दो । तरुण दल के प्रलय का विसाण राजा है । हर प्राचीर को भेदकर ध्वन्स-निशान उड़े । गोपाल हालदार ने इस गीत को 'जातीय आन्दोलन का प्रथम महान संगीत' माना है--

'It was the first great song of the national movement - something more strident than swadeshi songs of the old ; and one which was a foreunner of some more songs that Nazrul was to offer in the days to come . As a call to action, in its tune and wording a general appeal the song was of unfailing effect.'[106]

1924 ई. में प्रकाशित 'बिशेर बाँसी' में 18 राष्ट्रीय गीत संकलित है । इन गीतों में नज़रुल ने अपनी ओजमयी वाणी का परिचय दिया है । ये गीत हैं -- आज भारत भाग्यविधातार ; दुःख कि भाई हारानो सूदिन, बाजाओ प्रभु बाजा ओ घन बाजाओ ; बल, नाहि भय ; एक विद्रोही मिथ्या-सूदन आत्मशक्ति-बुद्ध वीर ; एम एस आगो मरण ; आजि

रक्त निशी भोरे ; शिकले जादेर उठेछे बाजिया ; ओ भाई मुक्ति सेवक दल ; एई शिकल परा छल मोदेर ; बन्दि तोमायफन्दि-कारार ; बल भाई माभौःमाभौः घोर घोर रे आमार साधेर चरका घोर ; जातेर नामे बज्जाति ; पूँथीर बिधान जाक पूडे तोर ; अभ्र भेदी तोमार धवजा उड़लो आकाश पथे ; ए कोन पागल पथिक छूटे एल बन्दिनी मार आङिनाय ।' इसी प्रकार नज़रुल ने 'भांगार गान', 'बुलबुल', 'जिंजिर', 'जुलफिकर', 'प्रलय शिखा', 'गुल बागिचा', 'सुरसाकी', 'चन्द्रबिन्दु', 'नज़रुल-गीतिका', 'बनगीति', 'गानेर माला', 'झड़' आदि गीत ग्रंथों में अजस्र गीतों की सृष्टि की है ।

निराला की भाँति ही नज़रुल ने भी देशवन्दनामूलक गीत लिखे हैं । देश के प्रति गहन प्रेम की झलक इन गीतों के माध्यम से प्रकट होता है । इस प्रकार के गीतों में देश के प्रति श्रद्धाज्ञापन, देश की शोभा का वर्णन, देश के गौरव का प्रचार, पूर्वगौरवबोध देश के वर्तमान अवस्था पर खेद -- आदि व्यक्त किया गया है ।

ऐसे ही एक गीत में नज़रुल भारत को विश्व का प्राण घोषित करते हुए लिखते हैं कि भारत इस धरणी की ज्येष्ठ कन्या और आदि माता है ; तुम्हारे पुत्रों ने वेद-वेन्दान्त के साम-गाथा को गाया है ; तुम्हारी ही गोद में भगवान ने पर्दापण किया । तुम आदिम युग की प्रथम धात्री हो, तुम्हारे ही आलोक से प्रभात-रात्रि होती है । तुम्ही ने सभी को अमृत-गान का प्रतिदान दिया है । तुम्हारा वर्ण सोना रूपी शस्य है ; अन्तर में तुम्हारे हीरे, माणिक्य और स्वर्ण है --

'आमार सोनार हिन्दुस्तान ?/ देशे देशे वन्दिता तूमि विश्वेर प्राण ।
धरणीर ज्येष्ठ कन्या तूमि आदि माता : तब पुत्र गाहिल वेद-वेदान्त साम गाथा ।
तब कोले बारे-बारे एल भगवान ।।
आदिम जूगेर तूमि प्रथमा धात्री / तोमार आलोके होलो प्रभात रात्री,

सबे बिलाइले अमृत संगीत ज्ञान ।।

सोनार शस्य तोमा झलमल वर्ण / अन्तरे मानिक्य, मणि, हीरा, स्वर्ण ;।'[107]

नज़रुल ने भारत को पराधीनता के तमान्धकार से मुक्त कराने के लिए भारत की सोयी हुई जनता को विद्रोह करने के लिए प्रेरित किया । ऐसे अजस्र गीतों में कुछेक गीत हैं -- 'ओ भाई मुक्त सेवक दल ; तोरा सब जयध्वनि कर ; घोर घोर रे हमार साधेर चरका घोर ; मोरा झर्नार मत चंचल, दुर्गम गिरि कान्तर मरु, चल, चल चल आदि । इनमें से एक गीत है--

'दुर्गम गिरि कान्तर मरु, दुस्तर पारबार

लंघिते हबे रात्रि निशिते, यात्री रा होशियार ।'[108]

अर्थात सामने दुर्गम पर्वत, कान्तर मरुभूमि और दुस्तर पारावार है, हमें यह सभी रात को ही लांघना है । इसलिए यात्रीगण होशियार रहे । भारत की सुसुप्त जनता को जगाते हुए कवि कहते हैं कि दुस्तर पथ के नव यात्री तुम जागो । इस तिमिर रात्री में जागो ।..... हमारा अभियान असंभव के मध्य है । प्रत्येक युग में हम मनुष्य का महीयान करते है ।.... वज्र के आलोक में, मृत्यु के मुख में तुम निर्भीक होकर खड़े रहो ---

'जागो दुस्तर पथेर नव यात्री । जागो जागो !

एई पहोहाल तिमिर रात्री !/ जागो जागो ।।

असम्भवेर पथे आमादेर अभियान,

युगे युगे करि मानुषेर महीयान

X X X

बज्रेर आलोके मृतुर मुखे

दाँड़ाब निर्भीक उग्र सुखे ।'[109]

'मात्र लेखनी के द्वारा नज़रुल ने देशवासियों को अनुप्राणित नहीं किया, जातीय आन्दोलन के साथ भी उनका प्रत्यक्ष योगदान था । प्रमुख रूप से उन्होंने सुभाषचन्द्र के साथ सभा-समीतियों में जाकर ऐसे मतवाले गीतों को गाया । ...... एक ओर राजनैतिक कार्यकलाप, और दूसरी ओर व्यापक जनप्रियता जो अन्य समकालीन किसी भी कवि में दिखाई नहीं पड़ा ।'[110]

नज़रुल ने स्वयं सभाओं में अंशग्रहण किया जेल में अत्याचारों को सहा, अनशन किया । इसी कारण इस भिज्ञ कवि के गीतों में प्राण का संचार है । शब्द प्रयोग और छन्द कौशल के मध्य ऐसी वेगवान रचना नज़रुल के अतिरिक्त और कोई भी नहीं कर सकता था ।

1925 ई. के अंत में नज़रुल ने प्रत्यक्ष रूप से राजनीति में अंश ग्रहण किया । साधारण मनुष्य के मध्य व्यापक रूप से कार्य करना और श्रमिक कृषक, जेल के सभी मनुष्यों को संघबद्ध करने की प्रेरणा से ही उन्होंने सक्रिय रूप से राजनीति में प्रवेश किया । 'लांगल' और 'गणवाणी' में प्रकाशित गीतों के समूहों के माध्यम से नज़रुल ने युगों से अवलेलित और शोषित मेहनती जनता के प्रति अर्थनैतिक मुक्ति और संघबद्ध होने का आह्वान किया । शोषण के विरुद्ध संग्राम करते हुए नज़रुल ने -- 'कृषकेर गान (उठ रे चासी जगद्वासी) श्रमिकेर गान (उरे ध्वंस-पथेर यात्रीदल), धीबरेर गान (आमरा नीचे पड़े) , रक्तपताकार गान (उड़ाओ उड़ाओ लाल निशान), जागर तूर्य (ओरे ओश्रमिक, सब महिमार) इन्टर-नैशनल संगीत (जागो अनशन-बन्दी) आदि गीतों की रचना की ।

इन गीतों में इन्टरनैशनल संगीत ने काफी प्रसिद्धि अर्जित की --

'जागो--

जागो अनशन-बन्दी उठरे जत

जगतेर लन्छित भाग्यहत ।।

जत अत्याचारे आजि बज्र हानि

हाँके निपीड़ित जन-मन-मथित बाणी

नब जनम लभि अभिनव धरनी

ओरे ओई आगत ।[111]

इस गीत का अंग्रेजी अनुवाद इस प्रकार --

'Arise, ye prisoners of star vation

Arise, ye wretched of the earth,

For justice thunders condemnation-

A better world's in birth'.

अर्थात 'हे अनशन बन्दियो, जगत के लान्छित, भाग्यहत, उठो, जागो, अत्याचार के वज्राघात से पीड़ित जन-मन की मथित वाणी को नव जन्म देकर इस धरती को अभिनवत्व प्रदान करो ।'

नज़रुल ने जाति-धर्म भेद छोड़कर सभी भारत वासियों को एक होने और देश को स्वतंत्र बनाने के लिए लोगों को अपने गीतों के माध्यम से चेताया । वे कहते है कि -- पराधीन होने के कारण क्या तुममें सत्यनिष्ठा नहीं है ? अपमान को सहकर तुम क्या अपने मुख से विषपान कर लोगे ? यह बात किसने तुमसे पूछा है कि तुम हिन्दू हो या मुसलमान हे विद्रोहियों तुम उनसे कह दो कि मेरी माँ के संतान डूबने जा रहे हैं --

'पराधीन बले नाई तोमादेर

सत्यतेजेर निष्ठा कि ?

अपमान सये मुख पेते नेबे

विष्ठा कि ?

हिन्दु ना ओरा मुसलिम ? ओई जिज्ञेसे कोन जन

कांडारी ! बलो, डूबिछे मानूस, सन्तान मोर मार ।'[112]

नज़रुल ने देश की नारी-सत्ता को भी जगाया और राष्ट्र को उन्नति के पथ पर आसीन करने के लिए उनकी शक्ति को जन-जन के समक्ष प्रस्तुत करते हुए लिखा कि -- 'मैं महाभारती शक्ति नारी हूँ.......... जो पराजित पौरुष को जगाकर उनकी निराशा और दुर्बलता को दूर करती हूँ । .... मैं विश्व में नवारुण आलोक भर तिमिर अंधकार को दूर करती हूँ----

'आमि महाभारती शक्तिनारी ।

पराजित पौरुसे जागाये तूलि, दूर करि निराशा दुर्बलता ।

x x x x

आमि नबारूण आलोके आनिब विश्व तिमिर बिदारी ।'[113]

राष्ट्रीय गीतों की धारा में नज़रुल की भूमिका अविस्मरणीय है । एक ओर उनके गीतों में पराधीनता के विरुद्ध संग्राम है तो दूसरी घोर शोषण के विरुद्ध आवाज़ ; एक ओर देश की वन्दना करते हुए वे मातृभूमि की शोभा का वर्णन करते हैं तो दूसरी ओर देश की सुसुप्त जनता को विद्रोह करने को उकसाते हैं ।

निराला और नज़रुल दोनों ने भावविह्वलित राष्ट्रीय गीतों की रचना की । दोनों ही राष्ट्र को पराधीनता की बेड़ियों से मुक्त कराना चाहते थे । इसी कारण वे विद्रोह का आह्वान करते हैं । साथ ही अपनी मातृभूमि की सुषमा का वर्णन कर जन-मानस के मन में राष्ट्रीय भाव को जगाते हैं । देश को उन्नति के पथ पर आसीन करने के लिए दोनों कवि खुलकर कुसंस्कारों का विरोध करते हैं ।

निराला और नज़रुल के गीतों में प्रशस्ति गायन

समय-समय पर कवियों और लेखकों ने अपनी रचनाओं में युगनायकों का प्रशस्ति गायन कर जन मन और समाज का मार्गदर्शन किया है । समाज का दिशानिर्देशन करने के लिए कार्यरत संवेदनशील रचनाकारों ने प्राचीन समय से मानव को सही रास्ता दिखाने के लिए युगनायकों के विषय में अपने विचार व्यक्त किए । इनमें तुलसीदास का नाम अग्रगण्य है । कालजयी रचना 'रामचरितमानस' की रचना कर उन्होंने दिग्भ्रमित लोगों को सही रास्ता दिखाया और पतित समाज का पुनर्निमाण किया ।

ऐसे ही रचनाकारों की कोटि में निराला और नज़रुल आते हैं जिन्होंने समय-समय पर युगनायकों के प्रशस्ति गायन द्वारा पराधीन देश की निराश जनता के मन में प्राणत्व का संचार किया । उनके द्वारा दी गई श्रद्धांजलियों में विनम्रता और सम्मान का भाव लक्षित होता है ।

धार्मिक युगनायकों के प्रशस्ति गायन में 1940 में 'अणिमा' में प्रकाशित 'भगवान बुद्ध के प्रति' रचना में निराला ने मात्र बुद्ध की प्रशंसा ही नहीं की अपितु आधुनिक जीवन के वैज्ञानिक विकास और नष्ट होते विश्व का चित्रण भी किया है --

'आज सभ्यता के वैज्ञानिक जड़ विकास पर
गर्वित विश्व नष्ट होने की ओर अग्रसर
x x x x
भिड़े राष्ट्र से राष्ट्र-स्वार्थ से स्वार्थ विचक्षण ।
x x x x
विमुख भोग से, राजकुंवर, त्याग कर सर्वस्थित
x x x x
कठिन तपस्या में, पहुँचे लक्ष्य को तथागत ।'[114]

निराला ने हिन्दी के साहित्यकारों का प्रशस्ति गायन करते हुए हिन्दी को एक नूतन मार्ग

की ओर प्रशस्त किया है । संत कवि रविदास के प्रति निराला अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हुए उन्हें ज्ञानी मुनीश्वर की उपाधि से विभूषित करते हैं --

'ज्ञान के आकर मुनीश्वर थे परम
धर्म से ध्वज, हुए उनमें अन्यतम,
पूज्य अग्रज भक्त कवियों के प्रखर
कल्पना की किरण नीरज पर सुघर
x x x
कर्म के अभ्यास में अविरत बहे
ज्ञान-गंगा में, समुज्ज्वल चर्मकार,
चरण छू कर रहा मैं नमस्कार ।'[115]

'आचार्य शुक्ल के प्रति' अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हुए निराला लिखते हैं कि समालोचना के अम्बर पर जल रात्रि विद्यमान थी तब तुमने (आचार्य शुक्ल) जन्म ग्रहण किया और हिन्दी जगत को अपने ज्ञान से आलोकित किया --

'अमा निशा थी समालोचना के अम्बर पर
उदित हुए जब तुम हिन्दी के दिव्य कलाधर
x x x x
छिड़ी सिद्ध साहित्यिक से तुमसे जब वचसा ।
मुक्त चतुर्थी समालोचना वधू ब्याहकर
लायेतुम, पन्चमी काव्यवाणी अपने घर ।
षष्ठी, छह ऐश्वर्य प्रदर्शित कोष प्राण में,
शिक्षण की सप्तमी, महार्णव सप्त ज्ञान में ।'[116]

निराला ने छायावादी कवियों के प्रति भी अपनी श्रद्धा व्यक्त की है । 'आदरणीय प्रसाद जी

के प्रति' में वे एक दीर्घ गीत की सृष्टि करते हुए जयशंकर प्रसाद का प्रशस्ति गायन करते हैं । उनके अनुसार प्रसाद जी ने सुमित्रनन्दन पंत, दिनकर आदि अनेक कवियों का पथ प्रदर्शन किया है । गीत के अंत में वे प्रसाद जी के जीवन त्याग देने पर दुःख व्यक्त करते हुए लिखते हैं --

'अपने में निश्चल
युगप्रवर्तक, हुए शीत में व्याधि से विकल,
रहा साथ मैं नतमस्तक, सेवा को ; अग्रज,
चले गए तुम धरा छोड़ गौरव-विजय ध्वज ।'[117]

इसी प्रकार 'युग-प्रवर्तिका श्रीमती महादेवी वर्मा के प्रति' गीत में वे लिखते हैं कि अपनी रचनाओं के माध्यम से उन्होंने व्यंग्य के उत्तर दिये । नारी होते हुए भी वह नर के समकक्ष थी--

'दिये व्यंग्य के उत्तर रचनाओं से रच कर
विदुषी रहीं विदूषक के समक्ष तुम तत्पर ;
हिन्दी के विशाल मंदिर की वीणा-वाणी,
स्फूर्ति-चेतन रचना की प्रतिमा कल्याणी--।'[118]

निराला ने युगनायकों का प्रशस्ति गायन करते हुए ऐसी अनेक रचनाएँ की । उन्होंने रामकृष्ण, स्वामी प्रेमानन्द जी महराज, श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डित, जवाहरलाल नेहरू आदि अनेक महापुरुषों पर प्रशस्तियाँ लिखी ।

राष्ट्रनायक जवाहरलाल नेहरू पर एक सुन्दर कजली लिखते हुए उन्होंने देश के अकाल-पीड़ित जनता का चित्रण किया है । अंधकार में एक आलोक की किरण के रूप में वे जवाहरलाल नेहरू के याद करते है --

'काले-काले बादल छाये न आये वीर जवाहरलाल ।
कैसे-कैसे नाग मंडलाए न आए वीर जवाहरलाल ।।
महंगाई की बाढ़ बढ़ आई, गांठ की छूटी गाढ़ी कमाई ।
भूखे-नंगे खड़े शरमाये, न आए वीर जवाहरलाल ।।'[119]

निराला की भाँति ही नज़रुल ने भी धार्मिक, साहित्यिक, देशभक्त युगनायकों का प्रशस्ति में गीत गाए हैं । धार्मिक नेताओं में उन्होंने हाजी मोहम्मद मोहसिन, जमाल उद्दीन, मौलाना मोहम्मद अली आदि महापुरूषों का चित्रण किया है ।

साहित्यिक नायकों में नज़रुल ने रविन्द्रनाथ और शतरचन्द्र पर कुछेक गीत लिखे हैं । रविन्द्रनाथ की मृत्यु से बांग्ला साहित्य को गहरा आघात लगा था । नज़रुल ने बांग्ला जगत के इस उदित सूर्य पर 'रवि हारा' नामक काव्य रचना की थी । साथ ही उन्होंने एक दु:खद शोकगीति का निर्माण भी किया । इस गीति में वे सभी से अनुरोध करते हुए कहते हैं कि शांत रवि को सोने दो, उन्हें मत जगाओं जिन्होंने सम्पूर्ण जीवन हमें प्रकाश दिया है उन्हें बुलाकर उनकी नींद मत तोड़ो....... जो तेज, शक्ति, शौर्य-शक्ति उन्होंने स्वयं को क्षय कर दिया, वही हाथों से लो । .....रो कर उन्हें और मत रूलाओ --

'घूमाइते दाओ शान्त रविरे, जागायो ना जागायो न
सारा जीवन जे आलो दिल, डेके तार घूम भांङायो ना
x x x x
जे तेज शौर्य, शक्ति दिलेन आपनारे करिक्षय
ताई हात पेते नाओ
x x x x
अन्तरे हेर हारानो रविर ज्योति/सेइखाने तँारे नित्य कर प्रनित
(आर) केंदे तारे काँदायो ना ।।'[120]

निराला की भाँति नज़रुल ने भी राजनीतिज्ञों, देशभक्तों आदि के संबंध में भी रचनाएँ रची हैं । अपनी 'उमर फारूक' नामक रचना में नज़रुल खलीफा का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि 'हे अतिमानुष तुमने मानवता का सम्मान रखा है । कुरान ने हमें सत्य वाणी दिया है और सत्य पर प्राण न्योछावर किया है । तुम्हारे रूप के भीतर ही वह सत्य अधिष्ठित हुआ है'--

'तुमि राखियाछ, हे अतिमानुष, मानुषेर सम्मान ।
कोरान एनेछे सत्येर वाणी सत्येदियाछे प्राण,
तूमि रूप, तब माझे से सत्य हयेछे अधिष्ठान ।'[121]

निराला और नज़रुल दोनों ने ही अपनी रचनाओं के माध्यम से युगनायकों का जो प्रशस्ति गायन गाया है उससे मानवता को एक नवीन दिशा प्राप्त हुई है ।

निष्कर्षत : यह कहना उचित होगा कि दोनों कवियों ने आध्यात्मिक, सामाजिक और राष्ट्रीय विचारों को पहचान कर अपनी रचनाओं में सुव्यवस्थित रूप से प्रस्तुत किया है और विश्व को इन विचारों द्वारा एक नूतन आलोक से आच्छादित किया है । सामान्य जन को दिशानिर्देशन देने वाले उनके ये विचार सदैव अजेय रहेंगे । कुछ भिन्नताओं के उपरान्त भी दोनों कवि एक दूसरे से अभिन्न जान पड़ते हैं क्योंकि दोनों ही का काव्य जीवन-दर्शन और मानवता के सिद्धान्तों को उजागर करता है । सामाजिक विडम्बनाओं और राष्ट्रीय संघर्षों से जूझते हुए दोनों का काव्य आध्यात्म की एक नूतन आभा से मानवता के प्रागंण को आलोकित कर देता है ।

संदर्भ :

1. बृहत हिन्दी कोश - पृ. 126
2. बृहत हिन्दी कोश - पृ. 509
3. बृहत हिन्दी कोश - पृ. 950
4. डॉ. दीवानचन्द्र : दर्शन संग्रह - पृ. 1
5. डॉ. शिवकुमार मिश्र : नया हिन्दी-काव्य, पृ. 68
6. निराला : परिमल, पृ. 23
7. निराला : परिमल, पृ. 34
8. निराला : तुम और मैं , पृ. 80
9. निराला : तुम और मैं , पृ. 11
10. निराला : अर्चना , पृ. 32
11. परिमल - कण, पृ. 157
12. अर्चना - पृ. 76
13. परिमल - जागो फिर एक बार , पृ. 190
14. गीतिका - पाँचवा गीत
15. गीतिका, पृ. 45
16. सांध्य काकली, पृ. 87
17. श्री गंगाधर मिश्र : युगाराध्य निराला, पृ. 51
18. अर्चना, पृ. 64
19. आराधना, पृ. 19
20. निराला : प्याला, पृ. 95
21. निराला : अर्चना, पृ. 114
22. अनामिका (हताश) पृ. 94
23. राग-विराग की भूमिका, पृ. 23, रामकुमार वर्मा
24. अग्निवीणा, पृ. 22-23
25. अग्निवीणा, पृ. 5-6
26. बंगीय मुसलमान साहित्य समिति के रजत जयन्ती अनुष्ठान में दिया गया भाषण -- नज़रुल रचना संभार - सं. अब्दुल कादिर
27. नज़रुल इस्लाम - कविमानस ओ कविता - ध्रुवकुमार मुखोपाध्याय, पृ. 129
28. नज़रुल काव्य समीक्षा - आताउर रहमान
29. नज़रुल इस्लाम : कविमानस ओ कविता- ध्रुवकुमार मुखोपाध्याय, पृ. 131

30. नज़रुल इस्लाम : कविमानस ओ कविता, पृ. 132
31. चिरजनमेर प्रिया - नज़रुल इस्लाम
32. नज़रुल गीति अखण्ड - पृ. 254
33. नज़रुल रचना संभार, पृ. 227
34. नज़रुल रचना संभार, पृ. 227-38
35. नज़रुल गीति अखण्ड, पृ. 287
36. निराला रचनावलि - 'शिवाजी का पत्र'
37. निराला अणिमा , पृ. 6
38. निराला परिमल, पृ. 72
39. निराला अणिमा , पृ. 51
40. निराला अणिमा , पृ. 65
41. नि. र. भाग-2 , पृ. 153
42. नि. र. भाग-2 , पृ. 162
43. निराला गीतिका, पृ. 12
44. निराला गीतिका, पृ. 12
45. निराला परिमल- बादल राग, पृ. 162
46. निराला परिमल- बादल राग, पृ. 168
47. डॉ. रणजीत : हिन्दी की प्रगतिशील कविता, पृ. 170
48. निराला - गीतिका, पृ. 34
49. निराला - परिमल (विधवा), पृ. 119
50. निराला - परिमल (विधवा), पृ. 121
51. डॉ. जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव - निराला का काव्य, पृ. 139
52. निराला - अनामिका, पृ. 150
53. निराला : अनामिका, पृ. 82
54. अनामिका, पृ. 137
55. गीतिका, पृ. 1
56. निराला - सं. डॉ. पद्मसिंह शर्मा : श्री नरेन्द्र मानवत द्वारा लिखित - 'निराला की राष्ट्रीयता' लेख, पृ. 50
57. नज़रुल काव्य समीक्षा - आताउर रहमान, पृ. 35
58. नज़रुल रचना संभार अब्दुल कादिर
59. कविमानस ओ कविता - ध्रुवकुमार मुखोपाध्याय, पृ. 92

60. सर्वहारा : कृसानेर गान - नज़रुल इस्लाम
61. सर्वहारा - श्रमिकेर गान नज़रुल इस्लाम
62. नज़रुल गीति अखण्ड, पृ. 446
63. The Rise and Growth of the congress in India by C.F. Andrenes and Girija Mookerjee
64. प्रलयशिखा बि.स शताब्दी' - नज़रुल इस्लाम
65. नज़रुल गीति अखण्ड - पृ. 469
66. 'उठ रे चासी' - नज़रुल -नज़रुल काव्य समीक्षा - आताउर रहमान, पृ. 259
67. 'कृसकेर ईद' - नज़रुल - नज़रुल काव्य समीक्षा - आताउर रहमान, पृ. 259
68. नज़रुल गीति अखण्ड , पृ. 211
69. नज़रुल रचना संभार, पृ. 25
70. काज़ी नज़रुल इस्लाम - रचना समग्र, पृ. 209
71. बांग्ला काव्यगीतिर धाराय, काजी नज़रुल इस्लामेर स्थान - करुणामय गोस्वामि, पृ. 254
72. नज़रुल विषयक लेख से संकलित - इतिहास निरिखे - रविन्द्र - नज़रुल चरित - शाहबुद्दीन अहमद
73. नज़रुल विषयक लेख से संकलित - इतिहास निरिखे - रविन्द्र - नज़रुल चरित - शाहबुद्दीन अहमद
74. नज़रुल विषयक लेख से संकलित - इतिहास निरिखे - रविन्द्र - नज़रुल चरित - शाहबुद्दीन अहमद
75. नज़रुल काव्य समीक्षा - अताउर रहमान, पृ. 47
76. 'चन्द्रबिन्दु - नज़रुल 35 वाँ गीत
77. नज़रुल गीति अखण्ड, पृ. 432
78. नज़रुल गीति अखण्ड, पृ. 432
79. Political and constitutional law VII. I, पृ. 1 - जे. एस. बर्गेस
80. From Empire to Nation ,पृ. 95
81. हमारे राष्ट्र-जीवन की परम्परा, पृ. 3-4
82. हिन्दी कविता में युगान्तर - पृ. 164
83. छायावादी काव्य में राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना, पृ. 22

84. हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना, पृ. 7
85. Nations and Men : International politics today, पृ. 40
86. डॉ. भागीरथ - निराला काव्य का अध्ययन, पृ. 65
87. निराला-गीतिका, पृ. 81
88. निराला-गीतिका, पृ. 81
89. निराला - परिमल - जागो फिर एक बार - पृ. 188
90. निराला आत्महन्ता आस्था - दूधनाथ सिंह, पृ. 173
91. निराला-गीतिका, पृ. 73
92. निराला - निराला, पृ. 3
93. निराला-अनामिका-सहज, पृ. 165
94. निराला-अणिमा, पृ. 37
95. लक्ष्मीनारायण दुबे - निराला के काव्य में राष्ट्रीय चेतना, पृ. 227
96. निराला-परिमल, पृ. 160
97. निराला-परिमल, पृ. 161
98. निराला-गीतिका, पृ. 89
99. निराला-गीतिका, पृ. 57
100. निराला-गीतिका, पृ. 17
101. निराला - प्रबन्ध-प्रतिमा, पृ. 179
102. डॉ. रामविलास शर्मा - निराला की साहित्य साधना (2), पृ. 85
103. गीतिका, पृ. 67
104. विद्रोही - काज़ी नज़रुल इस्लाम
105. नज़रुल इस्लाम - भाङार गान
106. Gopal Haldar - Kazi Nazrul Islam, P. 30-31
107. नज़रुल गीति अखण्ड, पृ. 431
108. नज़रुल शतक श्रद्धान्जलि (HMV) - द्वितीय खण्ड - तीसरा गीत
109. नज़रुल गीति अखण्ड, पृ. 445
110. शिशिरकर - निषिद्ध नज़रुल, पृ. 4
111. बांग्ला काव्यगीतिर धाराय काज़ी नज़रुल इस्लामेरे स्थान - करुणामय गास्वामी , पृ. 249
112. नज़रुल इस्लाम - कविमानस ओ कविता - ध्रुवकुमार मुखोपाध्याय, पृ. 90
113. नज़रुल गीति अखण्ड, पृ. 432

114. अणिमा - निराला - सत्रहवी कविता
115. अणिमा - चौदहवा गीत
116. अणिमा - पंद्रहवा गीत
117 अणिमा - सोलहवा गीत
118. अणिमा - 12 वाँ गीत
119. निराला की साहित्य साधना - पृ. 357
120. नज़रुल गीति अखण्ड - पृ. 62
121. नज़रुल रचना संभार , पृ. 72

पंचम अध्याय

निराला और नज़रुल के गीतिकाव्यों का शिल्प-विधान

पंचम अध्याय

निराला और नज़रुल के गीतिकाव्यों का शिल्प-विधान

काव्य मनुष्य और प्रकृति के रागात्मक संबंधों पर आधारित होता है । अंग्रेजी के कवि वड्र्स्वर्थ के अनुसार- 'काव्य मनुष्य और प्रकृति की छवि है । वह (कवि) मनुष्य और प्रकृति को मूलतः परस्पर सामञ्जस्य करते हुए मानता है, और मानता है मनुष्य के मस्तिष्क को स्वभावतः प्रकृति के अत्यन्त सुन्दरतम तथा रोचक तत्त्वों का दर्पण।'[1]

भारतीय साहित्य-शास्त्रों में आचार्यों ने काव्य की परिभाषाएँ विविध आधारों पर दीं है । उन्होंने शब्दार्थ, अलंकार, रीति वक्रोक्ति, ध्वनि, रस, रमणीयता आदि तत्त्वों का अन्वेषण करते हुए क्रमशः काव्य के निर्णायक विविध तत्वों की ओर निर्देश किया है । स्पष्ट है कि काव्य में भाव और विचारों की अम्यक अ भिव्यक्ति के लिए शिल्प पक्ष का अत्याधिक महत्त्व होता है । वस्तुतः शब्द, भाषा, अलंकार, छंद आदि द्वारा ही काव्य का शरीर बनता है । इन तत्त्वों के बिना कोई भी काव्य अपना पूर्णता नहीं पा सकता । इसी कारण यह आवश्यक है कि किसी भी काव्य की समीक्षा करते वक्त उसमें प्रयुक्त शिल्प-पक्ष को भी उजागर किया जाय ।

बृहत् हिन्दी शब्दकोश में 'शिल्प' शब्द को परिभाषित करते हुए उसे संज्ञा का एक शब्द माना गया है जिसका अर्थ कला है --

'कला आदि कर्म, हुनर, कारीगरी, स्रुवा, दक्षता, टेकनीक, शैली से ज्यादा व्यापक वह उपादान जिसके द्वारा रचनाकार अपनी भावनाओं को किसी विशेष ढंग से व्यक्त कर पाता है । हस्तकर्म, रूप, आकृति, निर्माण, सृष्टि, धार्मिक कृत्य, अनुष्ठान ।'[2]

शिल्प की उपर्युक्त परिभाषा से यह स्पष्ट है कि शिल्प का कला से अनिवार्य

संबंध होता है । इन्ही उपादानों द्वारा रचनाकार अपनी रचनाओं में प्रयुक्त भावनाओं को विशिष्ट ढंग से व्यक्त करने में सक्षम हो पाता है । शिल्प विधान युगानुरूप परिवर्तित होने वाली सतत प्रक्रिया है जो परिस्थिति के सापेक्ष नव-नव रूप धारण करती रहती है ।

निराला और नज़रुल ने अपनी कविताओं में एक ओर प्राचीन शिल्प-विधान को अपनाया और दूसरी ओर पाश्चात्य कवियों से प्रभावित होकर नूतन-नवीन काव्य शिल्प का प्रस्तुतीकरण किया । भाषा, शब्द-चयन, बिम्ब-योजना, प्रतीक-योजना, छंद-विधान, के विविध स्तरों पर दोनों कवियों ने साहित्य में युगान्तर उपस्थित किया ।

भाषा :-

काव्य में कवि के भावों की अभिव्यक्ति का साधन 'भाषा' ही होती है । पाश्चात्य विचारक F.R. Lebis के मतानुसार 'काव्य भाषा में नहीं होता अपितु भाषा का ही होता है । --

'Literature is not merely in a language but of a language'. इसी कारण भारतीय काव्यशास्त्रियों ने भी भाषा को काव्य का शरीर माना था । कवि भावों के प्रकाशन हेतु ऐसे शब्दों का चयन करता है कि उसके भाव पाठक के समक्ष पूर्णतया अभिव्यक्त हो जाय । इसीलिए कहा जाता है -- 'Poetry is the best words in the best order'. काव्य में उचित भाषा का प्रयोग कर पाने में सक्षम होने के लिए कवि को शब्दों में निहित अर्थ के मर्म से भिज्ञ होना आवश्यक है । इसके लिए कवि का शब्द की शक्तियों से पूर्णतया परिचित होना जरूरी है । बिना शब्द-शक्ति की जानकारी के न तो कवि ही अपने भावों को अच्छी तरह व्यक्त कर सकता है और न ही पाठक पूर्ण रूप से काव्यानन्द ग्रहण कर सकते हैं ।

वास्तव में शब्द और अर्थ मिलकर ही काव्य की सृष्टि करते हैं । दोनों में दृढ़

सम्बन्ध होता है और इस संबंध को जिस शक्ति द्वारा जाना जा सकता है, उसे ही 'शब्द-शक्ति' कहते हैं । क्योंकि काव्य में प्रयुक्त शब्दों के अर्थ से ही काव्य बोधगम्य होता है, अतः शब्द के अर्थ को समझने में सहायक-शक्ति ही शब्द-शक्ति कहलाती है । शब्द-शक्तियों को विद्वानों ने मूलतः अभिधा, लक्षणा और व्यंजना शब्द-शक्तियों में विभाजित किया है ।

इसमें लक्षणा और व्यंजना को काव्य के रूप में स्वीकार करने की लंबी परम्परा रही है । अभिव्यंजना की दृष्टि से व्यंजना कवियों को सर्वाधिक प्रिय रहा है क्योंकि इसमें शब्द अपनी प्रत्यक्ष लौकिक अर्थ सीमा का अतिक्रमण करके विलक्षण अर्थ सृष्टि के माध्यम बनते हैं । समर्थ कवियों द्वारा व्यंजना के प्रयोग से अर्थ का विशिष्ट भाव लोकर्निमित होता है । इसके अतिरिक्त शक्ति की विविध कोटियाँ होती है जिन्हें तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी श्रेणियों में रखा जाता है । कवि द्वारा विविध कोटियों के शब्दों के प्रयोग से अर्थ की विशिष्ट छँटा निर्मित होती है । उदाहरण के लिए तत्सम शब्दों के प्रयोग से अभिव्यक्ति में जहाँ एक औपचारिक आभिजात्य की प्रतीति होती है वहीं तद्भवता लोक जीवन की सरलता और सहजता को अभिव्यक्त करने में सहायक दिखाई पड़ती है । इसी तरह देशज शब्दों में लोक की वह शक्ति दिखाई देती है जहाँ वह अपनी अभिव्यक्ति के लिए शब्दों का खुद निर्माण करती है । ऐसे शब्द अपनी ध्वन्यात्मकता एवं अर्थवत्ता में विलक्षण होते हैं । जहाँ तक विदेशी शब्दों के ग्रहण की बात है, वह भाषा की विराटता की ओर संकेत करती है जो समस्त को आत्मसात करने की क्षमता रखती है । भारतीय भाषाओं में इस तरह की प्रवृत्ति देखी जा सकती है ।

निराला के गीतिकाव्यों की भाषा एवं उसका शब्द विधान

भाषा यदि सभी भावों की सफल वाहिका बनी रहे तो वह भाषा का सबसे बड़ा सौन्दर्य

माना जाएगा । छायावादी कवियों ने इसी वक्तव्य को ध्यान में रखते हुए नवीन लाक्षणिक भाषा का अविष्कार किया था । उन्होंने अपने भावों को सफलतापूर्वक अभिव्यक्त करने के लिए अभिनव मूर्तिमत्ता, रहस्यात्मक सांकेतिकता, समास-शक्ति, लाक्षणिकता, नवीन प्रतीक-पद्धति आदि का समावेश अपने काव्यों में किया ।

जहाँ तक निराला की भाषा का प्रश्न है, भाषा पर निराला का पूर्ण अधिकार था । उन्होंने एक ओर कोमल तो दूसरी ओर ओजमयी शब्दावलियों के प्रयोग द्वारा भाषा में नवीन भाव-बोध जगाया । भावों के साथ उनकी भाषा भी बदलती है । अपनी रचनाओं में उन्होंने व्यवहारिक भाषा के साथ लाक्षणिक पदावलियों का प्रयोग किया है । इसके अतिरिक्त कई काव्यों में संस्कृत शब्दावलियों का प्राचुर्य है । निराला वस्तुतः ऐसे कवि थे जिन्होंने साहित्य या किसी भी क्षेत्र में रूढ़ियों एवं बंधन को नहीं स्वीकारा । वे कभी बंधी-बंधाई लीक पर नहीं चले । अपनी इसी खूबी के कारण यह मानव-मन का कलाकार भाषा, अलंकार, शब्द, छंद के इत्यादि सभी पक्षों में मौलिकता एवं नूतनता दिखाता है । निराला सामान्य शब्दावलियों द्वारा भी अत्यन्त गम्भीर, मार्मिक एवं विस्तृत भावों को अभिव्यक्त करते हैं । अपनी अप्रतिम शोक-गीत 'सरोज-स्मृति' में वे साधारण शब्दों के माध्यम से अपने दुःख की करुण आभा का छाप पाठकों पर छोड़ जाते हैं --

'दुख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ आज जो नहीं कही ।'[3]

एक ओर निराला सीधे-साधे बोलचाल के शब्द उद्धृत करते हैं तो दूसरी ओर तत्सम शब्दों का गूढ़तम प्रयोग --

'खण्डित करने को भाग्य अंक
देखा भविष्य के प्रति अशंक ।'[4]

वहीं तीसरी ओर निराला इसी गीतिकाव्य में ठेठ खड़ी बोली के शब्दों के साथ अंग्रेजी के 'एन्ट्रेस' जैसे शब्दों का प्रयोग करते दिखाई पड़ते हैं --

'एन्ट्रैंस पास है लड़की वह,
बोले मुझसे छब्बीस ही तो
वर की है उम्र, ठीक ही है,
लड़की भी अट्ठारह की है ।'[5]

निराला ने अपने भावों को अभिव्यक्त करते हुए ठेठ बोलचाल की भाषा को अपनाया है । ध्यातव्य है कि निराला इस गीत में भाषा के विविध स्तरों की खोज करते हैं । लोक-जीवन 'देशजता' से गुजरता हुआ तद्भवता को स्वीकारता है जिसकी अंतिम परिणति 'तत्समता' की औपचारिकता में होती हैं । 'अर्चना' की 'स्वायोक्ति' में वे लिखते हैं-- 'प्रस्तुत गीतों की तद्वत् सफलता के न होने के कारण खड़ीबोली का पाठ, इसलिए गले से सफलतापूर्वक न उतर जाना है । साधारण जन देहातों में यह भाषा नहीं बोलते । उनके गले और आधुनिक शरीर की नेमि अभी तक मंजकर मसृण नहीं हुई, खड़ीबोली की गाड़ी के और चलते रहने की आवश्यकता है, ये गीत जैसे उसी की पूर्ति करते हैं । यथाशक्ति सुरचित, शब्दों की श्रृंखला रखी गई है जो सहज ही उच्चरित हो जाय, जिससे आधुनिक गीतों की मेड़े और स्वर-कम्पन, प्राचीन शब्दोच्चारण की दीवारों को पार कर अपनी सत्यता पर समासीन हो ।'[6]

'अर्चना' की भाषा में शब्दावलियों के सरल और नए प्रयोग मिलते है । उसके कुछ गीतों में व्याकरणिक त्रुटियाँ भी हैं परन्तु मुहावरों के मिले-जुले प्रभाव के कारण काव्य में प्रवाह उत्पन्न हो गया है । 'अर्चना' के 59 वें गीत में निराला ने साधारण बोलचाल के शब्दों के साथ उर्दू एवं संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है ।

'चोट खाकर राह चलते
होश के भी होश छूटे,
हाथ जो पाथेय थे, ठग -
ठाकुरों ने रात लूटे,
कण्ठ रुकता जा रहा है,
आ रहा है काल देखो ।'[7]

'आराधना' के एक गीत में चमत्कारपूर्ण शब्दयोजना द्वारा निराला भाषा के चमत्कारिक रूप को प्रस्तुत करते हैं —

'छलके-छलके पैमाने क्या
आये पैमाने माने क्या
हलके हलके हलके न हुए
दलके-दलके दल के न हुए ।'[8]

ये पंक्तियाँ भाषा और भाव की दृष्टि से श्रेष्ठ और स्पष्ट नहीं है । डॉ. बच्चन सिंह के अनुसार -- 'गीतिका की भाँति इन संग्रहों में अप्रतिम भाव-विन्यास चाहे न मिले पर इनमें भी संगीत, काव्य और सामाजिक चेतना का कुछ ऐसा विनियोग हुआ है कि इनके कुछ गीतों का स्थायी महत्व है ।[9]

निराला के गीतों में कहीं-कहीं मंजी हुई भाषा ओर शब्द-चयन का दर्शन भी होता है । 'संन्ध्या सुन्दरी' नामक काव्य में वे मानों एक-एक शब्द को चुनकर एवं तराशकर सजाते हैं । 'अर्चना' के एक गीत में वे शब्द-शक्ति का सुन्दर प्रयोग करते हुए कहते हैं--

'विपुल दिशावधि शून्य वर्गजन,
व्याधि-शयन जर्जर मानवमन,

ज्ञान-गगन से निर्जर जीवन
करुणा करो उतारो, तारो ।
पल्लव में रस, सुरभि सुमन में
फल में दल, कलरव उपवन में,
लाओ चारु-चयन चितवन में,
स्वर्ग धरा के कर तुम धारो ।'[10]

निराला ने अपनी भाषा को सामासिक पदावली के सघनत्व द्वारा भी उच्च स्तर पर पहुँचाया है । 'गीतिका' का एक गीत इस वक्तव्य को स्पष्ट कर देगा --

'कौन तम के पार ? (रे कह)
अखिल-पल के स्रोत, जल-जग
गगन घन-घन-धार रे कह
गन्ध-व्याकुल-कूल-उस-सर,
लहर-कच कर कमल-मुख-पर,
हर्ष-अलि हर स्पर्श-शर, सर
गूँज बारम्बार ! (रे कह) ।'[11]

इस गीत के विषय में मत प्रकट करते हुए एक आलोचक ने लिखा है --

'निराला में रूप-विधायिनी-शब्द-कला के स्थान पर थोड़े में ही बहुत अधिक कह देने की प्रवृत्ति अधिक मिलती है । यहाँ उनकी पदावली की सघनता अर्थ-सौरस्य का साधन बन जाती है जिसके दर्शन उनके अधिकांश रहस्यवादी गीतों में होते हैं जैसे - 'कौन तम के पार रे कह' गीत में ।'[12]

निराला की भाषा में बनावटीपन नहीं है बल्कि जनसाधारण की भावनाओं का

सहज आकलन है । उनके लोकगीतों में ऐसी भाषा का प्राचुर्य है जहाँ ठेठ बोलचाल के शब्दों द्वारा जनमन को भलीभाँति समझा गया है । 'गीतिका' का गीत 'नयनों के डोरे लाल' भाव, भाषा और संगीत सभी दृष्टियों से लोक-गीतों की परम्परा का गीत है --

'नयनों के डोरे लाल गुलाल भरे, खेली होली !
जागी रात सेज प्रिय पति-संग रति सनेह रंग घोली,
दीपित दीप-प्रकाश, कुंज-छवि मंजु-मंजु हँस खोली-
मली मुख-चुम्बन-रोली ।'[13]

'गीतिका' की भूमिका में निराला लिखते है - 'जो संगीत कोमल, मधुर और उच्च भाव, तदनुकूल भाषा और प्रकाशन से व्यक्त होता है, उसके साफल्य की मैंने कोशिश की है ।'[14]

गीतिका के गीतों की समीक्षा करते हुए नन्ददुलारे वाजपेयी जी यह मानते हैं कि 'गेय पदो की शाब्दिक सुघरता, संक्षेप में विस्तृत आशय की अभिव्यक्ति, सुन्दर परिसमाप्ति और प्रकाश निराला जी के काव्य को दर्शन द्वारा उपलब्ध हुए हैं ।'[15]

निराला ने अपने गीतों में भाषायी सौष्ठव की जो अनुवर्तता की है वह अन्यत्र दुर्लभ है । नज़रुल की भाँति उन्होंने भी उर्दू-फारसी शब्दों का इस्तेमाल किया है । विशेषकर अपनी गज़लो में निराला ने, उर्दू शब्दों का सुन्दर प्रयोग किया है --

'बिगड़ कर बनते और बनकर बिगड़ते एक युग बीता
परी और शाम रहने दे, शराब और जाम रहने दे ।'[16]

1940 के बाद की अधिकतर रचनाओं में निराला ने सरल, ठेठ बोलचाल की भाषा का प्रयोग करना प्रारम्भ किया । इन कविताओं में भाषा के सौष्ठव के स्थान पर व्यंग्य की तीक्ष्णता अधिक मुखर हुई है । उन्होंने पूरी प्रतिबद्धता और सजगता के साथ बेला के

के गज़लों में फारसी के छन्द शास्त्र का निर्वाह किया है । बेला के आवेदन में वे लिखते हैं --

'..... बढ़कर नई बात यह है कि अलग-अलग बहरों की गज़ले भी है जिनमें फारसी के छंद-शास्त्र का निर्वाह किया गया है । अपने गज़लों में फारसी छन्द के प्रयोग से उन्होंने सिद्ध कर दिया कि हिन्दी गज़लों के उच्चारणों के लिए फारसी छन्द का प्रयोग उपयुक्त है । उनकी गज़लों में सांसारिकता है तो संसार के दवाब भी है उसकी पीड़ाएँ भी हैं, विक्षोभ भी है, विद्रोह भी है, मगर एक ख्वाब भी है --

'भेद कुल खुल जाए वह सूरत हमारे दिल में है ।
देश को मिल जाए जो पूँजी तुम्हारे मिल में है ।'[17]

निराला की गज़लें 'नामनिहाद शोरफा' की नहीं बल्कि चातुरी चमार ओर बिल्लेसुर बकरीहा की गज़ले हैं । उनकी गज़लों में कभी कवित्त छन्द का प्रभाव तो कभी आठ-आठ अक्षरों के गुच्छे दिखाई पड़ते हैं ।

प्रस्तुत गज़ल में उर्दू-फारसी शब्दों के साथ हिन्दी के शब्दों का सुन्दर मेल दिखाई पड़ता है जो कवि के विषाद को सठीक रूप से प्रकट करता है --

'मुसीबत में कटे हैं दिन, मुसीबत में कटी हैं रातें ।
लगी हैं चाँद-सूरज से निरन्तर राहु की घातें ।
जो हस्ती से हुए हैं पस्त समझे हैं वही क्या है,
गुजरती जिन्दगी के साथ हरकत से भरी बातें ।'[18]

कभी-कभी निराला नादमयी भाषा का प्रयोग भी करते हैं --

'कण-कण कर कङ्कण प्रिय
किण-किण रव किङ्किणी

रणन-रणन नूपुर, उर लाज ।'[19]

निराला के काव्य की सृष्टि उनके मन की तरंगो से होती है । उनके मन का उल्लास उनके काव्य में भी उल्लसित हुआ है और मन के क्षोभ ने उनके काव्य को भी क्षुब्ध पौरुष्य से भर दिया है । निराला के गीतों में भाषा के विभिन्न रूप प्राप्त होते हैं । भाव प्रवाह में बहते हुए वे भाषा के गठन का ध्यान भूल जाते हैं । उनके उदात्त, सरल, सहज और व्यवहारिक भाषा में गीतों ने एक नया अनुगूँज पाया है । उनकी भाषा में कोमल और माधुर्य तत्त्वों के साथ ओज और पौरुष तत्त्वों का भी समावेश रहा है ।

'गीतगुंज' के एक गीत में निराला की उत्कृष्ट सृजनात्मक प्रतिभा देखी जा सकती है --

'कलियों के हारों बहु प्रकार,
उर लहरे गंध, बहे बयार,
यदि मिला न तुमसे हृदय- छंद,
तो एक गीत मत गाना तुम ।'[20]

प्रस्तुत गीत में प्रेम के आधुनिक बोध के साथ ही निराला की काव्य भाषा की नवीनता भी विशेष रूप से द्रष्टव्य है । गीत के अंतिम चरण में प्रयुक्त 'हृदय-छंद' पद का प्रयोग निराला के भाषिक-क्षमता का एक अद्भुत प्रमाण है । प्रेम के रागात्मक ऐक्य के लिए 'हृदय-छंद' अद्भुत है और निराला की नयी उद्भावना है । नए भावबोध के साथ भाषा भी अपना नया कलेवर ग्रहण करती है । इस प्रकार निराला के गीत उनके भाषायी सौष्ठव को उद्भाषित करते हैं ।

निराला ने अपने गीतों में प्रायः सभी प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया है । उनके गीतों में

ठेठ बोलचाल के शब्द, उर्दू-फारसी शब्द, अंग्रेजी शब्द, संस्कृत शब्द और प्रान्तीय शब्दों की स्पष्ट झलक दिखती है ।

निराला ने सेज, संग, स्नेह, ठठोली, बैल, घोड़ा, पकौड़ी आदि प्रान्तीय भाषा का प्रयोग जितनी सरलता से किया है उतनी ही सरलता से उन्होंने 'दिल टूटना', होश उड़ना, हृदय हिलना' आदि मुहावरेदार भाषा का भी प्रयोग किया है । उन्होंने अपने गीतों में विदेशी शब्दों को भी स्थान दिया है । एक ओर वे सहज रूप से 'एन्ट्रेंस', 'मिल' जैसे अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करते हैं तो दूसरी ओर 'शराब', 'सूरत', 'होश', 'पैमाने' आदि उर्दू-फारसी शब्दों का खुलकर प्रयोग करते हैं । अपनी रचनाओं में निराला, 'सप्तम', शेफाली, शान्त, वक्ष-स्थल, प्रलय, जलधि जैसे संस्कृत निष्ठ तत्सम शब्दों का भी सहज प्रयोग करते दिखाई पड़ते हैं ।

वस्तुतः विविध भाषाओं से शब्द-संचयन करने का निराला का एक मात्र उद्देश्य जातीय जीवन का निर्बाध चित्रण करना था क्योंकि 'जाति को भाषा के भीतर से भी देख सकते हैं । बाहरी दृष्टि से देखने की अपेक्षा इसको साहित्य के भीतर से देखने का महत्व अधिक होगा ।'[21] ब्रजभाषा के प्रति अपने झुकाव को दर्शाते हुए निराला यह मानते हैं कि 'आज किसी प्रांतीय भाषा के साथ अपने हृदय की पूर्णता और उज्ज्वल उत्कर्ष पर विश्वास रखकर वार्तालाप करने की शक्ति हिन्दी के प्रचलित दो रूपों में यदि किसी में है, तो ब्रजभाषा में ।'[22]

निराला ने अपने गीतों में अभिधामयी भाषा का अधिक प्रयोग किया है । अर्चना, आराधना, गीतगुंज के गीतों में अभिधा की साधना का प्रयास है जबकि परिमल, अनामिका और गीतिका के गीतों में लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ की प्रधानता है ।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि निराला अपने गीतों में शब्दों का भावानुरूप

प्रयोग करते हैं । इसके के अतिरिक्त वे अपने नये शब्द प्रयोगों द्वारा पाठक को चमत्कृत कर देते हैं ।

नज़रुल के गीतिकाव्यों की भाषा और उसका शब्द-विधान :

बांग्ला जगत के बेदुइन के नाम से प्रसिद्ध नज़रुल इस्लाम की भाषा वेगवान थी । उन्हें भाषा-विषयक कोई भी संस्कार प्राप्त नहीं हुआ था । 'लेटो' दल और सैनिक-शिविरों में सीखी हुई भाषा को ही उन्होंने अपनी अभिव्यक्ति का साधन चुना । इसी कारण उन्होंने, उर्दू, अरबी, फारसी, हिन्दी, अंग्रेजी के साथ मूलतः बांग्ला के शब्दों को जोड़ा और अपनी रचनाओं में स्थान दिया । उनकी रचनाओं में शब्द सामाजिक उपयोगिता को ध्यान में रखकर ही प्रयुक्त हुए हैं । अपने गीतों को प्रभावी बनाने में उनके द्वारा प्रयुक्त शब्द-भण्डार का बहुत बड़ा योगदान है ।

भाषा मानव मन के भाव प्रकाशन का एकमात्र साधन न होने पर भी अन्यतम वाहन है । भाषा की ज्वाला मनुष्य के मन को उद्दीप्त कर सकता है । भाषा की शक्ति ही भाव की शक्ति है ।

बांग्ला साहित्य में नज़रुल इस्लाम का अविर्भाव एक अविस्मरणीय घटना है । नज़रुल के पूर्व बांग्ला साहित्य में मृदु एवं कोमल शब्दावलियों का प्रयोग किया जाता था । कुछेक कवियों ने इस बंधन को तोड़ा और नज़रुल उनमें से एक थे । इस प्रसंग में मोबाश्वेर अलि का मानना है --

'से प्रचेष्टार प्रथम सार्थक रूपायन लक्ष्य करा जाय विद्रोही कवि नज़रुलेर मध्ये । नज़रुल विद्रोहेर उन्मादना ओ उन्मत्तता शिराय शियाय श्रेणिते श्रेणिते अनुभव ओ उपलब्धि करेछेन ।...... मृत्युके अनुभव करेछेन, शोषित निर्यातित ओ सर्वहारा मानूसेर, बेदनाके समस्त अन्तर दिये उपलब्धि एवं तादेर दुःख मोचनेर आन्तरिके प्रयासे उच्च कण्ठे

आर्तनाद करे उठेछेन । समाजेर सकल शासन-शोषण अ न्याय अविचार, अभेद असाम्य घूचिये तिनि एक नबतर समाज प्रतिष्टार जन्य जेहाद घोषणा करेछेन । ताई तार कवितार बानिते विद्रोहे सूर ध्वनित हयेछे । एवं एई विद्रोहधर्मिताके काव्ये रूपायनेर जन्ये ताके नतून करे शब्द अविष्कार करते हयेछे - जा गतानूगतिक बांग्ला काव्यधाराय सम्पूर्ण अभिनव ।'[23]

अर्थात नज़रुल ने समाज के विभिन्न पक्षों को सूक्ष्म दृष्टि से जाना पहचाना और पहचान कर अपने अंतस्थल में विद्यमान कवि हृदय में उसे बसा लिया । और इसी कारण उन्हें साहित्य में नूतन शब्दों का प्रयोग करना पड़ा जिससे वे अपने हृदय के विद्रोही भावों को अभिव्यक्त कर सके । इस प्रकार नज़रुल द्वारा प्रयुक्त शब्द 'बांग्ला साहित्य' में सम्पूर्ण रूप से नये प्रयोग है ।

नज़रुल ने निराला की तरह प्रायः सभी प्रकार के शब्दों का प्रयोग अपने गीतों में किया । बांग्ला साहित्य के गीतों में अनेक कवियों ने उर्दू-फारसी शब्दों का संचयन किया है । इनमें रविन्द्रनाथ, मोहितलाल मजुमदार एवं सत्येन्द्रनाथ का नाम उल्लेख्य है । परन्तु उर्दू-फारसी शब्दों में जितना साफल्य-लाभ नज़रुल को हुआ है उतना अन्य किसी भी कवि को प्राप्त नहीं हुआ । इसका एक कारण यह भी है कि उनका जन्म एक मुसलमान परिवार में हुआ था । परन्तु यह भी ध्यातव्य है कि नज़रुल ने जितनी सरलता से उर्दू-फारसी शब्दों का प्रयोग अपने काव्य में किया उतनी ही सरलता से उन्होंने संस्कृत शब्दों का प्रयोग भी किया है ।

कहना न होगा कि नज़रुल अप्रतिम प्रतिभा के धनी थे एवं काव्य जगत में एक भिन्न चरित्र इंसान थे । नज़रुल की भाषा भिन्न जातीय शब्द प्रयोग के कारण ही इतनी वेगवान थी ।

नज़रुल द्वारा प्रयुक्त उर्दू-फारसी शब्दों के व्यवहार के संबंध में बाँधन सेनगुप्त का मानना है कि नज़रुल को अरबी फारसी का विस्तृत ज्ञान था । इसी कारण..... 'नज़रुल ने वैदेशिक शब्दों के सम्मिश्रण से अपनी काव्यगीति के लिए सम्पूर्ण निजस्व शब्द भंडार बनाया था ।' विभिन्न परिप्रेक्ष्य को लक्ष्य कर कवि ने उन शब्दों को अपने काव्य में व्यवहार किया था । यथा—

'वस्तुतः फार्सी भाषाय नज़रुलेर यथेष्ट व्युत्पत्ति छिल एवं फारसी भाषाय तिनि सयत्न शिक्षा लाभ ओ करेछिलेन....आर एई फलेई नज़रुल वैदेशिक शब्देर सम्मिश्रने निजेर काव्यगीतिर जन्य सम्पूर्ण निजस्व एकटि शब्द भण्डार गड़े तूलेछिलेन । विभिन्न परिप्रक्षिते लक्ष्य रेखे कवि सेई शब्दगूलूके शानित करे तार काव्ये व्यवहार करेछेन ।'[24]
यदि नज़रुल द्वारा प्रयुक्त शब्द भण्डार को देखा जाय तो ज्ञात होता है कि उन्होंने लगभग सभी प्रकार के शब्दों का संयोजन अपनी कविताओं में किया है । उनके द्वारा प्रयुक्त शब्दों को निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है --

1. शास्त्रीय शब्द :	(i)	संस्कृत शब्द - तत्सम, तद्भव, अर्धतत्सम
	(ii)	वेदपुराणों के शब्द
2. वैदेशिक शब्द :	(i)	अरबी एवं फारसी शब्द - मिश्र अरबी-फारसी, मिश्र यौगिक अरबी-फारसी-संस्कृत-बांग्ला, मिश्र यौगिक अरबी-फारसी
	(ii)	अंग्रेजी एवं यूरोपीय शब्द
3. देशज शब्द :		प्राचीन, लौकिक, साम्प्रतिक
4. अन्यान्य शब्द :	(i)	ऐतिहासकि शब्द - धर्म, संस्कृति, कृष्टि, कला संबंधित शब्द

(ii) सांगीतिक शब्द

(iii) वर्णव्यंजनामूलक शब्द

(iv) वाग्धारा

(v) ध्वनिमूलक शब्द

पौराणिक ग्रीक शब्दों से नज़रुल ने अपने काव्य में 'आर्फियास', 'प्लूटो' आदि शब्दों का प्रयोग किया है --

'कखन आसिल प्लूटो यमराज निशीथ उड़े / नारी ।'[25]

इस्लामिक पौराणिक कथाओं से उन्होंने 'मूसा, ईसा, इस्माइल, फेराउन, नमरूद, उज, हातिमताई, शद्दाद, रुस्तम, कारुन, इब्राहिम आदि शब्दों का प्रयोग किया है । इस्लाम धर्म के विभिन्न इतिहास विख्यात नामों का उल्लेख भी उन्होंने अपनी रचनाओं में किया है । जैसे - 'काबुल, अरब, इराक, इरान, अरबस्थान, इस्ताम्बुल, ओयेसिस, ओमान, कर्बला, आरफात, मक्का, मदीना आदि । एक उदाहरण दृष्टव्य है --

'सैयद मक्की मदनी आमार नवी मोहम्मद
करुणा-सिन्धु खोदार बन्धु निखिल मानव-प्रेमास्पद ।।
आदम नूह इबराहिम दाउद सोलेमान मूसा आर ईसा
साक्षात दिल आमार नबीर, ताहादेर कालाम हल रद ।।'[26]

या

'सूदूर मक्का मदीनार पथे आमि राही मुसाफिर
बिराजे रउजा मोबारक यथा मोर प्रिय नबिजीर ।'[27]

नज़रुल के गीतों में हमें हिन्दु पौराणिक देवी-देवदातों, मुनि-ऋषियों और पुराण व प्राचीन धर्मशास्त्रों के नाम भी प्राप्त होते हैं जैसे --

'गौरी, उमा, सती, वीणापानि, राधिका, विष्णु, शिव, दुर्वासा, शंकर, बलराम, दधीची, दाताकर्ण' आदि । हिन्दु देवियों की उपासना करते हुए नज़रुल लिखते हैं --

'प्रनमामी श्रीदुर्गे नारायनी गौरि शिवे सिन्धिविधायिनी ।

महामाया अम्बिका आद्यशक्ति धर्म्म-अर्थ-काम-मोक्ष प्रदायिनी ।।'[28]

ऐसे गीतों के विपुल उदाहरण 'नज़रुल गीति अखण्ड' नामक पुस्तक में प्राप्त होते हैं--

'तिमिर-बिदारी, अलख-बिहारी

कृष्ण-मुरारी आगत एई ।'[29]

या

'जय दुर्गा, दुर्गति नाशिनी ।'[30]

अरबी-फारसी उर्दू शब्दों के अंतर्गत उन्होंने बादशाह, गर्दन, मुसाफिर, दुश्मन, शिरीन, फरियाद, नकीब, अंजाम, जहन्नुम आदि विपुल शब्द भण्डार का काव्य में प्रयोग किया है --

'मरहाबा सैयदे मक्की-मदनी आल्-आरबी ।

बादशार ओ बादशाह नबीदेर राजा नबी ।'[31]

अरबी-फारसी-उर्दू जैसे वैदेशिक शब्दों के अतिरिक्त नज़रुल ने अंग्रेजी के कुछ शब्दों का प्रयोग भी किया है जैसे --

'साइक्लोन, माइन, प्राइवेट, सेक्रेटरि, पब्लिक सरवेन्ट, सर्व, टेबिल, ब्रिटिश, आस्ट्रेलिया, स्टेटास आदि ।

'डोमिनयन स्टेटास' नामक गीत में उन्होंने कुछ अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग किया है--

'आज तबू केक, बिस्कुट खास / हयओ गेलि प्राय राजाई !

गाल बाजाई आय कानाडा आर / अस्टेलियार भायरा-भाई !

x x x x

'मौभः ! एबार स्वाधीन हनू' / जाई बलेछि पष्ठे ठास !

पड़ले मने, पठिस्हान ए, / डोमिनियन स्टेटास. '!![32]

'साईमन-कमिशनेर रीपोट' नामक गीत में भी नज़रुल ने अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग किया है--

'के देखिते एसे कि देखिनू शेसे, / रिपोर्ट लेखेन साईमन्-

x x x x

इहादेर हरि बन्धू मोदेरि / गूड ओल्ड जेन्टलमैन

x x x x

जीशूखीष्टेर नाई से इच्छा कि करिब बल आमरा

x x x x

भाते नाई किछु भिटामिन, ओते मद होक ओरा खाक फेन, ।'[33]

इस गीत में 'साईमन, गुड, ओल्ड, जेन्टलमैन, जीशूखीष्ट, भिटामिन, आदि अंग्रजी शब्दों का प्रयोग देखने को मिलता है । किसी भाषा को अपनी रचनाओं में इतने सहज रूप से स्थापित करने के लिए उस भाषा का गूढ़ जानकार होना अतिआवश्यक होता है । नज़रुल कितने प्रतिभासम्पन्न रचनाकार थे, यह उनके भाषा ज्ञान से ही प्रमाणित हो जाता है ।

विदेशी शब्द भंडार में अंग्रेजी, अरबी, फारसी के अतिरिक्त उन्होंने 'लड़की, बेटी जैसे हिन्दी शब्द, बिस्कुट जैसे पुर्तगाली शब्द, 'लुंगी' जैसे बर्मीज़ शब्द, 'पिन्डारी' जैसे मराठी शब्द एवं 'चा' जैसे चीनी शब्दों का प्रयोग भी अपनी रचनाओं में सहजता से किया ।

उनके गीतों में 'लाथि, झाँटा, गोफ, ठूकि, थूतू, हातुड़ि, तूड़ि, टूँटी, चटे, टिबिते गूँतो, दामाल, हमड़ि आदि देशज शब्द भंडार भी प्राप्त होते हैं ।

'बगल बाजा दूलिये खाजा / बसे केन अमनी रे ।

छेंड़ा ढोले लागाओ चाँटि / मा हबेन आज डोमनी रे ।'[34]

इन देशज शब्दों के अतिरिक्त नज़रुल ने 'नत-शिर', 'चिर-विस्मय, विश्व-विधात्रीर, राज राजटीक आकाल-वैसाखीर, शोक-ताप आदि बहुशाब्दिक शब्दों का प्रयोग भी अपने गीतों में किया है ।

नज़रुल ने जिन बहु-जातीय शब्दों का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया था उन्ही शब्दों के कारण उनकी रचना इतनी वेगवान बन पाई थी । उनके काव्य में इसी बहु-विचित्र भाषाओं के शब्द भंडार के संबंध में समालोचक श्रीकुमार बन्दोपाध्याय ने सत्य ही कहा है---

'बांग्ला काव्येर, शब्द भण्डारे ओ नज़रुल उल्लेखयोग्य भाबे वृद्धि करियाछेन ।'[35]

अर्थात बांग्ला काव्य के शब्द भण्डार में नज़रुल ने उल्लेखयोग्य वृद्धि की है ।

नज़रुल काव्य के ध्वनिमाधुर्य पर अत्यधिक बल देते थे । इसी कारण उन्होंने अधिकाधिक भिन्न शब्दों का प्रयोग किया है और बहुशाब्दिक शब्दों का गठन कर काव्य में व्यंजना शक्ति का प्रतिपादन किया है । उनकी एक रचना में वे 'टोपी' और 'टिकि' के माध्यम से हिन्दु और मुसलमानों पर व्यंग्य करते हुए भाषा की व्यंजना शक्ति का परिचय देते हैं --

'टिकि आर टूपिते लेगेछे द्वन्द्व वचन युद्ध घोर ।

के बड़ के छोटो चाई मीमांसा कार आछे कत जोर ।।[36]

अर्थात पंडित की चोटी और मुल्लाओं की टोपी में वचन युद्ध हो रहा है कि कौन कितना बड़ा है तथा किसके पास कितना जोर है ।

अपनी पुस्तक Literary Essays' में Ezra Pound ने लिखा था - 'Poetry Withers and dries out when it leaves music- poets who are not interested in music are, or become bad poets..... Poets who will not study music are defective'.[37] इस वक्तव्य पर नज़रुल ने सम्पूर्ण रूप से अमल किया है और सांगीतिक प्रवणता को ध्यान में रखते हुए ही भाषा और शब्दों का चयन किया है । जीवन की अस्थिरता, चंचलता, उन्मादना, उल्लास, प्रकृतिमग्नता, प्रेममयता आदि सभी भावों के संचार में उनके शब्द और उनकी भाषा अनुपम है ।

निराला और नज़रुल ने भाषा को अपनी आवश्यकताओं के अनुसार ढाला है । भाषा उनकी रचना प्रक्रिया के अनुसार अनायास संचित होती गई है । कहीं भी उनकी भाषा सहज सम्प्रेषणीयता में बाधक नहीं बनी है । एक ओर निराला ने छायावादी कोमलता को पौरुष प्रदान किया है तो दूसरी ओर नज़रुल ने बांग्ला भाषा की कोमलता को पौरुष प्रदान किया है । दोनों कवियों ने भाषा को क्रांति-भाषा में रूपांतरित कर वैज्ञानिक काम किया है ।

छन्द-विधान

गति, यति, मात्रा, गण, लय, चरण आदि निश्चित व्यवस्था का नाम 'छन्द' है । 'कविता में प्रयुक्त होने वाले वर्ण, मात्रा, यति आदि के संघटन को छन्द कहते हैं ।'[38] छन्द-शास्त्र या पिंगल शास्त्र में छन्दों के भेद, मात्रा, वर्ण, यति, चरण, गति, गण छन्द का रस, भाव आदि से संबंध आदि विषयों का विवेचन किया जाता है । छन्द का अस्तित्व ऋग्वेद की भाँति ही

प्राचीनतम माना गया है । सामवेद में अनेक छन्दों का विस्तृत वर्णन पाया जाता है । वेद के प्रधान छः अंगों में से छन्द भी एक अंग है । वेदों को यदि पुरुष माना गया है तो छन्द उसके चरण माने गये हैं --

'छन्द पादो तु वेदस्य ।'

छन्द-शास्त्र एक विकासशील शास्त्र है जिसमें आदि काल से आज तक विकास और परिवर्तन होता रहा है । संस्कृत में 'श्रुति-बोध, 'वृत्त-रत्नाकर', 'छंदोमंजरी', आदि पिंगल-शास्त्र के प्रमुख-ग्रन्थ हैं। हिन्दी में मतिराम-कृत 'छन्द हार पिंगल', पद्माकर कृत 'छन्द-मंजरी', भिखारीदास कृत 'छन्दोवर्णन' भानु कृत 'छन्द प्रभाकर' राम नरेश त्रिपाठी रचित 'पद्यरचना' रघुवरदयाल लिखित 'पिंगल प्रकाश', परमानन्द लिखित 'पिंगल पीयूष' आदि प्रमुख ग्रन्थ हैं ।

काव्य में छन्द का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है । सम्पूर्ण पद्य-साहित्य का मूलाधार छन्द ही है । छन्द के संबंध में विचार प्रकट करते हुए कविवर सुमित्रानंदन पंत मानते हैं-- 'कविता और छन्द में घनिष्ठ सम्बन्ध है । कविता हमारे प्राणों का संगीत है, छन्द-हृत्कम्पन, कविता का स्वभाव ही छन्द में लयमान होना है । जिस प्रकार नदी के तट अपने बन्धन से धारा की गति को सुरक्षित रखते हैं -- जिसके बिना वह अपनी ही बन्धन हीनता में अपना प्रवाह खो बैठता है -- उसी प्रकार छन्द भी अपने नियन्त्रण से राग को स्पंदन-कम्पन तथा वेग प्रदान कर, निर्जीव शब्दों के रोड़ों में एक कोमल, सजल कलरव भर उन्हें सजीव बना देते हैं ।'[39] वाणी की अनियन्त्रित साँसे नियन्त्रित हो जाती, तालयुक्त हो जातीं, उसके स्वर में प्राणायाम, रोओं से स्फूर्ति आ जाती, राग की असम्बद्ध झंकारें एक वृत्त में बँध जाती , उनमें परिपूर्णता आ जाती है ।

अतः पद्य स्वतः ही छन्दबद्ध होता है । चाँदी की शीतलता, सूर्य की किरणों,

पुष्प के सुगंध की भाँति ही काव्य में स्वतः ही छन्द होता है । लय के बन्धन से मुक्त कविता नीरस निबन्ध का अनुच्छेद मात्र हो सकता है । इसी कारण कविता में छन्द एक अनिवार्य तत्त्व होता है ।

छन्दों के तीन प्रमुख भेद -- वार्णिक छन्द, मात्रिक छन्द और लायात्मक छन्द होते हैं । जब चरणों में मात्रा विधान की अपेक्षा वर्णों की संख्या और गुणों का विधान होता है वहाँ वार्णिक छन्द होता है । जहाँ मात्राओं का नियमित विधान होता है वहाँ मात्रिक छन्द होता है तथा लयात्मक छन्द में न तो मात्रा विधान होता है और न वर्णों की संख्या, अपितु इनमें केवल लय विधान होता है । वार्णिक छन्द के तीन भेद सम, अर्द्धसम एवं विषम होते हैं । इनमें सम वार्णिक छन्द के पुनः दो भेद साधारण एवं दण्डक सम वार्णिक छन्द होते हैं । दण्डक के अंतर्गत भी साधारण दण्डक तथा मुक्तक दण्डक भाग होते हैं । इसी प्रकार मात्रिक छन्द को भी सम, अर्द्धसम तथा विषम में विभाजित किया जाता है तथा सम मात्रिक को साधारण तथा दण्डक में विभाजित किया जाता है । छन्द शास्त्र में पद, मात्रा, यति, गति गण, तुक आदि का भी बहुत अधिक महत्त्व होता है । इसमें शुभाशुभ और दग्धाक्षर का भी विचार किया जाता है ।

कुछेक प्रमुख छंदों के अंतर्गत 'शालिनी, उपेन्द्रवज्रा, इन्द्रवज्रा भुजंगी, तोटक, भुजंगप्रयात, मोतियदाम या मौक्तिकदाम, द्रुतविलम्बित, वंशस्थ, वसन्ततिलका, मालिनी, शिखरिणी, मंदाक्रान्ता, शार्दूलविक्रीडित, सवैया, मदिरा, मालती सवैया मत्तगयंद, दुर्मिल सवैया अथवा चन्द्रकला, मनहर, मनहरण, घनाक्षरी अथवा कवित्त, रूप घनाक्षरी, देव घनाक्षरी, तोमार, चौपाई या जयकारी, अरिल्ल, लावनी, राधिका, रोला, दिग्याल, गीतिका, हरगीतिका, ताटंक, वीर, त्रिभंगी, बरबै, दोहा, सोरठा, उल्लाला, गीतिका, कुण्डलिया आदि छन्द गिनाये जा सकते हैं ।

निराला के गीतिकाव्यों का छन्द-विधान

मुक्त छन्द के पुरस्कर्ता निराला की रुचि छन्द-विधान के प्रति शुरू से ही रही हे । उन्होंने पारंपरिक छंद को तोड़कर उसे नूतन ढंग देने का प्रयास किया तथा उसे जातीय संदर्भ से जोड़ा । छन्द के बंधन तोड़कर उन्होंने नए प्रयोग किये और इस प्रकार मुक्त छन्द को जन्म दिया जिसकी उन्हें भारी कीमत चुकानी पड़ी । उनके छन्दों को 'रबड़ छन्द' एवं 'केंचुआ छन्द' की उपाधि प्रदान की गई और उन्हें भारी आलोचना का सामना करना पड़ा ।

निराला ने कभी छन्द का विरोध नहीं किया अपितु उसमें कुछ नए परिवर्तन कर उसे एक नए मार्ग पर प्रशस्त करना चाहा । 'उनके छन्दोविधान में हिन्दी और बांग्ला की छान्दस प्रवृत्ति का वैलक्ष्यपूर्ण समावेश दृष्टिगोचर होता है ।'[40] उनके छन्द-विन्यासों में मुक्त छन्दों का प्रयोग तो है पर भावाभिव्यक्ति की कमी नहीं है ।

इस विषय में श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी जी का मानना है - '.........छन्द विधान के आंतरिक स्वरूप को नये-नये ढंग से व्यवस्थित करने की उनके मन में तीव्र उत्सुकता थी । आधुनिक काल के आरंभ में कवियों ने वाक्य-भंग के जरिये छन्द को गति देने की महत्त्वपूर्ण कोशिश की अर्थात वाक्य को तोड़कर उसके अलग-अलग टुकड़ों को छंद की अलग-अलग पंक्तियो में बैठाया, और सम्प्रेषण के हित में यों एक तरह की नयी यति-व्यवस्था तैयार की ।'[41]

निराला ने ऐसे ही **enjambment** विधि को अपने काव्यों में अपनाया था ।

उन्होंने ऐसे गीतों की रचना की जो जनसाधारण के मुख तक आसानी से पहुँच सके और उनके आंतरिक हृदय को छू सके । अर्चना, आराधना और गीतगुंज के गीतों में एक सहज 'देसीपन का आग्रह' है । इनमें तत्सम, तद्‌भव, देसी सभी प्रकार के शब्द

शामिल हैं । अपने भावों की तीव्रता को अभिव्यक्त करने के लिए निराला ने पारंपरिक छन्द बंधन को तोड़ा । ऐसा नहीं था कि उन्हें छंद का ज्ञान न था । 'तुलसीदास' जैसी कृतियाँ इसी बात को सिद्ध करती है । भले ही उनके नूतन-नवीन मुक्त छन्दों को केंचुआ-छन्द या रबड़-छन्द की संज्ञा दी जाय किन्तु सच तो यह है कि निराला ने मुक्त-छन्द रचना कर्म किसी सुविधा के लिए नहीं रचा, वरन् उसे उन्होंने काव्य-प्रवाह में गति लाने के लिए एक आवश्यक तत्त्व की तरह देखा । परिमल की भूमिका में निराला ने लिखा---

'मुक्त छंद तो वह है जो छन्द की भूमि में रहकर भी मुक्त है । इस पुस्तक के तीसरे छन्द में जितनी कविताएँ हैं, सब इस प्रकार की हैं । उनमें नियम कोई नहीं केवल प्रवाह कवित्त छंद-सा जान पड़ता है । कहीं-कहीं अक्षर आप ही आप आ जाते हैं । मुक्त छन्द का समर्थन उसका प्रवाह ही है । वही उसे छन्द सिद्ध करता है, और उसका नियम साहित्य उसकी मुक्ति ।'[42]

मुक्त छंद के हिमायती निराला ने अनेक छंद-बद्ध गीतों की भी सर्जना की है । उनका झुकाव मूलतः कवित्त छन्द की ओर रहा है । गीतिकाव्यों की रचना करते समय उन्होंने संगीताश्रित गेय गीत एवं उर्दू छन्द-विधान का निर्वाह किया है । इसके अतिरिक्त उन्होंने सममात्रिक सान्त्यानुप्रास छन्द, विषम मात्रिक सान्त्यानुप्रास, घनाक्षरी छन्द की लय पर आधारित मुक्ति छंद आदि का भी प्रयोग अपनी रचनाओं में किया ।

गीतिका की भूमिका में वे लिखते हैं --

'प्रचीन गवैयों की शब्दावली संगीत रक्षा के लिए किसी तरह जोड़ दी जाती थी, इसलिए उनमें काव्य का एकान्त अभाव रहता था ।'[43]

इसी कारण निराला ने अपनी शब्दावली को काव्य के स्वर से भी मुखर करने की कोशिश की है । वे गीतों के निष्णान्त साधक थे । अपने गीतिका, अर्चना, आराधना, सांध्यकांकली,

गीतगुंज आदि गीतिमालाओं में उन्होंने सुमधुर गीतों का संचयन किया । ये गीत भारतीय संगीत के तत्त्वों से परिपूरित हैं । इस प्रसंग में श्री जे. सी. घोष का मानना है--'उनके गीतों के स्वर, ताल लय में आंग्ल प्रभाव की चर्चा भी की जाती है और उन्हें आलाप-प्रधान बताया जाता है, लेकिन रविन्द्र की भांति निराला की संगीत पद्धति भारतीय शास्त्रानुमोदित है ।'[44]

गीतगुंज का प्रथम गीत इस बात को प्रमाणित करता है जिसमें स्वर, लय, ताल का संगम प्राप्त होता है --

'वरद हुई शारदाजी हमारी
पहनी वसन्त की माला-सँवारी ।
लोक विशोक हुए, आँखों से
उमड़े गगन लाखों पाँखों से......।'[45]

निराला ने 'बेला' में कुछ ग़ज़लें लिखी हैं । पूरी प्रतिबद्धता और सजगता के साथ इन ग़ज़लों का निर्वाह करते हुए उन्होंने 'बेला' के आवेदन में लिखा --

'.........बढ़कर नई बात यह है कि अलग-अलग बहरों की ग़ज़लें भी हैं जिनमें फारसी के छन्द-शास्त्र का निर्वाह किया गया है ।[46]

इस बात से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि निराला प्रतिभासम्पन्न गीतज्ञ थे और उन्हें छंद शास्त्र का पूरा ज्ञान था ।

श्री रामविलास शर्मा उनकी ग़ज़लों के विषय में लिखते हैं --

'निराला ने ग़ज़लें भी लिखी हैं, हर चरण में , दूसरे चरण में विशेष । उनमें उर्दू कविता की नफ़ासत करीब-करीब नदारद है, लेकिन उनमें काफ़ी ऐसी जिनमें निराला की ऊर्जा अपनी कुछ न कुछ करामात दिखा जाती है । दिलचस्प बात कि जिन दिनों उर्दू

के कुछ कवि -- जैसे मजरुह सुल्तानपुरी - गज़लो में प्रगतिशील राजनीति की शराब भर रहे थे, यही काम उन्हीं दिनों अपनी गज़लों में निराला भी कर रहे थे --

'खुला भेद विजयी कहाए हुए जो
लहू दूसरों का पिये जा रहे हैं ।'[47]

'बेला' में प्रकाशित एक और गज़ल से उनकी प्रतिभा के दर्शन होते हैं --

'मुसीबत में कटे हैं दिन,
मुसीबत में कटी रातें ।
लगी है चाँद-सूरज से
निरन्तर राहु की घातें ।

जो हस्ती से हुए हैं पस्त
समझे हैं वही क्या है,
गुज़रती जिन्दगी के साथ
हरकत से भरी बातें ।'[48]

अगले उदाहरण में भी निराला उर्दू - छन्द विधान का निर्वाह करते हुए नीतिपरक उपदेश देते हैं --

'किसकी तलाश में हो इतने उतावले - से ?
दुनिया ने मुँह चुराया सायास बावले से ।
खींचे बगैर नभ से झरता नहीं शिशिर-कण ;
तेल आँच जब न खाया निकला कब आँवले से ?
बहुतों ने राह तै की, सँभले न पैर फिर भी ;
जैसा दिखा था पहले, देखा न काँवले से ।'[49]

निराला ने जिस वक्त अपनी लेखनी उठाई थी उस वक्त गॉव-गॉ मे रीतिकालीन छंदो का बहुत कुछ प्रचलन था । उन्होने इस जातीय छन्द कवित्त का तोड़कर इन छंदो के लयो का पुनर्संधान किया और अपनी रचनाओ मे उन्हे पुनर्व्यवस्थित कर प्रस्तुत किया ।

अपने गीतो के लिए उन्होने मध्यकालीन पदो का सीधा-सादा विधान स्वीकार नही किया । उनके गीतो के प्रारंभ मे टेक का होना अनिवार्य नही है । इन गीतो मे पंक्तियॉ छोटे-बड़े आकार की है, कोई निश्चित तुक विधान मान कर नही चला गया है । गीतो के आन्तरिक विन्यास मे वाक्य भंग का प्रयोग भी किया गया है ।

सरोज-स्मृति मे भी वाक्य-भंग के द्वारा एक-एक वर्णन को कवि ने मूर्तमान कर दिया है । गीतो का आकार छोटा होता है । इस दृष्टि से सरोज-स्मृति को गीति की संज्ञा देने की बजाय कई लोग उसे शोक-काव्य की संज्ञा देते हैं---

'इससे पहले आत्मीय स्वजन
सस्नेह कह चुके थे, जीवन
सुखमय होगा, विवाह कर लो
जो पढी-लिखी हो - सुन्दर हो ।'[50]

यहॉ प्रयुक्त वाक्य-भंग उपर्युक्त कथन की पुष्टि करता है । निराला के कुछेक गीत संक्षिप्त होते हुए भी समग्र जीवन की अनुभूति संजोये हुए हैं 'स्नेह निर्झर वह गया' गीत इसी विधि के दर्शन कराता है । यह गीत मात्र 17 पंक्तियो मे रचा गया है । प्रथम और द्वितीय पंक्तियो को तुकांत रूप दे दिया गया है जिसके पश्चात तीन छन्द हैं । इनमे पहली तीन पंक्तियॉ एक आकार की हैं और बाद की दो पंक्तियॉ भिन्न आकार की ।
इस गीत मे वाक्य-भंग का भी सुन्दर प्रयोग है --

'स्नेह-निर्झर बह गया है ।

रेत ज्यो तन दह गया है ।

आम की यह डाल जो सूखी दिखी,

कह रही है, अब यहॉ पिक या शिखी

नही आते, पंक्ति मैं वह हूॅ लिखी

नहीं जिसका अर्थ -

जीवन दह गया है ।'[51]

गीतो मे अधिकतर सीधे और संक्षिप्त रूप मे अनुभूतियो को प्रकट किया जाता है । परन्तु निराला ने विभिन्न भावस्तरो और भाषिक विधान मे अपने गीतो की रचना की है । उन्होने कई गीतो मे जटिल और संश्लिष्ट अनुभूतियो को भी स्थान दिया है । इसी कारण उनके गीतो को संदेह की दृष्टि से भी देखा जाता है ।

निराला ने विभिन्न स्तरो के गीतो की रचना की है । कुछ गीतो मे सामान्य भाषिक अर्थ को ध्यान मे न रखते हुए उन्होने शब्दो से खेला है । ऐसा प्रतीत होता है कि कोई शास्त्रीय संगीत का गायक अपने अंतिम चरण का गीत गा रहा हो --

'ताक कमसिनवारि

ताक कम सिनवारि

ताक कम सिन वारि

सिनवारि, सिनवारि ।'[52]

छन्द-विधान का पूरा ज्ञान होते हुए भी निराला ने मुक्त-छन्द मे रचनाऍ की । भाव-प्रवण कविता छांदसिक बंधनो को तोड़ती है जिसका कारण है आधुनिकता । इसके स्वीकार से कविता मे नवता आती है । निराला मे जहॉ पारम्परिक बधनो के प्रति तिरस्कार की भावना थी वहीं दूसरी ओर नये विचारो का आग्रह भी । लेकिन निराला की छंदमुक्तता को

छंदहीनता मान लेना एक बहुत बड़ी भूल होगी । भावानुरूप लयान्विति एवं अनुभूति की निर्बाध तारतम्यता उनके गीतों को भाव-प्रवण लयान्विति प्रदान करती है जिसके कारण गीतों में तुक की लयबद्धता भले ही न हो लेकिन भाव का लय है । इसे ही बाद में नयी कविता के दौरान अर्थ के लय के रूप में व्याख्यायित करने कोशिश की गई । उनकी तुलना अमरीकी कवि वाल्ट ह्विटमैन से की जाती है क्योंकि उन्होंने भी साहित्य में मुक्त-छन्द का आरम्भ किया था ।

नज़रुल के गीतिकाव्यों में प्रयुक्त छन्द-विधान

बांग्ला छन्दविज्ञान में मूलतः अक्षरवृत, मात्रावृत और स्वरवृत छन्दों का प्रयोग प्राप्त होता है । प्राचीनकाल में पयार छन्द का भी प्रयोग किया जाता था परन्तु नज़रुल इस्लाम पर रविन्द्रनाथ और सत्येन्द्रनाथ के छन्द-प्रयोग का प्रभाव था । अतः उन्हीं की भाँति नज़रुल ने भी अक्षरवृत, मात्रावृत छन्दों की रचना की । अन्य आधुनिक कवियों की तरह वे अट्ठारह अक्षर के पयार छन्द रचना में सचेष्ट नहीं हुए । नूतन की अपेक्षा उन्होंने पुरातन 8+6 पद्धति से ही काव्य रचना की । जैसे --

'हे दारिद्र्य तूमि मोरे / करेछ महान ।
तूमि कोरे दानियाछ / ख्रीष्टेर सम्मान
कन्टक मुकुट शोभा / दियाछ तापस
असन्कोच प्रकाशेर : दूरन्त साहस ;'[53]

नज़रुल की अधिकांश रचनाएँ सममात्रिक, मात्रावृत और ध्वनिप्रधान छन्द में रचित है । जैसे --

। ।। । ।। ।। ।। । । । ।। । ।। ।।

1. विदाय हे मोर / बातायन पाशे / निशीथ जागार / साथी

।। । ।। ।। ।। ।। ।। ।। ।। ।।

ओगो बन्धूरा / पान्तुर हये / एल बिदायेर / राति

2. चमकिया जागि / ललाटे आमार / काहार निश्वास / लागे

के करे व्यंजन / तप्त ललाटे / के मोर शियरे / जागे

जेगे देखी मोर / वातायन पाशे / जागिछे स्वपन / चारी

निशिथ रातेर / बन्धु आमार / गुबाक तरूर / सारि ।

यहाँ 6+6+6+2 मात्रा पद्धति का अनुसरण किया गया है ।

3. शातिल आरब / शातिल आरब / पूत युगे युगे / तोमार तीर ।

शहीदेर लोहू / दिलीरेरे खून / ढेरे छे एखाने / आरब वीर ।

यहाँ 6+6+6+5 मात्रा पद्धति का अनुसरण किया गया है ।

4. वर्तमानेर / कवि आमि भाई / भविस्यतेर / नई नबी

कवि ओ अकवि / जाहा बलो मोरे / मूख बूजे ताई / सई सबि ।

यहाँ 6+6+6+4 मात्रा पद्धति का अनुसरण किया गया है ।

5. श्वेत पीत कालो / करिया सृजिले / मानबे से तब / साध

आमरा जे कालो / तूमि भालो जान / नहे ताहा अप / राध

तूई बलो नाई / शुधू खेतदीपे

जोगाइबे आलो / रवि शशी-द्वीपे

सादा रबे सबा / कार टूँटि टिपे / तोमार असम / मान

याह प्रथम, द्वितीय, पंचम, सष्ठ चरण में 6+6+6+2, तृतीय और चतुर्थ चरण में 6+6

मात्रा पद्धति अनुसरित किया गया है ।

मुक्तक मात्रवृत में भी नज़रुल दक्ष है पर इस विधि से उन्होंने गीतिकाव्य नहीं बल्कि कविताएँ रची हैं । 'विद्रोही' एक ऐसी ही कविता है --

'बल बीर

बल / उन्नत मम / शिर

शिर / नेहारि आमारि / नत-शिर उई / शिहर हिमाद / रिर

बल / महाविश्वेर / महाकाश फारि

चन्द्र सूर्य / ग्रह तारा...'

नज़रुल की अधिकांश कविताएँ मात्रावृत एवं स्वरवृत छन्द में रचित है । स्वरवृत छन्द में नज़रुल का कृतित्व लक्षणीय है -

1. तूमि आमार /भालोबासो / ताई तो आमि / कवि

आमार एरूप / से जे तोमार / भालोबासार छवि

इन पंक्तियों में 4+4+4+2 मात्रा पद्धति का अनुसरण किया गया है ।

नज़रुल ने मुक्तक स्वरवृत का प्रयोग करते हुए कमालपाशा नामक रचना की सृष्टि की --

ए खेपेछे / पागली मायेर दामल छेले / कामाल भाई

असूर पूरे / शोर उठेछे / जो रसे सामाल / सामाल भाई

कामाल तूने / कामाल किया / भाई

हो हो / कमाल तूने / कामाल किया भाई

स्वरवृत छन्द में ही रचित नज़रुल की शिशु पाठ्य रचना भी दृष्टव्य है । 'लिचू-चोर' में उन्होंने 3-4 विन्यास पद्धति ग्रहण की है --

॥ । ॥ ॥

'बाबूदेर / तालपूकूरे

॥ । ॥ ॥ ।

हाबूदेर / डाल कूकूरे

। । । । । । ।

से कि बास् / करले ताड़ा

॥ । । । । ।

बलि थाम / एकटू दॉडा '[54]

नज़रूल इस्लाम ने 3+4+4+4+1 विन्यास पद्धति से अनेक गज़लो की रचना की है । एक उदाहरण दृष्टव्य है --

। । । । ॥ । । । । । । । ।। ॥

बगिचाय / बूलबूलि तुई / फूल - शाखाते / दिसने आजि / दोल

। । । । ॥ । ॥ । । ॥ । । ।

आजो वार / फूल कलिदेर / घूम टूटेनि / तन्द्राते बि / लोल

उनकी इस प्रकार की मौलिक छन्दसृष्टि के विषय मे अब्दुर कादिर ने माना है कि नज़रुल ने 'प्रथम जीवन मे अक्षरवृत्त मे उनकी स्वकीयता दिखाई है, मुक्तबद्ध कविता पंक्ति रचना मे ।'[55]

रविन्द्रनाथ के 'बलाका' काव्य के मुक्तक अक्षरवृत कविताओ की दीर्घतम पंक्ति 8+10 अक्षरो से निर्मित हैं परन्तु नज़रुल ने 8+8+10 अक्षरो से पंक्तियो को सजाया है--

'झंझना - झापटे मम

भीत कुर्म - सम

सहसा सृष्टिर खोले नियति लूकाय ।

आमि झड़, जूलूमेर जिन्जीर मन्जीर बाजे एस्त मम पाय,

कैलासे उल्लास घोसे डन्बरू डिन्डिम

द्रिम् द्रिम् द्रिम्

अन्तर डंकार डामाडोल

स्वजनेर बूके आने अश्रु - बन्या व्यथा - उतरोल ।

भान्डारेर संचित मम दुर्बलेरे हिंसा क्रोध शाप ।

भीमा उग्रचन्डा फेले उलका-रुपी अग्नि-अश्रु सहिते ना पारिममताप !'[56]

इस रचना की प्रथम पंक्ति में 8 अक्षर, द्वितीय और षष्ट पंक्ति में 6 अक्षर, सप्तम पंक्ति में 10 अक्षर, तृतीय और पंचम पंक्ति में 8+6 अक्षर एवं अष्टम और नवम् पंक्तियों में 8+4+6 अक्षर, चतुर्थ पंक्ति में 8+8+6 अक्षर एवं दशम पंक्ति में 8+8+4+6 अक्षर सन्निवेशित होकर ध्वनि सौष्ठव की वृद्धि करता है ।

नज़रुल ने चौदह अक्षर के 'समिल पयार' छन्द में भी - 'समाधि, गोकुल नाग, अश्विनीकुमार, दारिद्र्य, शीतेर सिन्धू, तूमि मोर भूलियाछ, नबीनचन्द्र जैसे काव्यों का प्रणयन किया । चतुर्मात्रिक मात्रावृत में भी नज़रूल की दक्षता प्रमाणित होती है, उनके द्वारा रचित 'सिन्धु-हिन्दोल' के फाल्गुनी और माधवी काव्यों में --

'उड़े पियाल-कू / सूम-झरा/ परान को / मल

ओकि बसन्त / बनभूमि - रीति - परि / मल

ओ कि कपाले कपोल हासा

उड़े चन्दन खसा

यहाँ प्रत्येक पंक्ति के प्रथम में दो मात्राओं का अति पर्व है । प्रथम पंक्ति 4+4+4+2 और द्वितीय पंक्ति 4+4+4+2 मात्राविन्यास में गठित है ।

रविन्द्रनाथ के 'मदन भस्मेर परे' काव्य में जिस प्रकार का मात्रावृत पन्चमात्रा में

रचित है उसी प्रकार नज़रुल की 'चोखेर चातक' नामक गीतिकाव्य उसी छन्द में रचित है--

'मोर धेयाने / मोर स्वपने

परानप्रिय / दाओहे देखा

मोर शयने / मोर नयने

लिखिया जेयो / सलिललेखा ।'

पंचमात्रिक मात्रावृत पंक्ति के साथ चतुर्मात्रिक स्वरवृत चरण का मिश्रण कर नज़रूल ने एक अपूर्व गीतिकविता की रचना की है --

'भूलि केमने / आजो जे मने / बेदना-सने / रहिल आँका

आजो सजनी / दिन रजनी / जे बिने गनि / तेमनि फाँका

आगे मन / करले चूरि 3+4

मर्मे शेसे / धनले छूरि 4+4

एत शठता / एत जे व्यथा / तबू जेनता / मछूते माखा ।'[57]

यहाँ प्रथम, द्वितीय, पंचम 5+5+5+5 मात्रा विन्यास, तृतीय और चतुर्थ 3+4, 4+4 स्वरवृत में रचित हैं ।

बांग्ला मात्रावृत में छह मात्रा की कविताएँ सर्वाधिक हैं । इस प्रकार के छन्द में नज़रुल ने मुक्तक रचना की रीति को परिवर्तित किया । इसके अतिरिक्त नज़रुल ने अरबी छन्द के 'मूताकरिब', 'मूतादारत', 'मोजारा', 'मशाकेल', का अनुकरण कर अनेक काव्यों की रचना भी की । उन्होंने संस्कृत के तोटक, अनंगशेखर, शार्दुल विक्रीड़ित छन्दों से भी काव्य रचना का प्रयास किया । उनके द्वारा रचित 'दोदूल-दूल काव्य मोताकारिब, तथा 'प्रवर्तकेर घूर चाकाय' मूतादारक छन्द में रचित है । 'उनके 'छायानट' ग्रंथ की 'पूबेर

हाओया' का 'पूर्वतरंग' काव्य क्रियदंश शार्दुल विक्रीड़ित छन्द निर्मित है तथा 'बिशेर बाँसी' का 'जागृति' काव्य तोटक छन्द में रचित है । उनके गीतों में कजरी छन्द का व्यवहार सार्थक प्रतीत होता है --

'एस मोर श्याम सरसा श्राबनेर काजलगूलि

घनिमार हिन्दोल शोनो ओलो आय रंगिये तूलि ।'[58]

नज़रुल इस्लाम के छन्द के सम्पर्क में यह कहना अत्युक्ति न होगा कि उनके छन्द के एक तरफ आवेग का उनमत्त नृत्य है और दूसरी तरफ दृष्टि अन्तराल का एक मोहनीय आलोक है । इस विषय में मोहितलाल मजुमदार की एक उक्ति स्मरणीय हैं --

'बांग्ला काव्येर जे अधुनातन छन्द - झंकार ओ ध्वनि - वैचित्र्य एक काले मुग्ध हईयाछिलाम, किन्तु अवशेसे निरतिशय पीड़ित हईया जे सुन्दरी मिथ्या रूपीनीर ऊपर विरक्त हइयाछि, काज़ी साहेबेर कविता पड़िया सेई छन्द झंकारे आबार आस्था हइयाछे । जे छन्द कविताय शब्दार्थमयी कन्ठ-भारतीय भूषन न हइया प्रानेर आकृति ओ हृदयस्पन्दनेर सहचर ना हइया इदानीं केवल मात्र श्रवन प्रीतिकर प्रानहीन वाकचातूरीते पर्यवसित हईयाछे सेई छन्द एई नबीन कविर कविताय ताहार हृदय निहित भावेर सहित सूर मिलाइया मानव-कन्ठेर स्वरसप्तकेर सेवक हइयाछे । काज़ी साहेबर छन्द तॉहार स्वतोत्सारित भावकल्लोलिनीर गमन भंगी ।'[59]

मोहितलाल मजुमदार ने भारी - भरकम शब्दों में नज़रुल इस्लाम के छन्दविन्यास की प्रशंसा की है और माना है कि नज़रुल के छन्दों को देखकर प्राचीन ध्वनि-वैचित्र्य का स्मरण हो आता है जहाँ मात्र वाक्चातुर्य ही नहीं अपितु हृदय के भावों का भी सुर निहित है जो काव्य को प्राणहीन बनने नहीं देता ।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि निराला और नज़रुल दोनों ही छन्दों के गूढ़ ज्ञाता थे । दोनों ने ही पारस्परिक छन्द के बंधन को तोड़ा और मुक्त छन्द के हिमायती बने । भारतीय छन्दों के अतिरिक्त दोनों कवियों ने अपने गीतों को अन्य भाषाओं के छन्दों से सजाया और अपने भावी कवियों का मार्ग प्रशस्त किया । छन्द-प्रयोग की दिशा में दोनों ने ही नए प्रयोग किए और एक नई दिशा में काव्य का मार्ग प्रशस्त किया । इस प्रकार दोनों ही कवियों ने छन्द के शास्त्रीय नियमों को अपनी भावाभिव्यक्ति में बाधक नहीं बनने दिया ।

अलंकार

'अलंकार' शब्द की व्युत्पत्ति 'अलम्' धातु से हुई है जिसका अर्थ है आभूषण । इस प्रकार व्युत्पति के आधार पर भूषित करने वाले 'उपादान' को 'अलंकार' कह सकते हैं । जिस प्रकार गहनों से तन की शोभा बढ़ती है उसी प्रकार अलंकारों से काव्य की शोभा बढ़ती है ।

'अलंकार' शब्द को परिभाषित करते हुए विभिन्न आचार्यों ने अपने मतों का प्रतिपादन किया है। आचार्य दण्डी ने अलंकार को शोभावर्द्धक धर्म के रूप मे मानते हुए कहा-

'काव्यशोभाकरानधर्मानलंकारान् प्रचक्षते ।'[60]

वामन ने अलंकार को सौन्दर्य बढ़ाने वाला उपादान मानते हुए कहा--

'सौन्दर्यमालंकार'[61]

आचार्य भामह शब्द और अर्थ के वैचित्र्य को अलंकार मानते हैं -

'वक्राभिधेयशब्दोक्तिरिष्टावाचामलंकृतिः ।'[62]

पं. रामचन्द्र शुक्ल अलंकारों को रमणीयता का विधायक मानते हैं मात्र चमत्कार का नहीं । कविवर सुमित्रानंदन पंत का मानना है - 'अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए नहीं, वे भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार हैं । भाषा की पुष्टि के लिए राग की परिपूर्णता के लिए आवश्यक उपादान है, वे वाणी के आचार, व्यवहार, रीति, नीति हैं ।'[63] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अलंकार की परिपुष्ठ परिभाषा देते हुए मानते है -- 'भावों का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओं के गुण और क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव करने में कभी-कभी सहायक होने वाली युक्ति अलंकार है ।'[64] 'उत्कृष्ट काव्य वही माना जाता है जो पाठकों को अधिक से अधिक प्रभावित करे । अलंकारों के प्रयोग से कवि अपनी उक्ति में शक्ति उत्पन्न करता है जिससे पाठक उसकी रचना की ओर आकृष्ट हो जाता है । भारतीय काव्य-शास्त्र के आचार्यों ने अलंकारों के भेदों को सुनिश्चित करते हुए अपने मतों का प्रतिपादन किया है । पं. राज जगन्नाथ के समय तक अलंकारों की संख्या 191 हो गई और आज अलंकारों की संख्या अगणित है ।

आचार्यों ने सुविधा के लिए अलंकारों को तीन भागों में विभाजित किया है -- शब्दालंकार, अर्थालंकार, उभयालंकार । शब्दालंकार में अलंकारगत रमणीयता शब्द प्रयोग पर आश्रित होता है । अर्थात शब्दों के वैचित्र्य द्वारा काव्य को अलंकृत करने वाले उपादानों को शब्दालंकार की संज्ञा दी जाती है । अर्थालंकार का सौन्दर्य अर्थ में निहित होता है और उभयालंकार में शब्दगत तथा अर्थगत दोनों ही कोटि के चमत्कार रहते हैं । शब्दालंकार के अंतर्गत, अनुप्रास, यमक, श्लेष, वक्रोक्ति आदि आते हैं । अनुप्रास के विभिन्न भेदों में छेकानुप्रास वृत्यानुप्रास, श्रुत्यानुप्रास ; श्लेष में अभंगश्लेष,

सभंगपदश्लेष ; तथा वक्रोक्ति के भेदों में श्लेष वक्रोक्ति, काकु वक्रोक्ति आदि अलंकार आते हैं ।

अर्थालंकार के अंतर्गत-उपमा, मालोपमा, रूपक, प्रतीप, व्यक्तिरेक, भ्रान्तिमान, सन्देह, स्मरण, उल्लेख, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास, उदाहरण, निदर्शना, दीपक, अप्रस्तुत प्रसंशा, अपन्हुति, अतिशयोक्ति, परिकर, परिकरांकुर, विरोधाभास, उन्मीलित, मुद्रा, परिसंख्या, लोकोक्ति, सहोक्ति, विनोक्ति आदि अलंकार आते हैं । इनमें से कुछ अलंकारों के पुनः भेदोपभेद किए गए हैं ।

कुछ पाश्चात्य अलंकारों का प्रयोग भी आधुनिक काव्य में होता है । ये हैं-- मानवीकरण (Personification), ध्वन्यर्थव्यंजना या अनुरणात्मकता (Onomatopoeia) और विशेषण-विपर्यय (Transfered Epithet)।

निराला और नज़रुल ने अपने काव्यों में अलंकारों को सुव्यवस्थित कर प्रस्तुत किया है ।

निराला के गीतों में अलंकार प्रयोग

निराला ने अपने गीतिकाव्यों में शब्दालंकारो, अर्थालंकारों एवं उभयालंकारों का खुलकर प्रयोग किया है । इसके अतिरिक्त उन्होंने कुछ पाश्चात्य अलंकारों के प्रयोग द्वारा भी अपने काव्य में चमत्कार उत्पन्न किया है ।

शब्दालंकारों के अंतर्गत निराला अनुप्रास की ओर विशेष रूप से आकृष्ट है । उनकी 'जूही की कली', 'संध्या-सुंदरी', 'जागो फिर एक बार', 'राम की शक्ति पूजा' और 'तुलसीदास' आदि काव्यों में उनके अनुप्रास-प्रेम की प्रवृति परिलक्षित होती है । अर्चना के

एक गीत 'घन तम से आवृत धरणी' में वर्णों की पुनः आवृति होने से ध्वनिसमुदाय में श्रुतिमाधुर्य उत्पन्न हो गया है जिससे वहाँ अनुप्रास की छंटा है--

'घन तम से आवृत्त धरणी है ;

तुमुल तरंगों की तरणी है ।'[65]

यहाँ 'त' ध्वनि की आवृंति से काव्य में चमत्कार उत्पन्न हो गया है । एक और उदाहरण दृष्टव्य है --

'नील नयन, नील पलक

नील वदन, नील झलक ।

x x x

नील-नील आस-पास

वारिद नव-नील छलक ।

नील-नीर-पान निरत,.......।'[66]

निराला के प्रारंभिक काव्यों में उनकी अनुप्रासप्रियता का सुंदर चित्र देखने को मिलता है ।

'अर्थालंकारों में निराला की कविता का सौन्दर्य प्रधानतः उपमा और रूपक पर आधारित है ।'[67] निराला के काव्य में उपमा अलंकार की प्रधानता है । परिमल की 'प्रार्थना' में उपमा का सुन्दर चित्र उपस्थित होता है --

'जीवन प्रात-समीरण-सा लघु

विचरण-निरत करो

तरु-तोरण-तृण-तृण की कविता

छवि-मधु-सुरभि भरो ।

आंचल-सा न करो चंचल

क्षण-भंगुर,

मत नयनों में स्थिर हो बल ।'[68]

'विधवा' में निराला ने मूर्त और अमूर्त उपमानों को प्रस्तुत किया है --

'वह इष्ट देव के मंदिर की पूजा-सी
कह क्रूर काल-ताण्डव की स्मृति रेखा-सी ।
वह दीप शिखा-सी शान्त भाव में लीन
वह टूटे तरु की छुटी लता-सी दीन ।'[69]

उपमा के अतिरिक्त रूपक के प्रति भी निराला आकृष्ट रहे हैं । उन्होंने सांगरूपक का भव्य दर्शन कराते हुए गीतिका के एक राष्ट्रवन्दनामूलक गीत में भारत माँ का सुंदर स्वरूप प्रस्तुत किया है --

'भारति जय विजय करे !
कनक-शस्य-कमलधरे !
लंका पदतल शतदल
गर्जितोर्मि सागर-जल,
धोता शुचि चरण युगल
स्तव कर बहु-अर्थ-भरे ।

x x x

मुकुट शुभ्र हिमतुषार,
प्राण प्रणव ओंकार,
ध्वनित दिशाएँ उदार,
शतमुख, शतरव, मुखरे ।'[70]

निराला ने भारतीय अलंकारों के अतिरिक्त पाश्चात्य अलंकारों का भी सार्थक प्रयोग किया। उनके गीतों में मानवीकरण, ध्वन्यार्थव्यंजना और विशेषण-विपर्यय जैसे पाश्चात्य अलंकारों का सुन्दर प्रयोग प्राप्त होता है। 'गीतिगुंज' के एक गीत में प्रकृति का सुन्दर मानवीकरण प्रस्तुत करते हुए निराला लिखते हैं --

'पारस, मदन हिलोर न दे तन,
बरसे झूम झूमकर सावन।
बने द्रुमराजि साज सब साजे
अलियों, जूही की कलियों की
मधु की गलियों नुपुर बाजे।'[71]

संध्या तथा रात्रि का मानवीकरण प्रस्तुत करते हुए निराला अपने एक प्रगीत में लिखते हैं--

'दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही
संध्या सुन्दरी परी-सी
धीरे-धीरे।'[72]

'जूही की कली' में कवि एक नव युवती के रूप में जूही की कली का मानवीकरण प्रस्तुत करते है --

'विजन-वन-वललरी पर
सोती थी सुहाग-भरी-स्नेह-स्वप्न-मग्न-
अमल-कोमल-तनु तरुणी-जूही की कली,
दृग बन्द किये, शिथिल, - पत्रांक में,
वासन्ती निशा थी,

विरह-विधुर-प्रिया-संग छोड़

किसी दूर देश में था पवन

जिसे कहते हैं मलयानिल ।'[73]

इसी प्रकार निराला के गीतों में ध्वन्यार्थव्यंजना या अनुरणात्मकता (Onomatopoeia) के सुंदर चित्र प्राप्त हो जाते हैं । अनुरणात्मकता एक प्रकार से शब्दाश्रित अलंकृति है । इसे अनुप्रास का ही काव्यात्मक रूप माना जा सकता है । जब केवल व्यंजना ध्वनियों के द्वारा किसी भाव को उभारने की चेष्टा की जाती है तो वहाँ अनुरणात्मकता या ध्वन्यार्थव्यंजना अलंकार होता है । अनुरणन उत्पन्न करने के लिए कुछ वर्णों की सार्थक या निरर्थक आवृत्ति की जाती है जिससे ध्वनि - प्रभाव के द्वारा वही बिम्ब उभर सके जिसका चित्रण कविता में किया जा रहा है --

'फिर क्या ? पवन

उपवन सर सरिता गहन-गिरि-कानन

कुंज-लता पुँजों को पार कर

पहुँचा ।'[74]

निराला ने इन पंक्तियों के माध्यम से 'सर' वर्ण की आवृत्ति द्वारा सर-सर की ध्वनि उत्पन्न करके बहने वाले वायु बिम्ब को उभारा है ।

'बादल राग' नामक गीत में भी 'झर-झर' की ध्वनि द्वारा झरने का चित्रण किया है --

'झूम-झूम मृदु गरज-गरज घन घोर !

राग-अमर ! अम्बर में भर निज रोर !

झर झर झर निर्झर गिरि-सर में

घर, मरु, तरु-मर्मर, सागर में ।'[75]

प्रेयसी के नूपुर की ध्वनि और उसकी गगन मुद्रा का श्रव्य-बिम्ब उभारने के लिए निराला ने आभूषणों की आवाज के ध्वन्यात्मक शब्दों की आवृति द्वारा उभारा है --

'कण-कण कर कङ्कण प्रिय

किण-किण रव किंकिणी

रणन-रणन नूपुर उर लाज

लौट रंकिणी ;

और मुखर पायल स्वर करे बार-बार ।'[76]

निराला के काव्य में विशेषण-विपर्यय के कुछ उदाहरण भी प्राप्त हो जाते हैं । विशेषण-विपर्यय वस्तुतः अंग्रेजी कविता के 'ट्रांसफर्ड एपिथेट' (Transfered Epithet) का हिन्दी रूपान्तर है । यह अलंकार शैली में चमत्कार उत्पन्न करने के लिए विशेषण के स्थानान्तरित प्रयोग से निर्मित होता है । जो विशेषण जिस विशेष्य के साथ जुड़ना चाहिए उसका अन्य पद के साथ प्रयोग करके यह चमत्कार उत्पन्न किया जाता है । विशेषण-विपर्यय के प्रयोग में लक्षणाशक्ति सदैव प्रयुक्त होती है । निराला ने अपने काव्य में इस अलंकार का सुंदर प्रयोग करते हुए पनघट को व्याकुल नहीं माना है अपितु चरणों की व्याकुलता के कारण उन्हें पनघट पर उतरते हुए दर्शाया है --

'जल चरणों का व्याकुल पनघट ।'[77]

निराला ने अलंकारों का प्रयोग मात्र काव्यशोभा को बढ़ाने के लिए ही नहीं किया है अपितु सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति के लिए भी किया है । भारतीय अलंकारों के साथ वे पाश्चात्य अलंकारों के प्रयोग में भी निष्णान्त प्रतीत होते हैं ।

अलंकार उनके भाव में कभी बाधक नहीं बने बल्कि काव्य में मिलकर इन अलंकारों ने उसमें गतिसंचार ही किया है और पाठक के हृदय में रस का संचार किया है । और यहीं आकर निराला का अलंकार-प्रयोग सार्थक प्रतीत होता है ।

निराला की भाँति नज़रुल ने भी अपने काव्य में अनुप्रास का अद्‌भुत प्रयोग किया है --

'फल्लो सागर दूल्लो आकाश
छूटलो बातास ।'[78]

'छात्रदलेर गान' में भी कवि 'क' ध्वनि की आवृति द्वारा अनुप्रास अलंकार का अंकन करते हैं --

'कन्ठे मोदेर कून्ठविहीन
नित्यकालेर डाक ।'

'कांडारी हूँशियार' गीत में भी अनुप्रास की एक और छँटा विद्यमान है -

'तिमिर रात्री मातृमन्त्री
सन्त्रीरा सावधान ।[79]

नज़रुल के गीतों में प्रयुक्त अनुप्रास के अन्य उदाहरण इस प्रकार है --

1. 'भूलोक दूलोक भेदिया' (विद्रोही)
2. 'मरियार मूखे मारनेर वाणी उठितेदे मार मार' (फरियाद)
3. 'कंस काराय कंस हन्ता' (सव्यसाची)
4. 'वक्षेर बाणी चक्षेर जले छूये ज़ाय नाहि फोटे' (इन्द्रपतन)
5. 'आमारा देखे कखन तूमि फेलले चोखेर जल'
   'आज विश्वजयीर विपुल देउल ताई तो दलमल' । (विजयिनी)

अपने कई गीतों को नज़रुल ने श्लेष अलंकार से विभूषित किया है । *'कांडारी हूँशियार'* नामक गीत में वे लिखते हैं --

'उदिबे से रबि आमादेरि खूने रङिया पूनर्बार'[80]

यहाँ 'रवि' शब्द के दो अर्थ सूर्य एवं स्वाधीनता है । इसी गीत में उनके द्वारा प्रयुक्त काकुवक्रोक्ति का एक उदाहरण दृष्टव्य है --

'कान्डारी ! तूमि भूलिबे कि पथ ?

त्याजिबे कि पथ माझ ?[81]

'पूजारिनी' नामक काव्य में नज़रुल ने यमक अलंकार का उत्कृष्ट रूप प्रस्तुत किया है --

'तूमि मम चिर-पूजारिनी

बारे-बारे करियाछ तब पूजा-खानी ।'[82]

इसी के अंतर्गत वे आगे लिखते हैं --

चिर परिचिता तूमि,

जन्म जन्म धरे मोर अनादृता सीता ।'[83]

इन पंक्तियों में नज़रुल प्रतीयमानोत्प्रेक्षा का एक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

अलंकारों के निष्णान्त ज्ञाता नज़रुल ने 'उपमा' के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये हैं --

1. *'शेफालीर मतो शुभ्र सुरभि बिथार (दारिद्र्य)*
2. 'भृगुर मतन जखनि देखेछ अचेतन नारायन' (इन्द्रपतन)

इन उदाहरणों में प्रथम पंक्ति में नज़रुल शेफाली की तरह शुभ्र सुरभि और दूसरे में भृगु की तरह नारायण को रूपायित करते हैं ।

रूपकों की सृष्टि में नज़रुल अद्वितीय हैं । 'साम्यवादी' रचना में उन्होंने मालारूपक का एक श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत किया है --

'एई हृदयई से नीलाचल, काशी, मथुरा, वृन्दावन, बुद्ध गया
जेरूजालेम, मदीना, काबा-भवन, मसजिद एई, मंन्दिर एई,
गीर्जा एई हृदय ।'[84]

नज़रुल के द्वारा प्रयुक्त उपमा , रूपक इत्यादि अलंकार उनके स्वभाव की अस्थिरता, अधैर्य एवं प्रशान्तहीनता को प्रकट करते हैं । इसी कारण अनेक अलंकारों का प्रयोग करते हुए उन्होंने शास्त्रबद्ध नियमों का अनुसरण नहीं किया है । क्योंकि उनका विद्रोह अन्याय, अत्याचार, मिथ्या, कलुष और प्रथाओं के विरुद्ध था । उनकी वाणी शिल्पी की वाणी की अपेक्षा वेदनातुर मानव की वाणी है । इन सभी तथ्यों के होते हुए भी यह स्वीकारना संगत है कि नज़रुल ने अपनी रचनाओं में अनेकानेक अलंकारों का प्रयोग किया है । उनके द्वारा प्रयुक्त कुछ और उदाहरणों के माध्यम से इस तथ्य को स्पष्ट किया जा सकता है --

समासोक्ति -

'हे दारिद्र्य, तूमि मोरे करेछ महान
तूमि मोरे दानियाछ ख्रीष्टेर सम्मान ।'[85]

उल्लेख -

'ज्ञानेर लक्ष्मी, गानेर लक्ष्मी, शस्य लक्ष्मी नारी
सुसमा लक्ष्मी नारीई फिरिछे रूपे-रूपे संचारि ।'[86]

विरोध -

'फॉसीर मन्चे गेये गेल जारा जीवनेर जयगान ।'[87]

अपन्हुति -

'ताराई आज निःस्व देशे कॉदछे हये अन्नधरा
देशेर जत नदीर धारा जल ना ओरा अश्रुधारा ।

अतिशयोक्ति -

बल महाविश्वेर महाकाश काड़ि ।
चन्द्र सूर्य ग्रह तारा छाड़ि
भूलोक दूलोक गोलक भेदिया,
खोदार आसन 'आरश छेदिया ।'[88]

इस प्रकार नज़रुल ने विविध अलंकारो के प्रयोग से अपने काव्य को शोभा प्रदान किया है। कभी-कभी उन्होने अलंकार प्रयोग शास्त्रबद्ध तरीके से नहीं किया है क्योकि काव्य को सुषमामंडित करने से अधिक महत्त्वपूर्ण वे मानव मन के भावो को प्रकट करना मानते हैं । इस संबंध मे एक पत्रिका मे लिखा गया है --

''जे हेतु स्थिति ओ स्थिरता धीरता ओ नीरबता एवं प्रशान्ति ओ प्रसन्ना छिल नज़रुलेर स्वभाव विरुद्ध, जे हेतु आवेगताड़ित नज़रुले पूर्वसूरीर प्रकृति, वस्तु ओ एतिह-चेतना कवितार अंगे ओ अन्तरे रन-रक्त-वन्य-खरा-अग्नि-महामारी-झड़ धूमकेतू प्रभृतिर गति-प्रकृति-रीति-नियम, रोस-क्षेभ द्रोह-वेदना, रूप-स्वरूप नियेे विचित्रभावे तीव्र हये आत्मप्रकाश करेछे अबलीलाय ओ अनायासे - दायित्व व्रत ओ चित्तविक्षोभ निये कविता रचना करते हयेछे बलेई कवि संयत आवेग चापा उच्चासे मनीषा प्रयोगे मननेर ओ मनस्वितार सम्मिश्रने नियंत्रित, नियमित ओ कल्पना मनन-मनीषा -- नज़रुलेर गाने, गद्ये एवं कवताय एमनि असंख्य मुक्तोर मत हीरकखण्डेर मतो, चूम्कीर मतो, छड़िये छिटिये

रयेछे अलंकार । नज़रुल, रचनाय सामग्रिक ओ सामष्टिक सौन्दर्य-सामान्जस्य कम बटे, किन्तु खण्ड सौन्दर्य अटल अजस्र ।'[89]

संक्षेप में इन पंक्तियों का यह अर्थ निकलता है कि नज़रुल की रचनाओं में भले ही सौन्दर्य सामन्जस्य कम है पर जितने भी हैं, हीरकखडों, मुक्ताओं आदि की तरह बिखरे पड़े हैं ।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि निराला और नज़रुल अलंकारों के निष्णात ज्ञाता थे परन्तु उन्होंने कभी भी इन अलंकारों को अपने भावों की अभिव्यक्ति में बाधक नहीं बनने दिया । । जरूरत पड़ने पर दोनों ने ही अलंकारो के शास्त्रीय स्वरूप को तोड़ा और अपनी भावाभिव्यक्ति को सशक्त बनाया । अर्थालंकारों के साथ दोनों में ही अपने गीतों में शब्दालंकारों का भी सुन्दर समायोजन किया है ।

बिम्ब और प्रतीक योजना :-

बिम्ब और प्रतीक काव्य को प्रभावशाली बनाने के लिए प्रयुक्त होते हैं । बिम्बों और प्रतीकों के विषय में श्री राम अवध द्विवेदी जी मानते हैं -- 'प्रतीक में सूक्ष्म अर्थ और प्रभाव की नियोजना रहती है तथा उसके संपूर्ण अभिप्राय की व्याख्या अन्य शब्दों में नहीं की जा सकती । बिम्ब का सीधा संबंध अभिव्यक्ति के और मानस-पटल पर उभरने वाले चित्रों से है ।'[90]

काव्य को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए कवि जिन चित्रकल्पों का प्रयोग करता है उन्हें बिम्ब कहा जाता है । यह शब्द अंग्रेजी के 'Image' शब्द से बना है । इसका अर्थ चित्रबद्ध, प्रतिबिम्बित, प्रतिच्छायित अथवा मूर्तरूप प्रदान करने से लगाया गया है । अतः भाषा की चित्र-शक्ति को बिम्ब कहा जाता है ।

इसी तरह अगर प्रतीको की बात करें तो स्पष्ट होता है कि प्रतीक व्यक्त के माध्यम से अव्यक्त का संकेत करते हैं । 'प्रतीकों का लक्ष्य भावात्मक संवेदना की तीव्रता है । काव्य का प्रतीक भाव के चित्रों का पुनरुत्सर्जन करते हैं और उस भाव के प्रेषण में सहायता करते हैं ।'[91]

अतः किसी अगोचर - अदृश्य पदार्थ का किसी समानता के कारण बोध कराने वाला गोचर या दृश्य पदार्थ प्रतीक कहलाता है ।'[92]

काव्य सौष्ठव को बढ़ाने के लिए निराला और नज़रुल दोनों ही कवियों ने अपनी रचनाओं में बिम्बों और प्रतीकों को संजोया है । गीतों को प्रभावशाली बनाने के लिए निराला ने लोकजीवन एवं प्रकृति दोनों के बिम्बों को ग्रहण किया है । उन्होंने मूल रूप से चाक्षुष बिम्ब, श्रोत बिम्ब, आस्वाद्य बिम्ब और स्पर्श बिम्बों की योजना की है । उनकी अनेक कविताओं में बिम्बों का सौन्दर्य निदर्शन होता है । 'तुलसीदास' उनमे से एक है ।
गीतिका के निम्न गीत में उनके श्रुति, आस्वाद्य और स्पर्श बिम्ब का सुंदर उदाहरण प्राप्त होता है --

'स्पर्श से लाज लगी
...... मौन पान करती अधरासव
कण्ठ लगी उर गी ।।
मधुर स्नेह के मेघ प्रखरतर,
बरस गए रस निर्झर झर-झर ।'[93]

इसी प्रकार गीत-गुंज के गीतों में भी सुंदर बिम्ब योजना के दर्शन हो जाते हैं । एक गीत में निराला लिखते हैं --

'लोक विशोक हुए, आँखों से
उमड़े गगन लाखों पाँखों से
कोयले मञ्जरी की शाखों से
गयी सुमङगल होली तुम्हारी ।'[94]

वसन्त की एक कविता में पौराणिक बिम्ब को पिरोते हुए निराला लिखते हैं --

'रूखी री यह डाल, वसन-वासन्ती लेगी ।
देख खड़ी करती तप अपलक
हीरक-सी समीर माला जप
शैल-सुता, अपर्ण-अशना ।
पल्लव-वसना बनेगी
वसन-वासन्ती लेगी ।
हार गले पहना फूलों का
ऋतुपति सकल सुकृत कूलों का
स्नेह-सरस भर देगा उरसर
स्मरहर को वरेगी -
वसन-वासन्ती लेगी ।'[95]

इस गीत के विषय में श्री दूधनाथ सिंह जी का मानना है -

'अंपर्ण-अशना, समीर-माला, सुकृत-कूलों तथा आशुतोष-फल- ये शब्द-बन्ध किस तरह दुहरे अर्थों की व्यंजना में सफल हैं और इस तरह एक पूरी पौराणिक कथा को वसन्त के बिम्ब में कितने संश्लिष्ट और संक्षिप्त रूप में संजोया गया है -- यह दर्शनीय है । उत्कृष्टतम गीति तत्वों के साथ शब्द-विधान और बिम्ब-योजना की कला में निराला

अपने समकालीनों में बेजोड़ है । उनकी इसी संश्लिष्टता को कुछ आलोचकों और पाठकों ने काठिन्य समझ लिया है । दरअसल यह संश्लिष्टता एक संघटित गीति-क्षमता और शिल्प-संक्षिप्ति का प्रतिफलन है ।'[96]

गीतिका के एक गीत में निराला भारत के परिधान, अंचल और ज्योतिपूर्ण हार के रूपों में सुंदर बिम्ब उपस्थित करते हैं --

'तरू-तृण-वन लता वसन,
अंचल में खचित सुमन,
गंगा ज्योतिर्जल-कण
धवल धार हार गले ।'[97]

यहाँ भारतमाता के परिधान के रूप में वृक्ष, तृण वन, आदि को दर्शाया गया है, पुष्पों से उनके अंचल को बिम्बित किया गया है और गंगाजल को उनके गले का हार माना गया है ।

इसी प्रकार प्रतीक-योजना द्वारा भी निराला ने काव्य सौष्ठव को उभारा है --

'अब यह वसन्त से होता नही अधीर
पल्लवित झुकता नहीं अब यह धनुष-सा
कुसुम के काम के चलते नहीं हैं तीर'

गीतगुंज के एक गीत में वे निराशा के भाव को प्रकट करते हुए लिखते हैं --

'सुख का दिन डूब जाय
तुमसे न सहज मन ऊब जाय ।
खुल जाय न मिली गाँठ मन की
लुट जाय न उठी राशि धन की ।'[98]

निराला प्राचीनता के अग्रह्य तत्त्वों को विनष्ट करने और अंधपरंपराओं को ध्वस्त करने के लिए कतिपय प्रतीकों का सहारा लेकर समाज के आक्रोश को जगाना चाहते हैं --

'उड़ा-उड़ाकर पीले पल्लव, करे सुकोमल राह -
तरुण तरु, भर प्रसून की प्यास ।
जीर्ण-शीर्ण जो दीर्ण धरा में प्राप्त करे अवसान,
रहे अवशिष्ट सत्य जो स्पष्ट ।'[99]

इस प्रकार निराला के काव्य में प्रतीकों की भिन्न-भिन्न सृष्टियाँ है । उन्होंने जूही की कली, शेफालिका, संध्या, यामिनी, प्रपात, धारा, सुरभि, वसन्त, वर्षा, बादल आदि प्राकृतिक प्रतीकों के साथ-साथ सांस्कृतिक, आध्यात्मिक एवं दार्शनिक प्रतीकों का समन्वय अपने काव्यों में किया है । डॉ. कृष्णदेव झारी निराला के प्रतीकों की संख्या अत्यल्प मानते हैं । यदि उनके विवादास्पद प्रतीकों को छोड़ दिया जाय तो उनकी प्रतीक-योजना उच्चकोटि की प्रतीत होती है ।

अंचल को चंचल क्षुद्र प्रपात !
मचलते हुए निकल आते हो,
किसी पत्थर से टकराते हो
फिर कर जरा ठहर जाते हो ।'[100]

निराला की भाँति नज़रुल ने भी बिम्ब और प्रतीकों की सृष्टि के माध्यम से अपने काव्य को शोभामंडित किया है । नज़रुल ने अपने बिम्बों में दृष्टिग्राह्यता के साथ श्रवणशुभगता को भी ध्यान में रखा जो काव्यजगत में अनन्य है । जैसे --

1. 'विपल्बेर लाल घोड़ा ऐ ठाके ऐ-
ऐ शोनो, शोनो तार हेसार चिक्कूर,

ऐ तार क्षुर हाना मेहो !

2. आमि भाई पूबेर हाउया
बॉचनेर नाचन पाउया
कारायार काजरी गाओया,
नटीनीर पा झिनझिन

3. जीवन मरन पाये बाजे मन्जीर
आमरा बाहिनी बिंश शताब्दीर ।'[101]

उनके अनेक बिम्बों में पूर्वजों का प्रभाव ; पुरातन प्रचेष्टा, है । प्रकृति जगत के पुष्प नज़रुल के प्रिय बिम्ब हैं - विशेष रूप से कमल के फूलों का बिम्ब उनके काव्य में बार-बार परिलक्षित होते हैं --

1. 'आमार प्रानेर रक्त कमल
निङड़े हलो लाल पतदल
सेई शतदल दिये तोमार नतून राजाय बरेछिले
आवला जेदिन परेछिले ।

2. काँटार मृनाले उठेछिल फूटे जे चित्तशतदल
शोभाछिल जाहे बानी कमलार रक्त चरण तल
संग्रामे नत पूजारी छिंड़िल से शतदले-
श्रेष्ठ अर्घ्य अर्पिबे बलि नारायण पदतले ।'[102]

प्रकृति की रूप-सुषमा अंकन में भी नज़रुल अविस्मरणीय रूपकल्प के स्रष्टा हैं--

1. 'तोमार पाताय हरित आँचले चाँदिनी घूमाबे जबे
मूर्च्छिता हबे सूखेर आबेशे से आलोर उत्सबे ।'

नज़रुल के प्रेमगीतों में बिम्ब के काव्यिक प्रकाश है पर सामाजिक, राजनैतिक काव्यों में वह अनुपस्थित है । उन्होंने देश की निसर्ग सुषमा की अपेक्षा देश के मनुष्यों के बचे रहने के संग्राम को अधिक मूल्य प्रदान किया है ।

'सातरंगा एई इन्द्रधनुष
लाल रंटाई देखल जारा,
तादेर गाँये मेघ नामाये भूत करेछे बर्सा-धारा
यूगेर आलोर रांगा उदय,
फाल्गुन फूलेर आगून शिखा,
सीमन्ते लाल सिंदूर परे
आसछे हेसे जयन्तिका ।'[103]

प्रत्येक कवि की अपनी विशिष्ट शैली होती है । निराला और नज़रूल ने भी शिल्प के विभिन्न पक्षों को अपने काव्य में उकेरा है और काव्यजगत में अपना एक विशिष्ट स्थान निर्धारित किया है । दोनों ने ही शास्त्रीय मतों का निर्वाह तो किया है पर उन मतों की रूढ़ियों में न बँधकर अपनी एक स्वच्छंद प्रवृति को जन्म दिया है जिससे साहित्य जगत के नए-नए प्रतिमान उभरकर सामने आए और काव्यजगत को एक नूतन दिशा का अभिज्ञान प्राप्त हुआ ।

संदर्भ :

1. Wordsworth- Preface
2. बृहत् हिन्दी शब्दकोश - पृ. 1130
3. सरोज-स्मृति - निराला
4. सरोज-स्मृति - निराला
5. सरोज-स्मृति - निराला
6. निराला के काव्य बिम्ब और प्रतीक - वेदव्रत शर्मा -पृ. 68
7. अर्चना - पृ. 24
8. आराधना - पृ. 30
9. डॉ. बच्चनसिंह - क्रांतिकारी कवि निराला , पृ. 187
10. राग-विराग, पृ. 181
11. राग-विराग, पृ. 71
12. निराला - राजनाथ शर्मा , पृ. 203
13. राग-विराग, पृ. 46
14. गीतिका - भूमिका
15. गीतिका - समीक्षा - नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ. 25
16. निराला - राजनाथ शर्मा, पृ. 204
17. वर्तमान - मई-जून 2000, हिन्दी गज़ल की रिवायत : एक जिरह सुल्तान अहमद
18. राग-विराग, पृ. 132
19. गीतिका - गीत 6 वाँ
20. निराला रचनावली, पृ. 542 - भाग -2
21. नया साहित्य : कवि निराला और उनका काव्य इतिहास - गिरीशचन्द्र तिवारी, पृ. 193
22. पंत और पल्लव - भूमिका
23. नज़रुल प्रतिभा - मोबाश्वेल अली
24. नज़रुल काव्यगीति : वैचित्र ओ मूल्यांकन - बाँधन सेनगुप्त
25. नज़रुल इस्लाम कविमानस ओ कविता - ध्रुवकुमार मुखोपाध्याय, पृ. 142
26. साम्यवादी - नज़रुल इस्लाम - 1925 ई. दिसम्बर
27. नज़रुल गीति अखण्ड , पृ. 247
28. नज़रुल गीति अखण्ड , पृ. 246

29. नज़रुल गीति अखण्ड , पृ. 325
30. नज़रुल गीति अखण्ड , पृ. 302
31. नज़रुल गीति अखण्ड , पृ. 295
32. नज़रुल गीति अखण्ड , पृ. 238
33. नज़रुल गीति अखण्ड , पृ. 499
34. नज़रुल गीति अखण्ड , पृ. 484
35. नज़रुल गीति अखण्ड , पृ. 498
36. कविमानस ओ कविता - ध्रुवकुमार मुखोपाध्याय, पृ. 145
37. नज़रुल गीति अखण्ड , पृ. 490
38. रस अलङ्कार - डॉ. शम्भुनाथ पाण्डेय, पृ. 105
39. पल्लव - (भूमिका) पंत, पृ. 02
40. टैगोर और निराला - डॉ. अवध प्रसाद वाजपेयी, पृ. 197
41. प्रसाद, निराला, अज्ञेय - रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ. 63
42. प्रसाद, निराला, अज्ञेय - रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ. 65
43. गीतिका - (भूमिका) निराला , पृ. 12
44. बंगाली लिटरेचर , पृ. 174
45. गीतगुंज - प्रथम गीत
46. बेला - (भूमिका) निराला
47. राग-विराग (भूमिका) पृ. 36
48. राग-विराग पृ. 132
49. राग-विराग पृ. 136-37
50. राग-विराग पृ. 84
51. राग-विराग पृ. 129
52. राग-विराग पृ. 37
53. कविमानस ओ कविता - ध्रुवकुमार मुखोपाध्याय, पृ. 147
54. नज़रुल गीति अखण्ड - भाग -1
55. कविमानस ओ कविता - ध्रुवकुमार मुखोपाध्याय, पृ. 150
56. नज़रुल प्रतिभार स्वरूप - अब्दुल कादिर
57. कविमानस ओ कविता - ध्रुवकुमार मुखोपाध्याय, पृ. 151
58. कविमानस ओ कविता - ध्रुवकुमार मुखोपाध्याय, पृ. 151
59. 1327 बांगाब्द के भाद्र मास के 'मोस्लेम भारत' पत्रिका में प्रकाशित । सैयद आहसान के 'कवितार कथा ओ अन्यान्य विवेचना' ग्रन्थ से उद्धृत

60. रस, अलंकार, पिंगल - डॉ. शम्भुनाथ पाण्डेय, पृ. 64
61. रस, अलंकार, पिंगल - डॉ. शम्भुनाथ पाण्डेय, पृ. 64
62. रस, अलंकार, पिंगल - डॉ. शम्भुनाथ पाण्डेय, पृ. 64
63. रस, अलंकार, पिंगल - डॉ. शम्भुनाथ पाण्डेय, पृ. 65
64. रस, अलंकार, पिंगल - डॉ. शम्भुनाथ पाण्डेय, पृ. 65
65. राग-विराग, पृ. 175
66. राग-विराग, पृ. 177
67. डॉ. जनार्दन- द्विवेदी - निराला काव्य का अभिव्यंजना - शिल्प, पृ. 69
68. परिमल, पृ. 34
69. परिमल, पृ.119
70. राग-विराग, पृ. 76
71. गीतगुंज - 6ठा गीत
72. संध्या-सुन्दरी - निराला
73. राग-विराग, पृ. 48
74. रस, अलंकार, पिंगल - डॉ. शम्भुनाथ पाण्डेय, पृ. 103
75. राग-विराग, पृ. 53-54
76. गीतिका - गीत - 6 ठॉ
77. रस, अलंकार, पिंगल - डॉ. शम्भुनाथ पाण्डेय, पृ. 104
78. सूखेर - उल्लासे - नज़रुल इस्लाम
79. नज़रुल गीति अखंड - कॉडारी हूँशियार
80. नज़रुल गीति अखंड - कॉडारी हूँशियार
81. नज़रुल गीति अखंड - कॉडारी हूँशियार
82. नज़रुल गीति अखंड - पुजारिनी
83. नज़रुल गीति अखंड - पुजारिनी
84. नज़रुल - साम्यवादी
85. नज़रुल - दारिद्रय
86. नज़रुल - नारी
87. नज़रुल - कॉडारी हूँसीयार
88. नज़रुल - विद्रोही
89. एकाले नज़रुल 1327 मे प्रकाशित मुस्लिम भारत पत्रिका
90. रामअवध द्विवेदी - साहित्य सिद्धांत , पृ. 180

91. डॉ. धनंजय वर्मा, निराला, काव्य और व्यक्तित्व, पृ. 204
92. डॉ. जयनाथ नलिन : काव्य पुरूष निराला, पृ. 116
93. गीतिका, पृ. 33
94. निराला- गीतगुंज
95. निराला-गीतिका
96. निराला - आत्महन्ता आस्था - दूधनाथ सिंह, पृ. 211
97. गीतिका, पृ. 73
98. निराला- गीतगुंज
99. अनामिका, पृ. 67
100. परिमल, पृ. 154
101. कविमानस ओ कविता - ध्रुवकुमार मुखोपाध्याय, पृ. 157
102. कविमानस ओ कविता - ध्रुवकुमार मुखोपाध्याय, पृ. 158
103. कविमानस ओ कविता - ध्रुवकुमार मुखोपाध्याय, पृ. 162

उपसंहार

उपसंहार

कवि, प्रकृति, मानव, समाज और अपने देशकाल से प्रभावित होकर अपनी प्रतिभाशक्ति द्वारा पुनः काव्यसृजन द्वारा समाज में उन अनुभवों को प्रतिबिम्बित कर देता है । बीसवीं सदी के दो महान रचनाकार सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला और काज़ी नज़रुल इस्लाम ऐसे ही कोटि की सृजनधर्मिता के माध्यम से मानव मन के साथ समाज को भी प्रभावित करते रहे । निराला हिन्दी के और नज़रुल बांग्ला जगत के उत्कृष्ट कोटि के रचनाकार थे । दो भिन्न-भिन्न भाषाओं के कवि होकर भी दोनों ने जनमन पर समान रूप से अपनी रचनाओं का अमिट छाप छोड़ा ।

जीवन, भाव, विचार और अभिव्यंजना के सभी आयामों पर दोनों रचनाकारों की अभिव्यक्ति साम्यता के विविध धरातलों को स्पर्श करती हुई भी विषमता के कुछ चरणों को छूती है । दोनों के गीतिकाव्य अपने स्वर-माधुर्य एवं लोक-भाव को चर्मोत्कर्ष पर अभिव्यक्त करते है ।

निराला और नज़रुल के गीतों में अद्‌भुत साम्य प्राप्त होता है । बांग्ला में नज़रुल और हिन्दी में निराला पर असंख्य पुस्तकें लिखी गई है ।

निराला और नज़रुल के गीतिकाव्यों का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखा गया है कि दोनों के द्वारा लिखित गीतिकाव्यों का ही विशिष्ट एवं विस्तृत रूप से अध्ययन किया जाय ।

प्रस्तुत शोध-कार्य कुल पाँच अध्यायों में विभक्त है ।

प्रथम अध्याय गीत, गीति, गीतिकाव्य के के अंतर्गत साहित्य और काव्य का विवेचन करते हुए गीत, गीति और गीतिकाव्य का परिचयात्मक विश्लेषण एवं अर्थगत अंतर को स्पष्ट किया गया है । इसके अंतर्गत तीनों का सामान्य परिचय, उद्‌भव एवं विकास,

अर्थ एवं परिभाषाएँ, निर्धारक तत्त्व विशेषताएँ, लक्षण एवं स्वरूप, विषयवस्तु आदि का विस्तृत विवेचन करते हुए गीतिकाव्य के स्वरूप को समझाने की चेष्टा की गई है । इसके अतिरिक्त गीतिकाव्य का वर्गीकरण भी प्रस्तुत किया गया है । निराला और नज़रुल के गीतिकाव्य को समझने के लिए प्रस्तुत पाठ महत्त्वपूर्ण है । इसी पाठ के आधार पर दोनों महाकवियों के गीतिकाव्यों का विवेचन-विश्लेषण किया गया है ।

द्वितीय अध्याय- 'निराला एवं नज़रुल का व्यक्तित्व एवं कृतित्व' के अंतर्गत दोनों के जीवन का परिचयात्मक इतिवृत्त, क्रमिक रचनात्मक विकास, साहित्य में योगदान एवं दोनों के जीवन का तुलनात्मक निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है ।

ध्यातव्य है कि दोनो कवियों की युगीन परिस्थितियों में समानता थी । साथ ही उनकी जीवन यात्रा के कई उतार-चढ़ाव के स्तरों में भी समत्व था ।

किसी भी कवि की रचना तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक एवं अन्य परिस्थितियों से प्रभावित होती है । संवेदनशील कवि समाज में व्याप्त अंधकार को दूर करने के लिए तलवार रूपी कलम का सहारा लेता है और लोगों को जागृति प्रदान करता है । ऐसे ही कवियों की पंक्ति में निराला और नज़रुल आते हैं जो युगद्रष्टा होने के साथ-साथ युगस्रष्टा भी थे ।

दोनों कवियों का जन्म उस युग में हुआ था जब देश गुलामी की जंजीरों में जकड़ा हुआ था । जनमन हताशा और निराशा के घोर अंधकार में डूबा हुआ था । संघर्षमय जीवन की त्रासदियों को झेलते हुए दोनों को अनेक अनुभव प्राप्त हुए । पराधीन देश के क्षत-विच्छद अवस्था को देख उनका हृदय आर्तनाद कर उठा और दोनों ने विपुल कृतियों द्वारा देश की सुसुप्त जनता को जागृत करने का बीड़ा उठाया ।

अग्रवर्णित तीन अध्यायों में निराला और नज़रुल के गीतिकाव्यों का वर्गीकरण कर उन्हें भाव पक्ष, विचार पक्ष एवं शिल्प पक्ष के अंतर्गत विभाजित किया गया है ।

तृतीय अध्याय निराला और नज़रुल का भाव-पक्ष दर्शाता है । इस अध्याय में, सर्वप्रथम भाव के विभिन्न अर्थ और परिभाषाओं पर विचार-विमर्श किया गया है । तदुपरांत भाव के विभिन्न पक्षों-प्राकृतिक भाव, वैयक्तिक भाव और समाजिक भावों पर एक-एक कर विचार करते हुए निराला और नज़रुल के गीतिकाव्यों को प्राकृतिक, व्यक्तिपरक एवं सामाजिक भावों के अंतर्गत विभाजित कर उनका तुलनात्मक निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है । निराला और नज़रुल दोनों के गीतों में प्रकृति की संस्कृतिगत विशेषताएँ देखी जा सकती है । नज़रुल प्रकृति के विषाद रूप की व्याख्या में अधिक तल्लीन दिखाई पड़ते हैं तो निराला प्रकृति का श्रृंगारिक रूप प्रस्तुत करते हैं । दोनों के भक्ति गीतों में पर्याप्त साम्य है । हाँलाकि नज़रुल ने हिन्दु और इस्लाम धर्म संबंधी गीत लिखे हैं और निराला ने मात्र हिन्दु धर्म संबंधी गीत, तथापि भाव-भक्ति से ओत-प्रोत दोनों कवि विश्वमंगल की कामना ही करते हैं । दोनों ने लोक की भावनाओं, रीति-रिवाजों और लोक-संस्कृति को परखा और अपनी रचनाओं में लोकजीवन को सजीव किया । दोनों ने जीवन के वेदनातप्त एवं प्रेमविह्वल क्षणों का अनुभव किया था । दोनों ही सहज, सरल प्रेम को अभिव्यक्त करते हुए प्रेम के भोग पक्ष की अपेक्षा त्याग पक्ष पर बल देते हैं ।

चतुर्थ अध्याय निराला और नज़रुल के गीतिकाव्यों का वैचारिक पक्ष दर्शाता है । प्रस्तुत अध्याय में विचार का अर्थ को स्पष्ट करते हुए भाव से उसकी भिन्नता पर विचार किया गया है । विचार के विभिन्न पक्षों- आध्यात्मिक-दार्शनिक, राजनैतिक, सामाजिक एवं जीवन-मूल्यपरक विचारों को एक-एक कर उजागर करते हुए निराला और नज़रुल के गीतिकाव्यों को विभिन्न वैचारिक पक्षों के अंतर्गत विभाजित किया गया है । दोनों

कवियों ने आध्यात्मिक सामाजिक और राष्ट्रीय विचारों को पहचान कर अपनी रचनाओं में सुव्यवस्थित रूप से प्रस्तुत किया है और विश्व को इन विचारों द्वारा एक नूतन आलोक से आच्छादित किया है । कुछ भिन्नताओं के उपरान्त भी दोनों कवि एक दूसरे से अभिन्न जान पड़ते हैं क्योंकि दोनों ही का काव्य जीवन-दर्शन और मानवता के सिद्धान्तों को उजागर करता है । सामाजिक विडम्बनाओं और राष्ट्रीय संघर्षों से जूझते हुए दोनों का काव्य आध्यात्म की एक नूतन आभा से मानवता के प्रांगण को आलोकिन कर देते हैं ।

पंचम और अंतिम अध्याय में गीतिकाव्य के शरीर अर्थात उसके शिल्प-पक्ष पर विचार प्रस्तुत किया गया है । शिल्प के अर्थ एवं परिभाषाओं पर विचार करते हुए इस अध्याय में शिल्प के विविध पक्षों-छंद, शब्द, भाषा, बिम्ब अलंकार, प्रतीक, संगीतात्मकता आदि पर विचार प्रस्तुत किया गया है । निराला और नज़रुल के मुक्तछंदों पर माइकेल मधुसूदन दत्त के मुक्त छंदों की स्पष्ट छाप है । नज़रुल के गीतिकाव्यों में सांगीतिकता एक महत्वपूर्ण पक्ष है । उन्होंने प्रत्येक गीत को राग-रागिनियों में निबद्ध कर प्रत्येक गीत का ताल निश्चित किया है । नज़रुल ने यथावत संगीतशास्त्र का प्रशिक्षण लिया था । किन्तु निराला ने इस प्रकार का कोई प्रशिक्षण प्राप्त नहीं किया था । इसी कारण उनके गीतों के क्षेत्र में सांगीतिक तत्त्व विवादास्पद है । हाँलाकि उनके कुछेक गीतों को गाया गया है । वे स्वयं इन गीतों को हारमोनियम के साथ गाते थे परन्तु इन गीतों की शास्त्रीयता विवादास्पद है । निराला का 'वर दे वीणा वादिनी' राग बागेश्री में गाया जाता है । किन्तु आज तक इस बात का प्रमाण नहीं मिल पाया है कि उन्होंने कभी अपने गीतों को निश्चित राग-रागिनियों में निबद्ध किया था या नहीं । जबकि नज़रुल गीति की सुस्पष्ट परम्परा बंगाल के गली-गली में विद्यमान है । बच्चे, बूढ़े और सभी वर्ग के लोग इन गीतों को गाते हैं । गीतों में सांगीतिक तत्त्व के इसी प्रकरण में निराला नज़रुल की तुलना में कमजोर

प्रतीत होते हैं । प्रस्तुत पाठ में इन्हीं तथ्यों पर विस्तृत विचार कर निराला और नज़रुल के शिल्प पक्ष की तुलना की गई है ।

अंत में उपसंहार के अंतर्गत दोनों कवियों का एकत्व, भिन्नत्व एवं उनके काव्यों का सांस्कृतिक महत्व पर चर्चा करते हुए निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है ।

निराला और नज़रुल देश के महान रचनाकारों की पंक्ति में अग्रगणित है । उनके गीतिकाव्यों पर विस्तृत विवेचन दोनों के साहित्य को समझने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाएगी ।

परिशिष्ट

ग्रंथ-सूची

आधार ग्रंथ-सूची :

1. निराला रचनावली - भाग 1-8- नन्दकिशोर नवल - नई दिल्ली - राजकमल प्रकाशन, 1998
2. काज़ी नज़रुल इस्लाम रचना समग्र - भाग 1-6; पश्चिमबंग बांग्ला अकादमी -2001

संदर्भ ग्रंथ-सूची :

हिन्दी ग्रन्थ :

1. अरस्तू काव्यशास्त्र
2. अनामिका - निराला-मतवाला कार्यालय, कलकत्ता, 1923
3. अर्चना - निराला, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1973
4. अणिमा - निराला - लोकभारती प्रकाशन, 1971
5. आधुनिक गीतिकाव्य - डॉ. उमाशंकर तिवारी, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1999
6. आधुनिक गीतिकाव्य का स्वरूप और विकास -
7. आराधना - निराला - साहित्यकार संसद, इलाहाबाद, 1953
8. अंजलि - अपने विचार - डॉ. रामकुमार वर्मा
9. काव्यालंकार, प्रथम परिच्छेद - रुद्रट, चौखम्भा विद्या भवन
10. काव्यादर्श - डॉ. नगेन्द्र - भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा
11. काव्यप्रकाश - आचार्य मम्मट - वाराणसी - ज्ञानमंडल, 1985
12. काव्यशास्त्र - डॉ. भगीरथ मिश्र - 10th ed.वाराणसी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, 1993
13. काव्यशास्त्र की रूपरेखा - श्यामनन्दन शास्त्री
14. काव्य की परख
15. काव्य पुरुष निराला - डॉ. जयनाथ नलिन - आलोक प्रकाशन, कुरूक्षेत्र, 1970
16. काव्य का देवता निराला - श्री विशम्भर मानव-III ed. इलाहाबाद - लोकभारती प्रकाशन, 1974
17. कुछ विचार - प्रेमचंद - लोकभारती प्रकाशन, 1999
18. कविता कौमुदी - भाग -3
19. क्रांतिकारी कवि निराला - डॉ. बच्चन सिंह - वाराणसी, विश्वविद्यालय,प्र.1992
20. गद्य-पद्य
21. गीतिकाव्य - डॉ. रामखेलावन पाण्डेय - ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी,1968

22. गीतगोविन्द - हिन्दी रूपान्तर - विनयमोहन शर्मा-राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998
23. गीतिकाव्य का विकास - लालधर त्रिपाठी
24. गीतिका - निराला, भारती भंडार, इलाहाबाद, 1964
25. गीतिका की समीक्षा - नन्ददुलारे वाजपेयी
26. गीतगुंज - निराला - हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, काशी, 1954
27. गंगा माटी का गीत - डॉ. हीरालाल तिवारी
28. चिंतामणि - रामचन्द्र शुक्ल -वाराणसी - 4th ed. नागरीप्रचारिणी सभा, 1976
29. छायावादोत्तर हिन्दी काव्य शिल्प - डॉ. रामकुमार मिश्र - शुभदा प्रकाशन,2001
30. छायावादी काव्य : स्वरूप और व्याख्या - टी.एन. पाण्डेय - वाराणसी, संजय बुक सेंटर, 1989
31. छायावाद का गीति - सौन्दर्य 'छायावाद और प्रगतिवाद'
32. छायावादी काव्य में राष्ट्रीय - सांस्कृतिक चेतना
33. छायावादी काव्य में लोकमंगल की भावना - डॉ. अम्बादत्त - प्रेम प्रकाशन, दिल्ली, 1973
34. जीवन के तत्त्व और काव्य के सिद्धांत
35. जीवन और काव्य
36. टैगोर और निराला - श्री अवध प्रसाद वाजपेयी - युगवाणी प्रकाश, कानपुर, 1965
37. दर्शन संग्रह - डॉ. दीवानचन्द्र
38. नज़रुल विविध प्रसंग - जलज भादुड़ी - छपते छपते प्रकाशन, प्रा. लि., जनवरी - 2002
39. निराला की साहित्य साधना - भाग -3 - डॉ. रामविलास शर्मा -राजकमल प्रकाशन, 1969
40. निराला - रामरतन भटनागर
41. निराला का काव्य - एक विश्लेषण - डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र
42. निराला का काव्य और व्यक्तित्व - डॉ. धनंजय वर्मा - विद्या प्रकाशन मंडल, दिल्ली, 1965
43. नया हिन्दी-काव्य : डॉ. शिवकुमार मिश्र
44. निराला का काव्य - डॉ. जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव, पुस्तक संस्थान, कानपुर, 1974
45. निराला - सं. डॉ. पदमसिंह शर्मा

46. निराला काव्य का अध्ययन - डॉ. भगीरथ
47. निराला आत्महन्ता आस्था - दूधनाथ सिंह - लोकभारती प्रकाशन, सं.1995
48. निराला के काव्य में राष्ट्रीय चेतना - लक्ष्मीनारायण दुबे
49. निराला के काव्य बिम्ब और प्रतीक - वेदव्रद शर्मा - नई दिल्ली - आशा प्रकाशन, 1973
50. निराला - श्री राजनाथ शर्मा
51. निराला काव्य का अभिव्यंजना शिल्प - डॉ. जनार्दन द्विवेदी - कुमार ब्रदर्स, दिल्ली, 1972
52. निराला - डॉ. रामविलास शर्मा - राधाकृष्णन प्रकाशन, 1996, नई दिल्ली
53. निराला के काव्य प्रतिमान - डॉ. शशिप्रभा सिंह
54. निराला की काव्य भाषा - डॉ. शिवशंकर सिंह, अनुपम प्रकाशन, पटना,1978
55. निराला में सांस्कृतिक चेतना - डॉ. जगदीश चंद - अभिनव प्रकाशन, दिल्ली, 1979
56. निराला के पत्र - जानकीवल्लभ शास्त्री - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1971
57. निराला और नवजागरण - डॉ. रामरतन भटनागर - साथी प्रकाशन, सागर, 1965
58. निराला स्मृति ग्रंथ - ओंकार शरद - रंचना प्रकाशन, इलाहाबाद, 1969
59. निराला का साहित्य और साधना - डॉ. विशम्भर नाथ - विनोद पुस्तक मंडल, आगरा, 1965
60. निराला साहित्य, एक नया आयाम - डॉ. राजकुमार - विभु प्रकाशन, साहिबाबाद, 1981
61. निराला का शैली वैज्ञानिक अध्ययन - डॉ. वेदव्रत - आर्य बुक डिपो, 1977
62. निराला काव्य पर बांग्ला का प्रभाव - डॉ. इन्द्रनाथ - भारत भारती प्रकाशन, दिल्ली, 1974
63. निराला का काव्य - डॉ. संतोष गोयल, पुस्तक प्रकाशन, आगरा, 1972
64. नये पत्ते - निराला - लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1973
65. नया साहित्य : कवि निराला और उनका काव्य इतिहास - गिरीशचंद्र तिवारी
66. पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत - डॉ. कृष्णदेव - आगरा, विनोद पुस्तक मंदिर, 1965
67. परिमल - निराला - गंगा पुस्तक माला, लखनऊ, 1969
68. प्रबंध-प्रतिमा - निराला, गंगा पुस्तक माला, लखनऊ, 1966
69. पंत और पल्लव
70. बृहत् हिन्दी कोश - पुनर्मुद्रित संस्करण, 1997, ज्ञानमंडल प्रकाशन, वाराणसी

71. बेला - निराला - निरूपमा प्रकाशन, इलाहाबाद, 1962
72. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत - गणपति चंद्र गुप्त - इलाहाबाद लोक भारती प्रकाशन, 1997
73. भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका - डॉ. नगेन्द्र - नैशनल पब्लिशर्स, 1976
74. मार्क्सवादी साहित्य चिंतन - शिवकुमार मिश्र
75. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य
76. मैथिलिशरण गुप्त - कवि और भारतीय संस्कृति के व्याख्याकार
77. महाप्राण निराला - गंगा प्रसाद पाण्डेय
78. मानक हिन्दी कोश - सं. रामचन्द्र वर्मा, 1964
79. महाकवि निराला का काव्य - एक विश्लेषण - डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र, हिन्दी साहित्य भण्डार, लखनऊ, 1974
80. युगाराध्य निराला - श्री गंगाधर मिश्र
81. युगकवि निराला - डॉ. कृष्णदेव झारी - अशोक प्रकाशन, दिल्ली, 1970
82. रस-सिद्धांत - नई दिल्ली - नैशनल पब्लिसिंग हाउस, 1995
83. राग-विराग - निराला, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2001
84. रास, अलंकार, पिंगल - डॉ. शम्भुनाथ पाण्डेय, विनोद पुस्तक मंदिर, प्रथम संस्करण, संवत् - 2007
85. लोकगीतों के संदर्भ और आयाम - डॉ. शांति जैन
86. लोकसाहित्य की भूमिका
87. 'वाङ्मय विमर्श - विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
88. विचार और विवेचन - डॉ. नगेन्द्र - नैशनल पब्लिसिंग हाउस, 1974
89. विश्व कवि निराला - डॉ. बुद्धसेन निहार - रीगल बुक डिपो, दिल्ली, 1975
90. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत - भाग - 2
91. साहित्यालोचन
92. साहित्य दर्पण - षष्ठ परिच्छेद- पी. वी. काणे - मोतीलाल बनारसी दास,1974
93. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा - चंद्रशेखर पाण्डेय - साहित्य निकेतन, कानपुर
94. सौन्दर्यबोध और हिन्दी नवगीत - डॉ. माधवेन्द्र प्रसाद पाण्डेय, विश्वविद्यालय प्रकाशन
95. साहित्य रत्नाकर - कालिनाथ खड़ा
96. संक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर - षष्ठ संस्करण, रामचन्द्र वर्मा
97. सूर और उनका साहित्य
98. साहित्य सिद्धांत - राम अवध द्विवेदी
99. सांध्य कॉकली - निराला,वसुमती, इलाहाबाद, 1969

100. हिन्दी साहित्य कोष - भाग - 1, पारिभाषिक शब्दावली, वाराणसी, सं. धीरेन्द्र वर्मा
101. हिन्दी विश्वकोश - B.R. Pub. Cor. षष्ठ भाग 1919
102. हिन्दी शब्द सागर - सं. श्यामसुन्दर दास, तृतीय भाग, 1967
103. हिन्दी साहित्य का उद्‌भव और विकास - हजारीप्रसाद द्विवेदी
104. हिन्दी साहित्य : विविध आयाम - श्रीनिवास पाण्डेय - अविराम प्रकाशन,1999
105. हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास - डॉ. रामकुमार वर्मा
106. हिन्दी की प्रगतिशील कविता - डॉ. रणजीत
107. हिन्दी कविता में युगान्तर
108. हमारे राष्ट्र जीवन की परम्परा
109. हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना
110. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र

बांग्ला ग्रंथ :

1. अग्निवीणा - नज़रुल आर्य पब्लिशिंग हाउस, कोलकाता, कार्तिक 1329
2. आमार बन्धू नज़रुल - शैलजानन्द मुखोपाध्याय - हरफ प्रकाशनी, कलकता, 1968
3. ए काले नज़रुल - आहमद शरीफ - मौला ब्रदर्स - ढाका, 1990
4. काज़ी साहेबेर गान - प्रणय राय - आनन्दबज़ार पत्रिका लिमिटेड 1391 संख्या
5. काज़ी नज़रुल इस्लाम - एक अज्ञात पर्व - अजीत दास, पुस्तक विपनि, कोलकाता, 1965
6. काज़ी नज़रुलेर गान - नारायन चौधुरी - ए. मुखर्जी कोलकाता, 1977
7. काज़ी नज़रुल इस्लाम - वसुधा चक्रवर्ती - नैशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली,1969
8. काज़ी नज़रुल प्रसंगे - मुज़फ्फर अहमद - विंश शताब्दी प्रकाशनी, कोलकाता 1959
9. काज़ी नज़रुल इस्लाम : स्मृतिकथा मुज़फ्फर अहमद - नैशनल बुक एजेन्सी, कलकाता, 1965
10. काज़ी नज़रुल इस्लाम जीवन ओ साहित्य - रफिकुल इस्लाम - के. पी. बागची, कलकता, 1991
11. काज़ी नज़रुल इस्लाम - रचना समग्र
12. कविर जीवन कथा - अब्दुर कादिर

13. कविर सांवादिक जीवन - आबदुल आज़ीज़ आल - आमान-हरफ प्रकाशनी, कोलकाता, 1989
14. कवि नज़रुल आबदूल कादिर - हरफ प्राशनी, कलकता, 1970
15. कवि नज़रुल - सुशीलकुमार गुप्त - इंडियाना, कलकत्ता, 1957
16. कवि नज़रुल - आताउर रहमान - शुभ्रा प्रकाशन, ढाका, 1968
17. कल्लोल युयग - अचिनत्यकुमार सेनगुप्त - आनन्दधारा प्रकाशन, 1376 संवत्
18. गानेर राजा काज़ीदा - अखिल नियोगी - सं. विश्वनाथ दे, 1380 बंगाब्द
19. चंद्रबिन्दु - नज़रुल - डि . एम. लाइब्रेरि, कोलकाता, सितम्बर, 1931
20. जनगनेर कवि काज़ी नज़रुल इस्लाम - कल्पतरु सेनगुप्त पश्चिमबंग राज्य पुस्तक परिषद्, कोलकाता, 1992
21. धूमकेतूर नज़रुल - आबदुल अज़ीज़ आल आमान
22. नज़रुल जीवनी - आबदूल क़ादिर, 1941
23. नज़रुल गीति सहायिका - कल्पतरु सेनगुप्त, पश्चिमबंग राज्य पुस्तक परिषद् कोलकाता, 1992
24. नज़रुल प्रतिभा - काज़ि आबदुल उदूद - बर्मन पब्लिशिंग हाउस, 1941
25. नज़रुलेर कविता - असंयमेर शिल्प - क्षेत्र गुप्त, साहित्य प्रकाश, कोलकाता,1997
26. नज़रुल इस्लाम - कविमानस ओ कविता - ध्रुवकुमार मुखोपाध्याय, रत्नावली, कोलकाता, 1992
27. नज़रुल संगीतेर सूरविकृति ओ सूर संरक्षण - ब्रह्ममोहन ठाकुर (सं); नवजातक प्रकाशन, कोलकाता, 1992
28. नज़रुल काव्यपरिचय - मधुसूदन बसू - साहित्याश्री, कोलकाता, 1975
29. नज़रुल जीवनचरित - मिलन दत्त - प्रसाद लाइब्रेरी, कोलकाता, 1976
30. नज़रुल-गीतिर नानादिक - शम्भुनाथ घोष - बेंगॉल पब्लिशर्स, कोलकाता,1977
31. नज़रुल एकटि राजनैतिक व्यक्तित्व - शान्ता बन्दोपाध्याय - नवपत्र प्रकाशन, कलकत्ता
32. नज़रुल के जेमन देखेछि - शामसून्नाहार महमूद - भारती लाइब्रेरि, कोलकाता, 1956
33. नज़रुलेर जीवनेर शेस अध्याय - सूफि जुलफिकर हायदार, अनन्य प्रकाशन, कलकत्ता, 1971
34. नज़रुल प्रतिभा -परिचिति - अशोककुमार मिश्र - वाणी भवन, ढाका, 1969

35. नज़रुल काव्य समीक्षा - मुक्तधारा - आताउर रहमान, नज़रुल इन्स्टीट्यूट, ढाका, 1994
36. नज़रुल काव्ये आरबी-फारसी शब्द - आबदूस सत्तार - नज़रुल इन्स्टीट्यूट, ढाका, 1992
37. नज़रुल संगीत अभिधान- आबदूस सत्तार - नज़रुल इन्स्टीट्यूट, ढाका, 1993
38. नज़रुल संगीतेर रूपकर - आसादुल हक - नज़रुल इन्स्टीट्यूट, ढाका,1990
39. नज़रुल संगीतेर सूर - इदरिस आली - नज़रुल इन्स्टीट्यूट, ढाका,1997
40. नज़रुल दर्शन - कबीर चौधुरी - नज़रुल इन्स्टीट्यूट, ढाका,1992
41. नज़रुल संगीत : जनप्रियतार स्वरूप संधान - करूणामय गोस्वामी - बांग्ला एकाडेमी, ढाका, 1993
42. नज़रुल चर्चा - नारायण चौधूरी - मुक्तधारा, ढाका, 1990
43. नज़रुल इस्लाम - नाना प्रसंगे - मुस्तफा नरउल इस्लाम, नज़रुल इन्स्टीट्यूट, ढाका,1991
44. नज़रुल चेतना मोहम्मद मनिरुज्जामान, नज़रुल इन्स्टीट्यूट, ढाका,1996
45. नज़रुलेर संगीतकर्म विषयक शिरोनामहीन रचना सुप्रभा सरकार - कल्पतरु सेनगुप्त सम्पादित, कलिकाता नैशलन बुक एजेन्सी, प्रा. लि., प्र.प्रकाश,1977
46. नज़रुलेर बाल्यजीवन कविता - शैलजानन्द मुखोपाध्याय - हरफ प्रकाशनी, कोलकाता, 1968
47. नज़रुल परिक्रमा - अब्दुल 'अज़ीज आल, अमान, हरफ प्रकाशनी, कलकत्ता,1969
48. नज़रुल गीति अखण्ड (अ) - काज़ी नज़रुल इस्लाम - हरफ प्रकाशन
49. नज़रुल चरितमानस - डॉ. सुशील कुमार गुप्त - नवयुग प्रकाशनी, कोलकाता, 1960
50. नज़रुल रचना संभार - संपादक - अब्दुल कादिर
51. नज़रुल चरित - शाहबुद्दीन अहमद
52. नज़रुल प्रतिभा - मोवाश्वेर अली
53. नज़रुल काव्यगीति : वैचित्र ओ मूल्यांकन - बाँधन सेनगुप्त - नवजातक, कलकत्ता, 1976
54. नज़रुल प्रतिभार स्वरूप - अब्दुल कादिर
55. नज़रुल संगीते ऋतु चेतना - आताउर रहमान - नज़रुल इन्स्टीट्यूट, ढाका,1993
56. निषिद्ध नज़रुल - शिशिर कर - आनन्द पब्लिशर्स, कोलकाता, 1992

57. प्रलयशिखा - नज़रुल इस्लाम - अगस्त, 1930, लेखक द्वारा प्रकाशित
58. बांग्ला काव्यगीतिर धाराय काज़ी नज़रुल इस्लामेर स्थान - करुणामय गोस्वामी प्रथम प्रकाशन - मार्च 1990, प्र. शाम सुज्जामान खान
59. बांग्ला काव्यगीति ओ नज़रुल इस्लाम
60. बांग्ला रागप्रधान गान - ज्ञानप्रकाश घोष - आनन्दबाजार पत्रिका लिमिटेड, 1391 संख्या
61. बांग्ला साहित्ये नज़रुल - आजहारुद्दीन खान - प्रथम संस्करण, 1997, ङि एम. लाइब्रेरी, कोलकाता
62. भङार गान - नज़रुल इस्लाम
63. मुक्तिर गान - सुभास चौधूरी - देश विनोदन, सागरमय घोस सम्पादित, कालिकाता आनन्दबाजार पत्रिका लिमिटेड, 1391 संख्या
64. युगस्रष्टा नज़रुल - खान मुहम्मद मुइनुद्दीन - अक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस ढाका - सं - 1957
65. युव कवि नज़रुल - आबदुल कादिर - बांग्ला अकादमी - ढाका 1986
66. रविन्द्रनाथ ओ नज़रुल - आबदूर रहमान - बईघर, बीरभूम, 1983
67. रविन्द्रनाथ, नज़रुल ओ बांग्लादेश - रघुवीर चक्रवर्ती - दि वर्ल्ड प्रेस, प्रा. लि., कलकत्ता, 1972
68. विद्रोही कवि नज़रुल - आबूल फज़ल - सुधीर सिंह, आन्दरकिल्ला चट्टग्राम आबूल फज़ल रचनावलि - प्रथम खण्ड
69. श्रद्धास्पदेषु - नलिनी कान्त सरकार
70. सांबादिक नज़रुल - अंजन बोरा - कोलकाता, जर्नलिस्टक्लास, 1998
71. सूरसभाय नज़रुल - शैलजानन्द मुखोपाध्याय, नज़रुल कथा, विश्वनाथ दे सम्पादित, कलिकाता : साहित्यम, प्रथम प्रकाश 1380
72. संगीत चिन्ता - रविन्द्रनाथ ठाकुर - प्रथम प्रकाशन - कोलकाता, 1966
73. सर्वहारा - नज़रुल इस्लाम - बर्मन पब्लिशिंग हाउस, कलकाता - अक्टूबर,1926
74. साम्यवादी - नज़रुल इस्लाम - 1925 दिसम्बर
75. सूखेर उल्लासे - नज़रुल इस्लाम

संस्कृत ग्रंथ :

1. अग्निपुराण - काव्यानुशासन - मथमथा नाथ दत्त शास्त्री, वाराणसी, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, 1967

2. ध्वन्यालोक, तृतीय उद्योत - आनन्दवर्द्धन, कलकत्ता, के. एल. मुखोपाध्याय, 1956
3. नाट्यशास्त्र, प्रथम भाग, साहित्याचार्य - मधुसूदन शास्त्री - चौखम्भा संस्कृत प्रकाशन, वाराणसी
4. वाचश्पत्यम, बृहत् संस्कृताभिधानाम, भाग - चार, वाराणसी, श्री तारकानाथ वाचश्पति
5. रसज्ञ - रंजन
6. ऋगवेद - 10-90-24 - नई दिल्ली कोसमो प्रकाशन, 1987

अंग्रेजी ग्रंथ :

1. A Hand book of Poetics - B. Gummer, 1946
2. A Dictionary of Classical Antiques (Mythology, Religion, Lit. Art) Mittal Pub., Delhi, Dr. Oskar Seyffert.
3. A Historical Study of Indian Music - Swami Prajananada - Anandadhara Prakashan, First pub. 1965
4. Concise Oxford Dictionary of English literature - Oxford University Press C- 1970, London
5. Collin's Dictionary and Thesaurus - L & W London,
6. Dictionary of World Literary Terms- Shipley Joseph T, London George Allen and Unwin, 1978
7. Form in Modern Poetry
8. From Empire to Nation - Rupert Emerson - Scientific Book Agency C. 1960
9. Illusion and Reality - Christopher Codwell - L & W, London
10. Indian Music - B. C. Deva - New Delhi, ICCR, First pub. 1974
11. Kazi Nazrul Islam - gopal Haldar- New Delhi, Sahitya Accademy First edition,1973
12. Lives of English Poet - Samuel Joshnson - London - Oxford Univ. Press, 1906
13. Lyric Poetry - Ernest rice, Forward forth
14. Method's and Materials of Litarary Criticism
15. Nation and Men : International Politics Today
16. Outlines of Aesthetics, Translated by S.T. Ladol

17. Oxford Junior Encyclopaedia - Oxford University Press, 1974
18. Political and Constitutional Law - VII, J.S. Burger
19. Poetry : Its Music and Meaning
20. The Poetical Works of William Words Worth- William Words Worth- Oxford : clarendon Press
21. The Encyclopaedia Britanica - vol- VI, Lolo Mauphor, NEHU
22. The Concise Oxford Dictionary of English Literature- II edition Oxford issue press
23. The Study of Literature - George Watson - Bombay - Orient Longnman, 1969
24. The Story of Poetry
25. The Early lyric poetry of India
26. The Rise and Growth of Congress in India by C.F. Anderness and Giriza Mookerjee
27. Webster's New World Dictionary - pub. Gulab Primlani,1976
28. Words Worth - Preface Hamilton Paul - Harvester C, 1986

पत्र-पत्रिकाएँ :

हिन्दी :

1. आज (समाचार-पत्र) 4 फरवरी 1960
2. वर्तमान - मई-जून 2000, वसन्त का अग्रदमत - अज्ञेय
3. वर्तमान - मई-जून 2000, हिन्दी ग़ज़ल की रिवायत : एक जिरह - सुल्तान अहमद
4. सम्मेलन पत्रिका - सं. 1980, चैत्र-वैसाख अंक
5. साहित्य सुधानिधि - जुलाई, 1894
6. हिन्दी अनुशीलन - लोक की अवधारणा - आलेख - हिन्दी साहित्य परिषद् इलाहाबाद विश्वविद्यालय

बांग्ला :

1. कोरक साहित्य पत्रिका, नज़रुल संख्या, बईमेला, छय मात्रार छन्द - नज़रुलेर रक्तकरबी - अरुणकुमार बसू, 1405 बं., कोलकाता
2. दिशा - नज़रुल संगीते प्रकृति - ज्योत्सना चट्टोपाध्याय, 14 अगस्त,1998 कोलकाता
3. दिशा - नज़रुलेर गान - धीरेन्द्र चन्द्र मित्र, 14 अगस्त,1998, कोलकाता

4. नज़रुल परिषद् पत्रिका - जीबानानन्देर चोखे नज़रुल इस्लाम, जनवरी 1999, बांगलादेश
5. पलिमाटी, शारद संकलन : नज़रुल जन्मशत - वार्षिकी संख्या - शतवर्षेर आलोके कवि नज़रुल इस्लाम - अनुनय चट्‌टोपाध्याय, चतुर्थ संख्या, बं.1405
6. पलिमाटी - नज़रुलेर काव्ये नारी - नीलिमा दास, शारद संकलन, नज़रुल जन्मशतवार्षिकी संख्या नवम वर्ष चतुर्थ संख्या, 1405 बं.
7. मोस्लेम भारत पत्रिका - 1327 बं. - भाद्र मास सैयद अहसान
8. सत्तर दशक, अष्टविंशति वर्ष - नज़रुल ओ ताँर गीति - तापस राय वर्षा शरत, 1405 बं.
9. निसर्ग पौष - 1405 बं. - नज़रुलेर गान : ए एक महासमुद्र - अनूप घोषाल - नि. भा. बंग. साहित्य सम्मेलन, हाफलॉग, असम
10. सकल तूमि - छन्द - शिल्पी नज़रुल 5 सुमिता चक्रवर्ती - संख्या - कार्तिक-चैत्र 1405 बं. कोलकाता

शोधार्थी का विवरण

नाम	:	शिप्रा बसु
शिक्षा	:	एम. ए. (हिन्दी)
विभाग	:	हिन्दी विभाग
शोध प्रबंध का नाम	:	निराला और नज़रुल के गीतिकाव्यों का तुलनात्मक अध्ययन
प्रवेश के भुगतान की तिथि	:	03.12.2001
शोध-प्रस्ताव की संस्तुति	:	
(i) बी.पी.जी.एस.		19.10.2001
(ii) स्कूल बोर्ड		30.10.2001
पंजीकरण संख्या एवं तिथि	:	604 of 30.10.2001

NEHU LIBRARY
Acc 103670
27-8-07

अध्यक्ष
हिन्दी विभाग